प्रोफेसर रसिक बिहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती काव्यम् का समीक्षात्मक अध्ययन

(PROF. RASIK BIHARI JOSHI KRIT THE SRI RADHAPANCHASHATI KAVYAM KA SAMEEKSHATAMK ADHYYANA)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
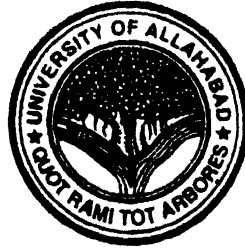
पर्यवेक्षक
डा० राम किशोर शास्त्री
उपाचार्य
संस्कृत विभाग
इ०वि०वि० इलाहाबाद

अनुसन्धाता
राजेश सिंह
(एम०ए०)

संस्कृत, पालि प्राकृत एवं प्राच्य विभाग
इलाहाबाद विश्व विद्यालय, इलाहाबाद

चैत्र नवरात्र
संवत् २०५७ वैक्रमीय

"श्रीसर्वेश्वरी त्व पाहि माम् शरणागतम्"

अलितगिरिसमं स्यातकज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरूवरशाखालेखनी पत्रमुर्वी
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।

प्राक्कथन

सस्कृत साहित्य का अतीत तो भास अश्वघोष, कालिदास भवभूति जैसे अजस्र जाज्वल्यमान नक्षत्रो से प्रकाशित तो है ही किन्तु बीसवी शताब्दी मे लोकव्यवहार से दूर हो चली सस्कृतभाषा के साहित्य को समृद्व करने का काम जिन महाकवियो ने किया उनमे प्रो० रसिक विहारी जोशी का नाम सर्वातिशायी है। प्रो० जोशी के व्यक्तित्व एव कृतित्व से मै विद्यार्थी जीवन से अत्यन्त अभिभूत रहा। उनके प्रति मेरा लगाव सस्कृत विभाग के वरिष्ठ उपाचार्य डा० वीरेन्द्र कुमार सिह की नजरो से छिप न सका। एम० ए० परीक्षा उच्चश्रेणी मे एव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जब मै शोध कार्य के लिए अपनी अभिलाषा श्रद्वेय डा० सिह से प्रकट की तब उन्हांने आधुनिक सस्कृत साहित्य के प्रति मेरी जिज्ञासा और प्रो० जोशी के प्रति मेरे लगाव को देखते हुए मुझे उन्ही की कृति श्रीराधापञ्चशती पर शोध कार्य करने की प्रेरणा दी। विश्वविद्यालय से औपचारिकताए पूर्ण होने के साथ ही साथ मै पूज्य डा० वी० के० सिह के कुशल निर्देशन मे शोध कार्य मे लग गया। वे जिस सहज स्नेह से मुझे निर्देशन और प्रेरणा देते रहे उसे शब्दो से कह पाना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। मुझे लगता है कि गुरू और शिष्य की यह युति क्रूर विधाता की नजरों मे खटक गयी। फलत शोधप्रबन्ध के पूर्ण होने के पूर्व ही कराल काल ने दीपावली की पूर्व सध्या पर डा० सिह को असमय मे ही छीन लिया। परम गुरूदेव श्री सिह के प्रति श्रद्वाञ्जलि अर्पित करना तो औपचारिकता मात्र होगी। सच तो यह है कि उनके न रहने से मुझ जैसे अनेक शिष्यों का भविष्य अन्धकारावच्छन्न सा हो गया है।

मै श्री सिंह के असामयिक निधन के अवसाद से किकर्त्तव्यवियूढ़ था तो मेरी स्थिति को देखते हुए **संस्कृत विभागाध्यक्ष श्रद्वेय प्रो० हरिशंकर त्रिपाठी** ने मुझे अपूर्ण शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए डा० सिह के ही सहपाठी एव सस्कृत विभाग में उपाचार्य परम पूज्य **डा० राम किशोर शास्त्री** के निर्देशन मे कार्य करने की प्रेरणा दी जिसे वि० वि० ने भी स्वीकार कर लिया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मै डा० शास्त्री के निर्देशन मे पूर्ण करके वि०

वि० के समक्ष परीक्षणार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ। श्रद्धेय **शास्त्री** जी ने जिस सहजभाव से महनीय गुरूत्व प्रदान करके शोध प्रबन्ध पूर्ण करने मे उत्साह वर्धन एव सहयोग दिया उसके लिए मै आजीवन ऋणी रहूगा। विभागाध्यक्ष प्रो० त्रिपाठी की इस प्रेरणा के प्रति मै हृदय से आभारी एव ऋणी हूँ।

सर्वप्रथम मै श्रीसर्वेश्वरी समूह के पूज्य भगवान् अवधूत राम के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनकी कृपा से इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन मे मुझे अनेक विद्वानो एव मनीषियो के सामीप्य तक पहुचने का सौभाग्य मिला। मै **डा० नरेन्द्र सिंह उपाचार्य** दर्शनशास्त्र विभाग, इ० वि० वि० के सतत उत्साहवर्धन एव योगदान के प्रति आभार प्रकट करना परम पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होने मेरे शोध कार्य को पूर्ण कराने मे सहजता प्रदान की। साथ ही स्वर्गीय डा० वी० के० सिह की पत्नी **डा० प्रेम कुमारी सिंह** शोध सहायक, संस्कृत विभाग इ० वि० वि० का आभारी हूँ जिन्होंने अत्यन्त दुःखित होते हुए भी मुझे धैर्य एव स्नेह प्रदान करते हुए शोध कार्य पूरा करने मे सहयोग दिया।

इसी सन्दर्भ मे प्रो० मदन मोहन अग्रवाल, सस्कृत विभाग दिल्ली वि० वि०, डा० प्रो० एस० पी० शर्मा, **डा० मोहम्मद शरीफ,** (प्रवक्ता सस्कृत) सस्कृत विभाग, अलीगढ वि० वि०, डा० अरूण कुमार राय–प्रवक्ता संस्कृत, जमानियॉ गाजीपुर, श्री अरविन्द तिवारी (एम० लिब् पुस्तकालय सहायक बी० एच० यू०) एव **श्री जनार्दन तिवारी** (प्रवक्ता शारीरिक शिक्षा) प्रभृति का भी मै आभारी हूँ। जिन्होने शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करने मे सहज स्नेह एव सहायता प्रदान की।

अस्तु विभागीय गुरुजन परम पूज्य प्रो० आधा प्रसाद मिश्र, प्रो० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, प्रो० ज्ञानदेवी श्रीवास्वत, प्रो० मृदुला त्रिपाठी, प्रो० राजलक्ष्मी वर्मा, प्रो० हरिदत्त शर्मा, प्रो० चन्द्र भूषण मिश्र, डा० कौशल किशोर श्रीवास्तव, डा० शकर दयाल द्विवेदी, डा० उमाकान्त यादव, उपाचार्य सस्कृत विभाग प्रभृति का मैं आभारी हूँ जिन्होने शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने मे सहयोग दिया।

मेरे इस प्रयत्न को साकार रूप देने मे मित्रगण डा० उत्तम सिह (दर्शन शास्त्र), डा० राधेश्याम मिश्र 'प्रवक्ता'। डा० अमर कान्त सिह दर्शन शास्त्र एव शोध छात्र श्री ओ० पी० सिह, (राजनीतिशास्त्र), श्री श्याम नारायण त्रिपाठी, (भूगोल) श्री राम कुमार राय, (सस्कृत) श्री दिनेश सिह एम० ए० (प्राचीन इतिहास) एव श्री सत्यप्रकाश सिह, बब्लू (एल० एल० बी०–I) प्रभृति ने भरपूर सहयोग दिया और समय–समय पर मेरा उत्साह वर्धन किया जिसके लिए मै उनका कृतज्ञ हूँ।

तत्पश्चात् मै परम पूज्य पिता **श्री उग्रसेन सिंह प्रधानाचार्य,** एव पूजनीय माता **श्रीमती चम्पा सिंह** के प्रति अत्यधिक श्रद्वावनत हूँ, जिन्होंने अपने वात्सल्य तथा सरक्षण से मुझे इस योग्य बनाया कि मै शिक्षा के इस उच्चैस्तर शिखर पर स्वय को आरूढ करने मे समर्थ हो सका। सदैव सहयोग हेतु पूजनीय अग्रज **श्री अवधेश सिंह (पुलिस उपाधीक्षक)** व **पूजनीया भाभी श्रीमती शशिबाला सिंह (साहित्याचार्य)** के कृतज्ञता भार से मेरा मस्तक सदैव नत रहेगा और जिनका मै आजीवन ऋणी रहूँगा अस्तु, मेरी धर्मपत्नी **श्रीमती अम्बालिका सिह (एम० ए० मनोविज्ञान)**, एव अनुज श्री दिनेश प्रताप सिह (एम० ए० दर्शन हिन्दी एल० एल० बी०), श्री सन्तोष कुमार सिह, (एम० ए०, एल० टी०) का योगदान सराहनीय रहा जिनसे मुझे शोध कार्य करने की सतत् प्रेरणा मिलती रही। इसके पश्चात् मै "नलिनी प्रकाशन" श्री आशू सक्सेना एव रवि सक्सेना को धन्यवाद देता हूँ जिन्होने अपने सहयोगी श्री शेखर यादव द्वारा टकण कार्य करके शोध प्रबन्ध को इस रूप मे प्रस्तुत किया।

अन्त में, मै समस्त ज्ञाताज्ञात शुभचिन्तको के प्रति श्रद्वावनत होता हुआ प्रकृत शोध प्रबन्ध सुधी जनो के समक्ष नीरक्षीरविवेक हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि वे अपरिहार्य त्रुटियो को क्षमा करते हुए, **'गच्छतस्स्खलनं क्वापि...............'** की प्रसिद्व सूक्ति के अनुसार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की समीक्षा करेगे।

विनयावनत–
राजेश सिह
राजेशसिंह

चैत्रनवरात्र 17–5–2000
विजय सबत्सर २०५७ वैक्रमीय

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

कवि परिचयः– व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

कवि–परिचय

महाकवि प्रो० श्री रसिक बिहारी जोशी का जन्म १२ सितम्बर सन् १९२७ को नागपुर मे सम्भ्रान्त बैष्णव परिवार मे हुआ था। इनके वंश में विगत कई पीढ़ियों से प्रकाड विद्वान् एवं भगवद्भक्त हुए है। इनके प्रपितामह पण्ड़ित श्रीमान् बालाचन्द जोशी तथा पितामह पण्डित जीवन राम जी व्याकरण, न्याय, सांख्य–योग तथा श्रीमद्–भगवत के प्रख्यात विद्वान् थे। इनके पिता श्री रामप्रताप शास्त्री जी नागपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत, प्राकृत, पाली, हिन्दी, मराठी, बगाली, गुजराती, तमिल, तेलगू आदि विभागो के अध्यक्ष रह चुके है। प० शास्त्री जी मे पांडित्य, सौजन्य, योग, भक्ति तथा साधना का अनुपम समन्वय था। भक्ति तथा वैराग्य के चलते ४३ वर्ष की उम्र मे ही समय से पूर्व स्वयं सेवा मुक्त हो गये। शेष जीवन काल व्याव़र–राजस्थान में भगवान् श्री कृष्ण की योग साधना एवं उपासना में बीता। वे सिद्व पुरूष, एकल भविष्य वक्ता थें, जो केवल शारीरिक बनावट से ही निश्चित जन्म एव मृत्यु समय के उद्धोषक थे। भारतीय धर्म–दर्शन तथा संस्कृति के मूर्त रूप थे। सस्कृत मे धारा–प्रवाह सम्भाषण क्षमता थी।[1]

शैक्षिक जीवनः–

श्री रसिक बिहारी जोशी जी की प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा व्यावर–राजस्थान मे सम्पन्न हुई।[2] वहॉ से १९४७ में नव्य व्याकरण में प्रथम श्रेणी में मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। अनेकशः विद्वानों से आपने पाण्डित्य प्राप्त किया, जैसें–पं० रामानुज जी एवं प० अम्बिकादत्त जी से व्याकरण शास्त्र, आचार्य पं० विजय प्रकाश से ब्रह्यसूत्र शंकरभाष्य, नव्य न्याय, पं० भगवत्दत्त जी से यजुर्वेद तथा मीसांसा शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया।[3]

---

1. प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत "मोहभगम महाकाव्य, एक परिशीलन" राजस्थान वि० वि० लधुशोध प्रबन्ध, लेखिका कु० बेला हाण्डा–प्रथम अध्याय पृष्ठ १–२ से उद्धृत। प्रकाशित प्रथम सस्करण–१९८७ श्री पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. वही–प्रथम अध्याय पृष्ठ–३ से उदधृत

परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त करना मानों जोशी जी का अधिकार था। इन्होंने १९५० मे **"शास्त्री परीक्षा"** प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण करके स्वर्णपदक प्राप्त किया। सन् १९४८ में पजाब वि० वि० से **'प्रभाकर परीक्षा'** मे प्रथम श्रेणी सर्वप्रथम तथा आगरा वि० वि० से १९५२ में संस्कृत विषय से एम० ए० सर्व प्रथम रहकर उत्तीर्ण की। बनारस हिन्दू वि० वि० से १९५४ मे **"मयूरभंज रिर्सच फेलो" के रूप में कार्य करके 'कृष्ण कल्ट इन संस्कृत लिटरेचर"** विषय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।[1]

बनारस से पी० एच० डी० उपाधि प्राप्त करके इण्डों फ्रेन्स गवर्नमेन्ट स्कालरशिप प्राप्त हो जाने पर जोशी जी पेरिस चले गये। पेरिस वि० वि० से सन् १९५६ में डी० लिट् की उपाधि ग्रहण की।[2] वहा से फ्रेन्च भाषा और साहित्य में प्रमाण–पत्र १९५६ मे ही प्रथम श्रेणी से प्राप्त किया। इनका डी० लिट् का पाण्डित्यपूर्ण शोध प्रबन्ध **"कृष्णभक्ति की पूजा–विधि का क्रमिक् विकास"** फ्रेन्च भाषा में पाण्डिचेरी से 'फ्रेन्च इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलाजी की ग्रन्थमाला मे प्रकाशित हुआ था।[3] उक्त प्रकाशित शोधप्रबन्ध विदेशो में अधिकाश विश्वविद्यालयो मे अत्यन्त लोकप्रिय हुई।

पेरिस में जोशी जी को सस्कृत शोध की नई दिशा मिली। वहा पर इनको प्रोफेसर लूई रेनू, ओलिवियर लाकोम्ब, जॉ फिलिजोआ, ए० मिनार, आदि इस शताब्दी के मूर्धन्य पाश्चात्य विद्वानो का निकट सम्पर्क प्राप्त हुआ। वही पर जोशी जी लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता, तथा ऋग्वेद की भाषा तथा माइथोलाजी के तुलनात्मक क्षेत्र मे सम्पादित "इण्डो–इरानियन स्टडीज" के क्षेत्र मे भी पदार्पण किया।[4]

'इण्डोयूरोपीयन लिग्विस्टिक्स', –इण्डोयूरोपीयन माइथोलाजी तथा 'बुद्धिज्म' के क्षेत्र में उनकी रूचि अधिक जागृत हुई। शोध की आधुनिकतम तुलना प्रधान शैली, तथा 'डिक्शनरी', 'इण्डैक्स', मैन्यूस्क्प्टिोलोजी के सिद्धातों का भी पर्याप्त ज्ञानबर्द्धन किया।

---

1. वही पृष्ठ स० ४।
2. आगरा वि० वि० शोध प्रबन्ध–प्रो० रसिक बिहारी जोशी की रचनाए एव व्यक्तित्व से उद्धृत।–अप्रकाशित।
3. वही– "
4. वही– "

काव्य प्रतिभा एवं विद्वता–

सन् १९५६ मे 'विदेश' से लौटने पर जोशी जी लखनऊ वि० वि० में संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुए, तत्पश्चात् १९५७ से दिल्ली वि० वि० मे उपाचार्य के रूप में नियुक्त किये गये। दिल्ली में संस्कृत शोध का श्रीगणेश करके शोध छात्रो का आधुनिकतम् शोध पद्वति का ज्ञान कराया। उन्होने दिल्ली मे श्रीमद्‌भागवत् के अध्यापन मे अपनी पारम्परिक प्रतिभा का विकास किया। प्रो० जोशी जी कईबार (चक्रीय प्रणाली में) १९६५ से ६८, १९७६ से ७८, तथा १९८३ से ८६ तक दिल्ली वि० वि० संस्कृत विभागाध्यक्ष बनाये गये।[1]

फ्रेन्च भाषा मे प्रकाशित शोध प्रबन्ध तथा अग्रेजी में प्रकाशित लेखो के कारण डॉ० जोशी का पाण्डित्य सौरभ देश विदेश में विकसित हो गया। सन् १९६४ मे चैकोस्लोवाकिया पोलैण्ड, हगरी आदि देशों की सरकार ने आपको भारतीय दर्शन तथा सस्कृत विद्या पर भाषण–मांला के लिए तथा सम्बन्धित देशो के वि० वि० के संस्कृत विभागों को पुनर्गठित करने के लिए निमन्त्रित किया।

१९६४ मे सस्कृत विद्यार्जन मे असाधारण उपलब्धि हेतु 'चार्ल्स यूनिवर्सिटी आफ प्राग' ने एक विशेष उपाधि वितरण महोत्सव करके डॉ० जोशी को एक कामेमोरेटिव गोल्ड मेडल प्रदान किया।[2]

वारशा वि० वि०, पोलैण्ड, में डॉ० जोशी जी के व्याख्यान भारतीय न्यायशास्त्र, भारतीय दर्शन तथा संस्कृत साहित्य के इतिहास पर हुए। इससे सस्कृत विद्वान् प्रो० सूस्कैविच गद्‌गद हो गये। क्राको वि० वि० में 'मिलिन्दपन्ह' के विशेषज्ञों की सभा में बौद्ध दर्शन पर चर्चा में भी जोशीं जी को सम्मान मिला।

हगरी में बूडापेस्ट वि० वि० में आयोजित व्याख्यान माला मे प्रो० जोशी के साख्य–योग विषयक व्याख्यान पर प्रो० ताताशी एव प्रो० हरमाता अत्यन्त मुग्ध हो गये। वहां पर तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री एस० वी० पटेल ने प्रो० वाकार्डी के रामायण शास्त्रार्थ

---

1. प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत मोहभगम महाकाव्य–एक परिशीलन, प्रकाशित लधुशोध प्रबन्ध, लेखिका कु० बेलाहाण्डा पृष्ठ–५ से उदधृत। (प्रथम सस्करण १९८७ श्री पब्लिशिग हाऊस नई दिल्ली)।

विषयक चुनौती को अस्वीकार करते हुए प्रो० जोशी जी से सम्पर्क कराया। श्री जोशी के रायामण विषयक शास्त्रार्थ से प्रो० वाकर्डी भारतीय चुनौती पर लज्जित सा हो गये।[1]

१९६५ में "एकोल फ्रान्सेस डेक्सत्रीय आरियां" ने भाषा विषयक विस्तार हेतु दक्षिण पूर्व एशिया में कम्बोडिया बुलाया। वहां पर जोशी जी ने सिम्ब्रिवाव मे अंकोरवाट मन्दिर श्रृखलाओं मे कम्बोडियन संस्कृत शिलालेज विषयक कार्य सम्पादित किया। १९६८ मे प्रो० आर० वी० जोशी को 'एल० कोलेहियो द मैक्सिको मे संस्कृत तथा भारतीय दर्शन के विजिटिग प्रो० के रूप में बुलाया गया। वहा पर आपने पार्लियामेन्ट आफ रिलीजन्स में **"हिन्दू धर्म तथा दर्शन"** विषयक व्याख्यान प्रस्तुत किया। इसी क्रम मे १९६९ में यूनेस्को द्वारा सेन्ट्रल अमेरिका के अनेक देशो मे भारतीय दर्शन तथा सस्कृत विद्या पर व्याख्यान हेतु बुलाया गया। कोस्तारीका राजधानी मे विश्वविद्यालय के अतिरिक्त थियोसोफिकल सोसाइटी आदि अनेक विद्या सस्थानों में पुनर्जन्म, बेदविज्ञान, जैन–बौद्ध धर्म आदि व्याख्यानो की श्रृखला प्रस्तुत की।[2]

प्रो० जोशी को मैक्सिको से ही १९६९–७० मे कोलम्बिया वि० वि०, न्यूयार्क मे सस्कृत तथा भारतीय विद्या का विजिटिग प्रोफेसर बनाकर आमन्त्रित किया गया। वहा पर अपने, **'संस्कृत भाषा तथा कृष्णभक्ति'** पर अनेक व्याख्यान प्रस्तुत किया।[3]

स्वदेश पुनरागमन पर १९७० मे जोधपुर वि० वि० मे प्रो० जोशी जी को सस्कृत का प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष बना दिया गया। उसी समय आपको पेरिस, मैक्सिको, पिलानी तथा तिरूपति से भी प्रोफेसर पद हेतु आमन्त्रण मिला। जोधपुर वि० वि० विभागाध्यक्ष के अतिरिक्त १९७४–७५ में फैकल्टी आफ आर्टस, सोशल साइन्स, तथा एजुकेशन के डीन का पद प्रदान किया गया। १९७५–७६ में लाइब्रेरी बोर्ड के चेयरमैन तथा वि० वि० कार्यकारिणी समिति के सदस्य भी मनोनीत हुए।

---

1. वही पृष्ठ स० ६।
2. वही पृष्ठ स० ६।
3. मोहभगंम् महाकाव्य एक परिशीलन–प्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध लेखिका कु० बेला हाण्डा, प्रथम सस्करण [illegible] पब्लिसिंग हाऊस नई दिल्ली के प्रथम अध्याय पृष्ठ ६।

सन् १९७६ मे प्रो० जोशी जी को जोधपुर वि० वि० से दिल्ली वि० वि० बुलाकर सस्कृत विभागाध्यक्ष एव प्रोफेसर का पदभार सौंपा गया। जोशी जी ने संस्कृत साहित्य के उत्थान, प्रचार–प्रसार हेतु पूर्वोत्साह से यथाशक्ति सेवा प्रदान की। फलस्वरूप राजधानी के सांस्कृतिक जगत मे नवजीवन आ गया। इसी वि० वि० में १९७८–७९ में प्रो० जोशी जी 'बोर्ड आफ रिसर्च स्टडीज इन ह्यूमौनिटीज' और "स्कालरशिप कमेटी इन ह्यूमिनीटीस" के चेयरमैन रहे।[1]

भारत सरकार द्वारा १९७८ मे डॉ० जोशी राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान का निदेशक का पद मिलने पर भी अस्वस्थता के कारण दायित्व स्वीकार नही किये। **"इण्ड़ियन कौंसिल आफ कल्चरल रिलेशन्स"** ने १९७९ मे प्रो० जोशी को प्रख्यात विद्या सस्थान 'एल केलिहियो द मैक्सिको, में संस्कृत तथा दर्शन के विजिटिंग प्रोफेसर के रूप मे मैक्सिको भेजा।

वहा पर सस्कृत तथा दर्शन शास्त्र के अध्यापन एव प्रचार के अतिरिक्त आपने यूनेस्को हेतु लगभग १०० से अधिक ग्रन्थो के अनुवाद की योजना को कार्य रूप प्रदान किया जो सस्कृत, पाली, प्राकृत के मूल ग्रन्थो के स्पेनिश भाषा मे भूमिका व टीका–टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ। प्रथम–चरण मे धर्म–दर्शन, भाषा–विज्ञान, इतिहास से सम्बन्धित ९ ग्रन्थों का प्रणयन हुआ था।

अगस्त १९८३ मे भारत लौटकर जोशी जी ने पुनः दिल्ली वि० वि० मे सस्कृत विभागाध्यक्ष का पदभार ग्रहण कर लिया। पूर्ण कार्यकाल तक विभागध्यक्ष का पद सुशोभित करने के उपरान्त सम्प्रति प्रो० रसिक बिहारी जोशी जी पूर्व संस्था **"एल कोलेहियो द मैक्सिको"** मे संस्कृत, पाली, तथा भारतीय दर्शन के भारतीय विजिटिंग प्रोफेसर के रूप मेसेवारत हैं।

जन्मजात काव्य प्रतिभा के धनी प्रो० जोशी जी मे कारयित्री एव भावयित्री दोनों प्रतिभाओं का सामन्जस्य है। अध्ययन काल से ही संस्कृत श्लोक रचना, समस्या पूर्ति, तथा

सस्कृत वाद–विवाद एव शास्त्रार्थो मे सहभागी रहकर प्रथम स्थान का पदक प्राप्त करते थे। धाराप्रवाह सस्कृत सम्भाषण की अद्भुत क्षमता वाले आपको लोक **"अप्रतिहत संस्कृत भाषी"** कहते थे। फलस्वरूप महामहोपाध्याय पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते ने आपको **अभिनव वाणभट्ट** की उपाधि प्रदान की थी।[1]

मौलिक कृतियाँ–

१ काव्य प्रतिभा के धनी जोशी जी की कविता शक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति जोधपुर निवास काल मे हुई। इनका प्रथम संस्कृत गीतिकाव्य–**"करूणाकटाक्ष लहरी"** १९७७ में प्रकाशित हुआ।[2] इस काव्य की पदशय्या, कल्पना की कमनीयता, मधुरनाद लहरी सहजता का बोध कराने मे समर्थ है।[3] यह काव्य उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी तथा मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा प्ररस्कृत है।

२ १९७८ मे प्रकाशित **"मोहभगंम्"** नामक आठ सर्गो का महाकाव्य है जोधपुर विश्वविद्यालय का यह प्रकाशन उत्तर प्रदेश अकादमी द्वारा पुरस्कृत है।[4]

३ **'सारस्वतम्'** नामक गीतिकाव्य, सरस्वती जी की स्तुति में लिखित, प्रकाशित हुआ। जो गागर मे सागर भर देने वाला, पौराणिक निर्देश तथा आगम की परम्परा का प्रतिनिधि काव्य जोशी जी के आगम एव पुराणो के गहन अध्ययन का परिचायक है।[5]

४. काव्य "प्रज्ञापारिजातम्" आर्या छन्द प्रधान रचना है। इसकी प्रत्येक आर्या मे दृष्टान्त है जो वेद व्याकरण, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, काव्यशास्त्र तथा जीवन के

---

1. प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत "मोहमगम महाकाव्य एक परिशीलन" प्रकाशित लधु शोध प्रबन्ध "श्री पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली" से प्रकाशित प्रथम सस्करण १९८७, 'पृष्ठ–७ से उद्धृत।
2. प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत श्रीराधा–पचशती काव्य हिन्दी अनुवाद सहित प्रथम सस्करण १९६३– प० राम प्रतात शास्त्री ग्रन्थमाला' के श्लोक के अन्त मे सामान्य परिचय सूची पृष्ठ सख्या २५६ से उद्धृत।
3. दिल्ली वि० वि० से एम० फिल हेतु लधु शोध प्रथम (प्रकाशित) प्रो० आर० वी० जोशी कृत "करूणाकटाक्ष लहरी एक साहित्यिक परिशीलन" से उद्धृत।
4. 'मोहभगंम् महाकाव्य एक परिशीलन'–प्रकाशित लधु शोंध प्रबन्ध लेखिका कु० बेला हाण्डा–पृष्ठ संख्या–८, से उद्धृत। प्रकाशन– श्री पब्लिशिंग हाउस, १०१४६ कटरा छज्जू पण्डित माडल बस्ती नई

विभिन्न पहलुओ से सम्बन्धित है।[1] इसका संस्करण अग्रेजी अनुवाद के साथ १९८६ मे प्रकाशित हुआ है। द्वितीय संस्करण फ्रेन्च अनुवाद के साथ सचित्र न्यूयार्क से प्रकाशित है।

५. सस्कृत काव्य **"श्री गोवर्धन गौरवम्"** हिन्दी अनुवाद स्नहित १९८६ से प्रकाशित है।[2]

६ काव्य **"श्रीराधाञ्पचशती"** १९९३ मे प० राम प्रताप शास्त्री ट्रस्ट व्योवर राजस्थान से प्रकाशित है। इसमे संस्कृत के पांच सौ ग्यारह (५११) उत्कृष्ठ छन्दो सहित हिन्दी अनुवाद समाहित है, संस्कृत साहित्य मे इनका अविस्मरणीय योगदान है। यह भक्ति काव्य शकराचार्य की वेदान्तदेशिक और लीलाशुक की परम्परा की अगली कडी है।[3] यह शास्त्रीय अलकार की शैली मे रचित संस्कृत गीतिकाव्य है, जिसमे राधा के प्रति भक्ति और ध्यान के आबेग दृष्टिगोचर होते है। इसमें भाषा की सहजता, आकर्षक सगीतात्मकता, नवीन विचारों का प्रस्फुटन और भावात्मक अनुनाद शास्त्रीय धरातल पर प्रतिविम्बित है जो पाठक के हृदय मे अविस्मरणीय छाप डालता है। इसमे अनेकश स्थानो पर काव्यात्मक विम्ब आये हैं जो ध्यान एव भक्ति के केन्द्र है। यह रचना सस्कृत साहित्य के भक्ति काव्य धारा में उत्कृष्ट स्थान रखती है।[4]

श्रीराधापञ्चशती काव्य पर प्रो० रसिक विहारी जोशी को के० के० विड़ला फाउन्डेशन द्वारा सन् २००० का आठवां वाचस्पति पुरस्कार ७५००० रू० प्रदान किया गया है। आज भी इनकी रचना धार्मिता का प्रवाह थमा नहीं है, और इन्होने चार (४) सस्कृत काव्य हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद सहित लिखा है जो १९९७ से प्रकाशित है–जो निम्न है।[5]

७. श्री भक्ति मीमांसा

८ श्री शिव लिग रहस्यम्

---

1 वही पृष्ठ सख्या ८।

2. वही पृष्ठ सख्या ८।

3. श्री राधापचशती (काव्यम्) हिन्दी अनुवाद सहित प्रथम सस्करण १९९३ (प० राम प्रताप शास्त्री ट्रस्ट–व्यावर–राजस्थान से प्रकाशित) कवर पृष्ठ अग्रेजी अनुवाद से उद्धृत।

4. वही कवर पृष्ठ से उद्धृत।

5. एल० कोलिजियो डि मेक्सिको सस्था' से प्रकाशित पत्र मे ग्रन्थसूची (बिजिटिग प्रोफेसर के रूप मे–नवम्बर १९९९) से उद्धृत।

९ श्री उपदेश बल्ली

१० श्री स्पर्शास्पर्शविवेक

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हैं—

११ श्री सौदर्शन

१२ श्री गुरूपंचाशिका

१३ श्री गिरिराज पचाशिका

१४ १९९८ मे हिन्दी एव अंग्रेजी अनुवाद सहित "श्रीराम प्रताप चरितम्" महाकाव्य दो भागो मे प्रकाशित हुआ है।[1]

१५ १९९९ मे हिन्दी तथा अग्रेजी अनुवाद सहित चार भागो मे इनकी "सुवर्णमाला" काव्य प्रकाशित है।[2] जो शास्त्रीय सस्कृत गीतिकाव्य की पदावली है।

१६ उपर्युक्त ग्रन्थ श्रृखंला के अतिरिक्त १९९२ मे इनकी पुस्तक स्पेनिश भाषा मे छपी थी— "लास योगा सूत्राज दि पतञ्जलि",। यह इनकी योग सूत्र पर टीका का स्पेनिश अनुवाद है।[3]

जोशी जी मौलिक काव्य रचना के अतिरिक्त पाण्डुलिपियो की खोज और कई ग्रन्थो का प्रकाशन करवा कर सस्कृत साहित्य को समृद्व किये।[4] आपके द्वारा दो पाण्डुलिपियो[5] की खोज हुई। प्रथम "हरिभक्तदीपिका" की एकमात्र पाण्डुलिपि "के० पी० जायसवाल रिसर्च इस्टीट्यूट, पटना" से प्राप्त की गयी। यह वैष्णव धर्म पद्वति पर आधारित है। इस पाण्डुलिपि पर नव्य न्याय शैली मे लिखित सक्षिप्त वृत्ति भी है। प्रो० जोशी जी इस पर टीका सहित अग्रेजी अनुवाद और आलोचनात्क सस्करण प्रस्तुत किये है।

इसी क्रम में द्वितीय पाण्डुलिपि है—व्योमव्याविस्तव, जो जोशी जी ने अध्यापक प्रो० जॉ फिनिओजा द्वारा खोजी गयी है। इसमे व्योमव्यापी के वैभव और दार्शनिक पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है। दोनो ग्रन्थों का टीका सहित अनुवाद और आलोचनात्मक सस्करण प्रो० जोशी जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

---

1 वही —।

2. वही —।

3 वही —।

4. प्रो० रसिक बिहारी जोशी की रचनाए एव व्यक्तित्व "अप्रकाशित शोध प्रबन्ध आगरा वि० वि० से उद्धृत।

5 मोहभगम महाकाव्य एक परिशीलन—प्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध लेखिका कु० बेला हाण्डा, (राजस्थान वि०

राम प्रताप शास्त्री ग्रन्थमाला का शुभारम्भ–

१६७६ मे डॉ० जोशी ने अपने दो भाईयों के साथ अपने पूज्य पिता जी की स्मृति मे एक धर्मार्थ सस्था की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य संस्कृत साहित्य और भारतीय सस्कृति के उत्तम् ग्रन्थों की सरल भाषा में और कम मूल्यों पर जनसामान्य को सुलभ कराना था। इसके अन्तर्गत पण्डित राम प्रताप शास्त्री ग्रन्थमाला का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जिसके प्रधान सम्पादक प्रो० जोशी स्वय है।[1] प्राप्त आय इसी सस्था को समर्पित होती है।

इस ग्रन्थमाला से अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। जोशी जी के लगभग सभी ग्रन्थ यही से प्रकाशित हुए है। लीलाशुक का 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' की व्याख्या एव टिप्पणी जोशी जी के वैष्णव साहित्य के प्रगाढ पाण्डित्य को प्रकट करती है। इस ग्रन्थमाला के निम्न प्रकाशन है।[2]

१ १६७६ मे **"सारस्वतम्"** तथा लीलाशुक कृत **"श्रीकृष्णकर्णामृतम्"**

२ १६८० मे डॉ० राधारानी सुखवाल कृत **"वल्लभाचार्य का दर्शन"**।

३ १६८१ मे वेकटाध्वरि का श्री **'लक्ष्मी सहस्र'**।

४ १६८३ मे श्रीमती गीता देवी जोशी द्वारा रचित हिन्दी व्याख्या सहित **"भ्रमरगीत"**।

५ १६८२ डॉ० जान मागुल डि मोरा कृत **संस्कृत पाठ्य गन्थ के विरोधी सिद्वान्त।**

६ १६८६ मे श्री रास पञ्चाध्यायी का सास्कृतिक अध्ययन।

७ १६८६ मे डॉ० जोशी द्वारा सम्पादित लौगाक्षि भास्कर की तर्ककौमुदी अग्रेजी भूमिका तथा अनुवाद टिप्पणी सहित।

८ १६८६ मे श्री गोवर्धन–गौरवम् हिन्दी अनुवाद के साथ।

६. १६८६ में **'प्रज्ञापारिजात'** काव्य अंग्रेजी अनुवाद सहित।

१० १६८७ में श्रीरञ्जन सूरिदेव द्वारा सम्पादित वासुदेव हिन्दी।

११ १६८८ में "पतजलि का योगसूत्र" जोशी की मौलिक कृति हिन्दी अनुवाद व्याख्या सहित।

---

1 वही पृष्ठ सख्या ८ उद्धृत।

2. प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत श्री राधा पचशती काव्य हिन्दी अनुवाद प्रथम सस्करण १६६३ के पृष्ठ स०

१२ १६८६ मे डॉ० कुज बिहारी जोशी कृत 'श्री दयाकाव्यम्'।

१३ १६८६ मे डॉ० जोशी कृत श्री गुरूस्तोत्रम्।

१४ १६६१ मे डॉ० जोशी कृत श्री सौदर्शन काव्यम् हिन्दी अनुवाद सहित।

१५ १६६२ मे डॉ० जोशी कृत्र श्री गुरूपञ्चाशिका।

१६ १६६३ में डॉ० जोशी कृत श्री गिरिराजपचाशिका।

१७ १६६३ डॉ० रसिक बिहारी जोशी कृत श्री राधा पचशती काव्य हिन्दी अनुवाद सहित।

उपर्युक्त ग्रन्थो के प्रकाशनो के अतिरिक्त आज भी प० राम प्रताप शास्त्री ग्रन्थमाला मे ग्रन्थ प्रकाशन की प्रक्रिया जारी है।

सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्ति

डॉ० रसिक बिहारी जोशी को संस्कृत साहित्य की समृद्व बनाने के लिए मौलिक ग्रन्थ रचना पर सम्मान एव पुरस्कारों से सम्मनित किया जाता रहा है।[1] सस्कृत विद्या के क्षेत्र मे असाधारण योगदान के फलस्वरूप "चार्ल्स यूनिवर्सिटी आफ प्राग" ने एक विशेष उपाधि वितरण समारोह मे १६६४ मे एक "कामेमोरेटिव" गोल्ड मेडल प्रदान किया गया है।[2]

प्रथम मौलिक रचना **'करूणा कटाक्ष लहरी'** पर १६७६ मे उ० प्र० संस्कृत अकादमी का ३००० रू० का विशेष पुरस्कार एव म० प्र० साहित्य अकादमी भोपाल का २००० रू० का अखिल भारतीय कालिदास पुरस्कार प्रदान किया गया। **मोहभंगम** महाकाव्य को उ० प्र० साहित्य अकादमी ने १६८१ मे ५००० रू० का कालिदास पुरस्कार प्रदान किया।[3]

सस्कृत वाड्मय के प्रचार–प्रसार, सस्कृत तथा भारतीय धर्म दर्शन के क्षेत्र मे असाधारण योगदान एव जनमानस में संस्कृत विद्या, धर्म और भारतीय सस्कृत के प्रति रूचि

---

1 प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत मोहभगम महाकाव्य एकपरिशीलन प्रकाशित राजस्थान वि० वि० शोध प्रबन्ध के कवि परिचय–प्रथम अध्याय पृष्ठ६ से उदधृत–लेखिक बेलाहाण्डा, प्रथम सस्करण १६८७।

2 वही पृष्ठ सख्या ६।

उत्पन्न करने के लिए दिया जाने वाला ५,००० रू० का **'हरीत ऋषि पुरस्कार'** १६८४ मे जोशी जी को "महाराणा मेवाड फाउन्डेशन" उदयपुर की ओर से भेट है।[1]

१६८४ मे ही स्वतन्त्रता दिवस के स्वर्णिम अवसर पर सस्कृत वाङ्मय की सेवा तथा सस्कृत साहित्य को असाधारण योगदान के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार प्रदान किया गया।[2]

के० के० विडला फाउन्डेशन द्वारा ७५,००० रू० का आठवॉ वाचस्पति पुरस्कार प्रो० रसिक विहारी जोशी को श्रीराधापञ्चशती काव्य पर प्रदान किया गया है।[3]

डॉ० रसिक बिहारी जोशी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। जो सस्कृत भाषा के अथक सेवी है। इन्होने अपनी विद्वता, यशार्जन मे अभी भी आत्मतोष का अनुभव नही किया है अपितु सस्कृत भारती की सेवा मे समग्र जीवन समर्पित किया है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने अनेक आयामो से सस्कृत की समृद्धि, एव वृद्धि, प्रसार–प्रचार, और विस्तार तथा उद्धार के लिए देश विदेशों मे सतत् प्रयत्न किया है। आपने अपनी मौलिक रचना से तो सस्कृत साहित्य को समृद्व किया है, इसके अतिरिक्त अनेकानेक विषयों पर पुस्तके प्रकाशित करवाकर सस्कृत साहित्य मे विशेष योगदान किया है। १६५७ से लेकर आद्यपर्यन्त विभिन्न पुस्तको के प्रकाशन मे लीन है। यथा–वैदिक साहित्य का इतिहास और रास–पचाध्यायी का सास्कृतिक अध्ययन हिन्दी मे प्रकाशित है। इस पुस्तक ने भारत के प्रसिद्व पाण्डितो, भक्तो विद्वानो आस्तिक जनो को मोहित किया। पाण्डित्य और भक्ति का अनुपम समन्वय करते हुए कए–एक श्लोक की तीस–२ व्याख्या और सस्कृत में पाद–टिप्पणी पद–पद पर जोशी जी के महत पाण्डित्य का परिचायक है 'ल रिचुअल द ला डिवोशियो कृष्णाइट' फेन्च भाषा में छपी है।

'स्फोट का सिद्वान्त', पूर्व यूरोपीय देशे में संस्कृत अध्ययन', 'कम्बोडिया मे भारतीय सस्कृति', विदेशो में सस्कृत अध्ययन, आदि विषयों पर लिखे गये सस्कृत लेख 'सागारिका' नामक सस्कृत पत्रिका में समय–समय पर प्रकाशित हुए हैं।[4] भारतीय दर्शन से

---

1. आगरा वि० वि० से स्वीकृत शोध प्रबन्ध "रसिक बिहारी जोशी की रचनाऐ एव व्यक्तित्व' से उद्धृत। अप्रकाशित।
2. प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत मोहमगम महाकाव्य–एकपरिशीलन प्रकाशित शोधप्रबन्ध, लेखिका कु० बेला हाण्डा से उद्धृत पृष्ठ स० १० (प्रकाशक श्री पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली)
3. हिन्दी दैनिक समाचार पत्र–'दैनिक जागरण' एव अमर उजाला से २४ मार्च, २००० प्रकाशित वाचस्पति पुरस्कार।
4. 'मोहभगम महाकाव्य एक परिशीलन' कु० बेला हाण्डा शोध प्रबन्ध से उद्धृत पृष्ठ १०।

सम्बन्धित विभिन्न विषयो पर भी इनके लेख विभिन्न पत्रिकाओं मे भिन्न–२ स्थानो से प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त १६७६ से प० राम प्रताप शास्त्री ग्रन्थमाला का प्रकाशन आरम्भ करके स्वय सम्पादक के रूप मे विभिन्न पुस्तको का प्रकाशन जारी है।

प्रो० रसिक बिहारी जोशी देश विदेश में समय–समय पर विभिन्न विषयो पर आयोजित व्याख्यान मालाओ एवं सम्मेलनो मे भाग लिये। १६६४–६५ मे पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, हगरी, कम्बोडिया, आदि स्थानों पर भारतीय दर्शन तथा सस्कृत के विजिटिग प्रोफेसर के रूप मे आमान्त्रित किये गये।[1] १६६८–६६ मे मैक्सिको व अमेरिका आदि स्थानो पर गये और १६७६ मे इनको भारत सरकार द्वारा "आफिशियल डेलीगेशन' के चेयरमैन के रूप मे जर्मनी मे होने वाली "वर्ल्ड सस्कृत कान्फ्रेन्स" म भजा गया।[2] इसी समय "इण्डियन कौसिल आप कल्चरल रिलेशन्स", द्वारा मैक्सिको मे सस्कृत और दर्शन के विजिटिग के रूप मे भेजा गया।[3] वहा इनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर स्थायी नियुक्ति का प्रावधान करके इनसे स्थायी निवास की प्रार्थना की गयी, लेकिन भारत और भारती के स्नेह वशीभूत होकर वापिस दिल्ली लौट आये और दिल्ली वि० वि० के सस्कृत विभाग की अध्यक्षता का भार वहन करते हुए निरन्तर संस्कृत साहित्य की सेवा मे लीन रहे। **सम्प्रति आप पुनः मैक्सिकों 'एल कोलिजियों डि मैक्सिको' संस्था में भारतीय विजिटिग प्रो० के रूप में सेवारत है।**[4]

डॉ० जोशी जो १६६१ से निरन्तर एम० फिल एव पी० एच० डी० की उपाधि, दो दर्जन से अधिक शोध छात्रो को दिला चुके हैं। जोशी जी के व्यक्तित्व मे अनेक विशेषताए देखी जा सकती– सहज, स्नेहपूर्ण मिलना, यथानुकूल सम व्यवहार आदि। इन्ही विशेषताओ के कारण कोई भी व्यक्ति प्रथम बार मिलकर ही आपसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

सस्कृत–जगत् मे आज कोई भी विद्वान् ही ऐसा होगा जो संस्कृत, अग्रेजी, फ्रेन्च, स्पेनिश, हिन्दी आदि भाषाओं मे धारा प्रवाह बोलने और लिखने का समानाधिकार रखता है। पाण्डित्य के साथ–२ भक्ति, साधना–उपासना, का अनुपम मणिकांचन संयोग जोशी जी मे है। इनकी काव्य रचनाओं में इनके भक्ति संवलित विचार तथा पवित्र त्तिभूमि स्पष्ट देखी जा सकती है। पौरस्त्य परम्परागत संस्कार और पाण्डित्य तथा पाश्चात्य आलोचनात्मक भाषा–वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण, दोनो का समन्वय इनके व्यक्तित्व में दृष्टिगोचर होता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रो० जोशी की रचनाओं मे एक ओर सस्कृत अलकार शास्त्र की कसौटी पर खरे उतरने वाले काव्य तथा महाकाव्य है तो दूसरी ओर आधुनिक अनुसन्धान पद्वति का अनुपम पाण्डित्य भी परिलक्षित होता है वस्तुत डा० जोशी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानों मे भारत वर्ष में मूर्धन्य है।

यद्यति भारतीय मनोभूमि के अनुसार किसी काव्य के आलोचना के पूर्व कवि वृत्त का विस्तृत उल्लेख प्राय प्राप्त नही होता, तथापि समकालिक कवि की रचना का समावलोकन करने से यह सौभाग्य मुझे जैसे शोध विद्यार्थियो को सहज ही समुपलब्ध हैं पुनश्च जैसा कि उपर्युक्त जीवनवृत्त के सिहांवलोकन से प्रस्तुत प्रसग मे कवि और काव्य, और साधना मे जैसे कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। जोशी जी का समग्र जीवन ही सारस्वत उपासना का जीवन रहा है, इसलिए उनके जीवन का यह सक्षिप्त परिचय उनका ही नहीं, उनके काव्य परिचय का पथ भी प्रदर्शित करता है।

द्वितीय अध्याय

मुक्तक काव्य– शतक काव्य परम्परा एवं श्रीराधापञ्चशती की कथावस्तुः–

(i) मुक्तक, अर्थग्रहण एवं रसनिष्पत्ति।

(ii) मुक्तक काव्य के भेद एवं विशेषताएं

(iii) शतक काव्य परम्परा एक परिचय

(iv) शतक काव्य के रूप में पञ्चशती संज्ञक "श्रीराधापञ्चशती" की कथा वस्तु

मुक्तक काव्य

मुक्तक का तात्पर्य है—पूर्वापर प्रसगरहित परस्पर निरपेक्ष पद्य—समूह। मुक्तक काव्यों में पूर्वापर प्रसग की आवश्यकता नहीं होती है। वे अपने आप में पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं। और पूरा भाव प्राय· एक पद्य मे पूर्ण हो जाता हैं।[1]

"मुक्तक" शब्द मुक्त शब्द से सज्ञार्थ[2] अथवा ह्रस्व[3] अर्थ मे कन् प्रत्यय होने पर बनता है। पुन मुक्त शब्द भी "मुच्" धातु से क्त् प्रत्यय जोडने पर सम्पन्न होता है। तथा भूतकाल एवं फलाश्रय के समानाधिकरण का ज्ञान कराता है। इस प्रकार मुक्त शब्द का अर्थ होता है—छोडा हुआ अर्थात्, स्वतन्त्र। इस तरह मुक्तक का शाव्दिक अर्थ हुआ— **"मुच्यते इति मुक्तकम् तदैव ह्रस्वं द्रव्य मुक्तकम्।"** अर्थात् लघु कलेवर मुक्त पदार्थ मुक्तक कहलाता है।

भामह ने मुक्तक को अनिबद्ध काव्य कहा है।[4] और उसका विशिष्ट लक्षण न देकर सामान्य रूप से कह दिया है कि गाथा और श्लोक मात्र आदि को अनिबद्ध काव्य कहते हैं।[5] मात्र शब्द का प्रयोग उन्होने एकाकी के अर्थ में किया है, अर्थात् अकेले श्लोक अथवा गाथा को अनिबद्ध काव्य कहते है।

इस परिभाषा से मुक्तक की विशेषताओ का उद्घाटन नही होता है। दण्डी ने भी कह दिया कि सर्गबन्ध के ही अश होने के कारण मुक्तक् कुलक कोश और संघात की परिभाषाएं नही दी गयी हैं।[6] वामन ने भी पद्यमय काव्य के अनिबद्ध और निबद्व भेदो का उल्लेख मात्र तो किया है, उनके लक्षण नही दिये है केवल यह कह दिया है कि प्रसिद्व

---

1. इ० वि० वि०, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "गोवधर्नाचार्य कृत आर्यासप्तशती" का आलोचनात्मक अध्ययन", — डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ—३५ से उद्धृत।
2. सज्ञाया कन् अष्टाध्यायी—५.३.८७।
3. ह्रस्वे।
4. भामह कृत काव्यालकार १/१८।
5. "अतिबद्ध पुर्नगाथा श्लोक मात्रादि तत्पुन"— भामह. काव्यालकार—१/२०।
6. मुक्तकं कुलंक कोश· सद्यात इति ताद्दश
   सर्गबन्धाशरूपत्वादनुक्त पद्य विस्तर ।।

होने के कारण उनके लक्षणों की आवश्यकता नही हैं।[1] इस पर कामधेनु टीका के कर्त्ता ने लिखा है–मुक्तक का लक्षण भामह ने इस प्रकार किया है, पहले मुक्तक आदि का ऋजु लक्षण कहा जाता है। गम्भीर्य, औदार्य, शौर्य, नीति और मति का स्पर्श करने वाले एक ही पद्य मे रचित काव्य मुक्तक दो पद्यो वाला द्विक और तीन वाला त्रिक कहलाता है।[2]

मुक्तक का तात्पर्य है, परस्पर निरपेक्ष पद्य समूह। आचार्य अभिनवगुप्त इसी दृष्टि से अपने आप मे परिपूर्ण अभिप्राय वाले श्लोकों को मुक्तक की सज्ञा देते है और मुक्त शब्द से सज्ञा में कन् प्रत्यम करके इसकी सिद्वि करते है।[3] आचार्य द्वारा प्रदत्त मुक्तक की यही परिभाषा परवर्ती समीक्षको द्वारा भी पुष्ट की गयी है। आचार्य विश्वनाथ ने छन्दोंपबद्व को मुक्तक कहा हैं।[4] काव्यानुशासन मे भी यही रूप प्रतिपादित हुआ है।[5]

अग्निपुराण मे अकेले ही रहकर चमत्कार सृष्टि में समर्थ श्लोक को मुक्तक कहा गया हैं।[6] वैसे तो अग्नि–पुराणकार ने अलंकारवादी और रसवादी दृष्टिकोण मे समन्वय करते हुए कहा है कि यद्यापि काव्य में वाग्वैदग्ध्य की ही प्रधानता रहती है। तथापि उसका जीवन रस ही है,[7] परन्तु मुक्तक भी रस सृष्टि मे समर्थ हो सकता है, इसमे उन्हे कुछ सन्देह था। अत उन्होने ''चमत्कारक्षम विशेषण ही दिया।

मुक्तक–सम्बद्व उपर्युक्त सामग्री के विश्लेषात्मक अध्ययन को आधार बनाकर यह मान्यता स्थापित की जा सकती है कि, ''मुक्तक, काव्य का वह स्वरूप है जिसका

---

1 अनयो प्रसिद्वत्वाल्लक्षण नोक्तम्।–वामन् ''काव्यालडकार सूत्र वृत्ति''–१/३/२७।

2. प्रथम मुक्तकादीनामृजुललक्षणमूच्यते।
यदेवगाम्भीयौदार्य शौर्यनीतिमतिस्पृशा।
भवेन्मुक्तकमेफेन द्विक द्वाम्भा त्रिक त्रिभि।।–कामेधेनु टीकाकार।

3. मुक्तक भन्येनालिड्गित तस्य सज्ञाया कन् .. ।
पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।।
–ध्वन्यालोक टीका–३/६३।

4. ''छन्दोपबद्वपद पद्य तेन मुक्ततेन मुक्तकम्''– साहित्यदर्पण–६/३१४।

5. ''एकेन छन्दसा वाक्यार्थसमाप्तो मुक्तकम्''। हेमचन्द्र, 'काव्यानुशासन'– ८/११ पर वृत्ति।

6. मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षम सताम्।। –आग्निपुराण–३३७/३६

प्रत्येक श्लोक अपनी अर्थयोजना के लिए अपने आप मे पूर्ण होता है "मुक्तक का यही स्वरूप आधुनिक आलोचना मे स्वीकृत हुआ हैं।[1]

मुक्तक काव्य में अर्थग्रहण तथा रस निष्पत्ति

मुक्तक काव्य के सम्बन्ध में साहित्यिक क्षेत्र में अर्थग्रहण तथा रसनिष्पत्ति विषयक दो कठिनाईयों की चर्चा की गयी हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि मुक्तक काव्य का प्रत्येक श्लोक पूर्वापर प्रसंग से रहित होता है। ऐसी स्थिति में बिना पूर्वापर प्रसंगो के बोध के अर्थग्रहण मे कठिनाई होती है। मुक्तककारो के थोडे मे बहुत कुछ कह देने की प्रस्तुति के कारण यह समस्या और भी कठिन हो जाती है।[2]

प्रस्तुत समस्या एकमात्र मूल यही निकाला जा सकता है कि मुक्तको के अर्थग्रहण के लिए पाठक को कल्पनाशक्ति के सहारे पूर्वापर प्रसंगो का बोध करना चाहिए। स्वयं मुक्तककार भी प्रत्येक मुक्तक को अपने आप में पूर्ण बनाने के लिए, भाव की परिपूर्णता कला का सौष्ठव एव भाषा की समासशक्ति का सहारा लेता है। डॉ० भोलाशंकर–व्यास ने इसी तंथ्य को इन शब्दो मे निरूपित किया है– "मुक्तक काव्य एक ही कृति के डोरे पर पिरोये हुए अलग–२ मोती है, जो एक दूसरे से सर्वथा विलग रहते है। . .. .स्वत पूर्णता का सचार करने के लिए उसमें भावपक्ष की परिपूर्णता, कलापक्ष का सौष्ठव तथा भाषा की समान्य शक्ति अत्यधिक अपेक्षित होती है"।[3]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मुक्तकों के अर्थग्रहण मुक्तक के रचयिता एव पाठक दोनों का सहयोग अपेक्षित होता है। भाव, कला एवं समाज शैली मे विरचित मुक्तक को ही सम्भवत. अग्निपुराण मे अपने आप में चमत्कार की छमता से परिपूर्ण कहा है ऐसे चमत्कारी मुक्तकों का अर्थग्रहण प्रवुद्ध पाठक बिना कल्पनाशक्ति के कैसे कर सकता हैं?

---

1. डॉ० भोलाशकर व्यास ने मुक्तक की उपर्युक्त परिभाषा को ही अन्य शब्दो मे पुष्ट करते हुए लिखा है–"मुक्तक काव्य वह है जिसमे प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र होता है वह एक छोटा सा स्वत पूर्ण चित्र होता है, उसे प्रसगादि के लिए किसी दूसरे पथ की अपेक्षा नही होती है"।
   –सस्कृत कवि दर्शन–पृष्ठ ५३६–४०।
2. डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि० "गोवर्धनाचार्यकृत आर्यासप्तशती" का आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ–३८ से उद्धृत।
3. डॉ० भोलाशकर व्यास, "सस्कृत कवि दर्शन, पृष्ठ–५३६–४०।

अब मुक्तक काव्यों के सन्दर्भ मे रसनिष्पत्ति सम्बन्धी कठिनाई को विवेचित करना है। आर्या, मालिनी बसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा जैसे छोटे–छोटे छन्दो मे भला रसचर्वणा कैसे हो सकती है? निश्चित ही इस स्थिति मे रसचर्वणा के लिए पुन कल्पनाशक्ति का ही आश्रय लेना पडेगा। अर्थनिष्पत्ति एव रसनिष्पत्ति की इन्हीं विसंगतियो के कारण पुस्तक काव्य आलोचना के क्षेत्र मे विवादास्पद रहा है। आचार्य बामन जैसे प्रवुद्ध समालोचक ने भी मुक्तक काव्यो की आलोचना करते हुए कहा है कि जैसे अग्नि का अकेला परमाणु नहीं चमकता, इसी प्रकार अनिबद्व "मुक्तक" काव्य प्रकाशित नही होता है।[1]

सस्कृत आलोचना की यह प्राचीन मान्यता हिन्दी को आधुनिक समालोचना के क्षेत्र मे विद्वानो के एक वर्ग मे प्रतिष्ठित हुई। हिन्दी के प्रसिद्व समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबन्धकाव्यो की तुलना मे मुक्तक काव्यो को हेय दृष्टि से देखा है। उनके अनुसार सौन्दर्य की दृष्टि से यदि प्रबन्धकाव्य वनस्थली होता है तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता। मुक्तक–काव्यो मे आनन्द की सिद्वावस्था प्रस्फुटित होती है। जबकि प्रबन्ध काव्यो मे आनन्द की साधनावस्था वाला जीवन का गत्यात्मक चित्र उपस्थित होता है।[2]

परन्तु उपर्युक्त आलोचना के अलावा भावात्मक कलात्मक एव समाहार शक्ति के अद्भुत मिश्रण के रसपरिपाक से ओत–प्रोत यही मुक्तक आलोचकों के एक दूसरे के द्वारा समाद्दत हुआ है। ध्वानिवादी आचार्य आनन्द–बर्धन ने मुक्तकों के इन्हीं वैशिष्ट्य के कारण प्रबन्ध काव्यों की ही भॉति मुक्तको में भी रस–पयस्विनी को प्रवाहित माना है। उनकी दृष्टि मे अमरुक का एक–एक श्लोक रस की दृष्टि से किसी भी प्रबन्ध काव्य की टक्कर लेने मे सक्षम है।[3] आचार्य अभिनवगुप्त भी इसी तरह की मान्यता स्थापित करते हुए कहते हैं कि

---

1. नानिबद्वं यकारस्त्येकतेज परमाणुवत्।
   "न खलु अनुबिद्व काव्य चकास्ति दीप्यति। ययैकतेज परमाणुरिति।
   अत्र श्लोकः–
   असकलितरूपाणा काव्याना नास्ति चारूता।
   न प्रत्येक प्रकाशन्तो तेजसा परमाणव ।।
2. विस्तृत विवेचनार्थ द्रष्टव्य– "डॉ० भोलाशकर व्यास सस्कृत कविदर्शन पृष्ठ ५३५–३६।
3 "मुक्तकेषु हि प्रबन्धोष्विव रसबन्धाभिनिवेशिन कवयो दृश्यन्ते। यथा ह्यमरूकस्य कवेर्मुक्तका श्रृङ्गार रसस्यन्दिन प्रबन्धायमाना प्रसिद्धा एव।"
   –ध्वन्यालोक तृतीयउधोत–७ वीं कारिकावृत्ति

प्रबन्ध काव्यो मे भी कही–कही कोई ऐसा समर्थ श्लोक रहता है जो अपने आप मे पूर्ण स्वतन्त्र एवं रस परिपाक की दृष्टि समर्थ रहता है।[1]

ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि मुक्तक द्वारा भी रस की सृष्टि सम्भव है। उनके अनुसार प्रबन्ध या मुक्तक मे रस का निर्वाह करने के इच्छुक सुबुद्व कवि को विरोधी भावो के परिहार का यत्न करना चाहिए।[2] इस प्रकार आचार्य आनन्द बर्धन तथा लोचनकार अभिनवगुप्त ने मुक्तकों में भी प्रबन्धकाव्यों की भाँति रसप्रवाह की अवधारणा को पुष्ट किया है।

अन्त मे केशवकृत "शब्दकल्पद्रुमकोष" मे मुक्तक के सभी गुणों को स्पष्ट किया गया है।[3] इस परिभाषा के प्रथम चार शब्दो से स्पष्ट है कि जो पद्य अर्थ प्रत्यायन और रसास्वादन मे परापेक्षी न होकर पृथक और व्यवच्छिन्न रूप मे स्वतः पूर्ण हो, वह मुक्तक कहलाता है। प्रबन्धकाव्य मे अर्थ का पर्यवसान कथानकगत होता है जबकि मुक्तक में उसकी अपेक्षा नहीं होती है। **'निर्व्यूढ'** शब्द जिसका अर्थ है अच्छी प्रकार किया हुआ, मुक्तक की इसी विशेषता को लक्षित करता है। "विशेषित" शब्द उसके विशिष्ट उद्देश्य और अतिशोभन उसकी कलात्मकता का द्योतन करता है। स्त्रियों के लावण्य[4] के समान ध्वनि ही मुक्तक की शोभा है। रसास्वादन और चमत्कृति प्रबन्ध के प्रत्येक पद्य में सम्भव नही किन्तु मुक्तक में रस की समग्र विशेषताओं का समाहार आवश्यक है।

यही मुक्तक का विशेष उद्देश्य है जो उपर्युक्त विशेषित विशेषज्ञ से अभिव्यक्त है। युक्तशब्द का एक अन्य अर्थ ब्रह्मानन्द प्राप्त आत्मा भी है।[5] इन सभी अर्थो की सगति

---

1. पूर्वापरनिपेक्षणापि येन रस–चर्वणा क्रियते तदैवमुक्तकम्।
   –ध्वन्यालोक लोचन टीका–३/६३।
2. प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन बन्द्धुमिच्छता यत्न· कार्य सुमतिना परिहारे विरोधिनाम्।।
   –आन्नदवर्धन, ध्वन्यालोक–३/१७
3. विनाकृत विरहित व्यवछिन्न विशेषितम्
   भिन्न स्यादभ निर्व्यूढ मुक्तकं चाति शोभनम्।। – केशव "शब्दकल्पद्रुम कोष"
4. (क) ध्वन्याश्लोक, लोचनटीका कार अभिनवगुप्त लावण्य की परिभाषा दी है–
   लावण्य हि नामावय व सस्थानाभि व्यग्यमवयवव्यतिरिक्त धर्मान्तरमेव।
   न चावयवानामेव निदोषिता वा भूषणयोगा वा लावण्यम्।।
5. राम चन्द्र शुक्ल, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती का आलोचनात्मक अध्ययन" पृष्ठ–४२, ४३ से उद्धृत।

करते हुए मुक्तक की परिभाषा निम्न प्रकार से की जा सकती है–"मुक्तक उस पद्य को कहते है जो परत· निरपेक्ष रहता हुआ भी पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति मे समर्थ हो। चमत्कृति गुम्फन एव ध्वनि आदि की विशेषताओ के कारण रमणीय तथा चर्वणा में ब्रह्मानन्दसहोदर रस की अनुभूति द्वारा हृदय को मुक्त दशा मे पहुंचाने मे समर्थ हो।"

मुक्तक काव्य की विशेषताएं

मुक्तक काव्य की उपर्युक्त समीक्षा से इसकी कुछ विशेषताएं स्पष्ट होती है–

१ मुक्तक के प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होते हैं–यथा नीतिशतक।[1]

२ भाषा की समासशक्ति का उनमे बहुत प्रयोग होते है, यथा–श्रीराधापंचशती।[2]

३ सीमित परिवेश के कारण इस के सभी उपादानो का वर्णन नहीं होता है यथा–ऋतुसंहार के श्लोक।[3]

४ सीमित परिवेश के कारण श्रोता या पाठक को प्रत्येक श्लोक द्वारा आनन्दित करने के लिए इनमें अभिव्यक्ति सौन्दर्य का विधान किया जाता है यथा–मेघदूत।

५ इसमे भाव–वैभव एवं कलात्मक सामग्री का मणिकांचन सयोग होता है यथा–गीतगोविन्दम्।

६ गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति के कारण इनमे समास शैली का प्रयोग किया जाता है। यथा– आर्यासप्तशती।

---

1. मनासि वचसि काये पुण्यपीयुषपूर्णा
स्त्रिभुवनभुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्त ।
परगुण परमाणुन पर्वतीकृत्य नित्य
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्त· कियन्त ।।–नीतशतक–७६।

2. दिवाकरकरच्छटा कमलमण्डले राजते,
हरिप्रियतमापदधुतिकण· समाधौ सदा।
विकाशयति तत्प्रभा कमलमेव नान्तर्मन
सदैव चरणधुतिर्मम विमुक्तमन्तर्मन· ।।–श्री राधापचशती–१३३

3. काशाशुका विकचपदममनोज्ञवक्त्राः सोन्मादहसनवनूपुर नादरम्या।
अपक्वशालिरूचिरानतगोत्रयष्टि·, प्राप्त शरन्नववधूरिव रूपरम्या।। –ऋतुसहार–३/१।

७ पाठक को आनन्द विभोर करने के लिए इनमे श्रृगार रस का प्रयोग किया जाता है। श्रृगार रस को रसराज कहा जाता है। यह जीवन की वास्तविकता से सम्बद्व है अत· श्रृगार के दोनो पक्षो की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती हैं।–यथा श्रृगार शतक।

८ सस्कृत–मुक्तकों मे प्रकृति के वाह्म एवं अन्त· दोनो रूपों का चित्रण होता है। मानव के सुख–दु ख मे प्रकृति भी सुख दुःख्ा की अनुभव करती है। कही पर प्रकृति आलम्बन विभाव होती है तो कहीं पर उद्दीपन।–यथा–पूर्व–मेघदूत।[1]

९ सह्रदय सवेद्यता, जीवन की मार्मिक अनुभूति, सुख–दुःख का सजीव चित्रण, प्रसाद और विशाद का विशद वर्णन, जीवन की वास्तविकता की सुन्दर अभिव्यक्ति, इन मुक्तक काव्यो की प्रमुख विशेषता रही है।

१०. श्रृंगार की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं का मार्मिक चित्रण इस कार्य की महती विशेषताएं है। यथा– आर्याशप्तशती।

११ श्रृगार अनुगत भक्ति रस की प्रधानता के साथ वर्णन करके ब्रह्मानन्द की अनुभूति अत्याधुनिक मुक्तक य़था श्री राधापंचशती[2] की विशेषता रही हैं।

मुक्तक काव्य के भेद

मुक्तक विषयक काव्यशास्त्रीय समीक्षा सें यह विदित होता है कि इसमें स्वरूप विषयक एकरूपता के होते हुए भी भेद विषयक विभिन्नता देखने को मिलती है। यथा–दण्डी मुक्तक के केवल चार भेद मानते है।[3] मुक्तक, कुलक, कोश और संघात।

---

1. काले काले भवति भवहो यस्य सयोगमित्य
   स्नेह व्यक्तिश्चिरविरहज मुचतो वाष्पमुष्णम्।।–पूर्वमेघ १/१२

2. (क) राधाया नयन सुकल्पलतिका यत्रास्ति काचिच्छुकी,
   गायन्त्री कलमस्ति नाम मधुर कृष्णस्य रात्रिदिवम्।
   य श्रोतु प्रभवेदमुं रसमय सगीतनाद सकृत,।
   त्यक्त्वा तापमय जगत् स लभते धन्यो विभुक्ति पराम्।।
   –श्री राधापंचशती–८०।

   (ख) राधे! ते नयन दधाति परमामिन्दी वराणा च्छटां
   चञ्चत्खञ्जनमञ्जुलामपि गति चञ्चद्द्विरेफच्छविम्।
   मन्ये तन्नितरा धुनोति शफरी चाञ्चल्य् मान सदा,
   कृष्णस्पापि दुनोति चित्तममल महय् भवेन्मोक्षदम्।। –श्रीराधापञ्चशती ५८।

3. "मुक्त्क कुलक कोश सघात इति तादृश"।–काव्यादर्श–१/१३

अग्निपुराण मे इसके कलाप, पर्यायबन्ध, विशेषक, कुलक एव मुक्तक आदि भेद किये गये है।[1] ध्वन्यालोककार ने मुक्तक काव्य के छ· भेद किये है[2] –मुक्तक, सन्दानितक, विशेषक, कलापक, कुलक, और पर्यायबन्ध। इसमें प्रथम स्थान मुक्तक काव्य को ही दिया गया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी इसके छ. भेंद किये है– मुक्तक, सन्दग्नितक, विशेषक, कलापक, कुलक, कोश, प्रघट्टक , विकीर्णक एवं संघात।[3] इसी क्रम मे आचार्य विश्वनाथ ने भी मुक्तक, युग्मक, सन्दगितक, कलापक, कुलक एवं कोश के रूप मे छः भेद किये हैं।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि संख्या नामकरण एव स्वरूप की दृष्टि से मुक्तक काव्यो मे अत्यधिक मतभेद परिलक्षित होता है। इस मतभेद का एकमात्र कारण है काव्यशस्त्रियों का मुक्तक के विषय में भिन्न–भिन्न शास्त्रीय भेंदो की समीक्षा करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

१ मुक्तक– एक ही छन्द मे समाप्त होने वाला श्लोक मुक्तक कहा जाता है।[5]

---

1. मुक्तक श्लोक एकैरूश्चमत्कारक्षम सताम्
   द्वाभ्यान्तु युग्मक ज्ञेय त्रिभि श्लोकै विशेषकम्।।
   चतुर्भिस्तु कलाप स्यात्, पन्चभि कुलक मतम्।।
   –अग्निपुराण।।
2. यत काव्यस्य प्रमेदा मुक्तक सस्कृतप्राकृतापभ्रशनिवद्व, सन्दानितकविशेषक कलापकुलकानि, पर्यायबन्ध परिकथा, खण्डकथासकलकथे, सर्गबन्धो, अभिनेयार्थ, आख्यायिकाकन्थे इत्येवमादय ।
   – ध्वलालोक कारिका ३/७ पर वृत्ति
3. "मुक्तक सन्दानितक विशेषककलापक कुलक पर्यायकोशप्रभृत्थनिवद्वम्।"
   बामन–काब्यानुशासन ८/१० पर वृत्ति।
4. छन्दोबद्व पद्य तेनैकेन च मुक्तकम्
   द्वाम्या तु मुक्तक सन्दानितक त्रिभिरिष्यते।।
   कलापक चतुर्भिश्च पञ्चाभि कुलक मतम्।।
   – साहित्य दर्पण, सूत्र–३०१, षष्ठयरिच्छेद।
5. (अ) "पद्यान्तर मुक्तक श्लोकान्तर निरपेक्ष एकमेव पद्यम्।"
   –काव्यानुशासन–१/१३पर वृत्ति
   (ब) "मुक्त्क श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षम सताम्।"
   –अग्निपुरा ण–३३७/३६
   (स) "एकेन छन्दसा वाक्यार्थ समाप्तों मुक्तक यथा–अमरूकस्य
   –काव्यानुशासन–८/११ पर वृत्ति।

आचार्य राजशेखर ने मुक्तक सग्रह मे प्रतिपादित विषय के आधार पर इसक निम्नलिखित पाच भेद किये है, जो इस प्रकार है–[1]

(i) **शुद्व मुक्तक–** जिस मुक्तक काव्य में इतिवृत्त या इतिहास वर्णित न हो; यह शुद्वमुक्तक कहलाता है।

(ii) **चित्र मुक्तक–**सामान्य चित्रण का विस्तृत वर्णन होने पर चित्रमुक्तक काव्य कहलाता है।

(iii) **कथोत्थमुक्तक–** जिस मुक्तक में किसी प्राचीन कथा या ऐतिहासिक घटना का उल्लेख होता है वह कथोत्थमुक्तक है।

(iv) **संविधानक भू: मुक्तक–** जिस मुक्तक में घटना की सम्भावना व्यक्त की जाय वह संविधानभू: मुक्तक होता है।

(v) **आख्यानकवान मुक्तक–** जहा पर किसी आख्यान का वर्णन हो वह आख्यानकवान मुक्तक कहलाता है।

"मुक्तक काव्यों की संख्यापरक नामकरण परम्परा"

संस्कृत साहित्य में अनिबद्व काव्यो की संख्या के आधार पर नामकरण की एक सुविस्तृत परम्परा रही है। कोषकार के लिए किसी संख्या विशेष का बन्धन नहीं होता। वह तो अपनी इच्छानुसार कितने ही पद्यरत्नो का सग्रह अपने कोष में कर सकता है। यही कारण है कि मुक्तक संग्रह की कोई निश्चित सख्यापरक पद्वति नहीं दीखती हैं। कुछ मुक्तक काव्य–पांच पद्यों के, कुछ आठ, नौ, पन्द्रह, पचास, कुछ सौ, कुछ पांच सौ, कुछ सात सौ आदि के दिखायी पडते है। सक्षेप में कुछ संख्यापरक काव्यों के उदाहरण[2] द्रष्टव्य हैं।

---

1. विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य है–काव्यमीमासा–११६ से ११९।
2. डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध–''गोवर्धनचार्य वृत्त आर्यासप्तशती का आलोचनात्मक अध्ययन', पृष्ठ ६२–६३।

पंचक संज्ञक मुक्तक काव्य– पांच पद्यो के समूह को पञ्चक काव्य कहा गया है, यथा–श्रृगाराचार्य का कल्याणी पंचक, वेदान्तदेशिक एवं वेकटनाथ का बैराग्यपञ्चक, श्री शकराचार्य का ललितापञ्चकम् आदि।

सप्तसंज्ञक काव्य– इस परम्परा में इलय ताम्वरान का "श्री पादसप्तकम्" एव ए० आर० राजवर्म का मुद्रासप्तक आदि।

अष्ठसंज्ञक काव्य– आठ पद्यो के संग्रह वाला काव्य, यथा मयूर कवि का "मयूराष्टक", जीवगोस्वामी का– "जाहव्याष्टकम्", कृष्णकविराज का "राधाष्टकम्", श्री शकराचार्य का 'शिवाष्टकम्', "श्रीगगाष्टकम्", 'अम्बाष्टकम्', 'यमुनाष्टकम्', "कृष्णाष्टकम्", एव 'पाण्डुरगाष्टकम्', श्री बल्लभाचार्य का 'मथुराष्टकम्' आदि।

नवसंज्ञक काव्य– नव पद्य सज्ञक काव्यों के अन्तर्गत नीलकण्ठ–तीर्थपाद का 'हरिनवकम्', एवं सुब्रह्मण्यम् अय्यर का श्रीमदाचार्य नवरत्नमाला आदि।

दशक सज्ञक काव्य– दश संज्ञक पद्यो के आधार पर नामाकित काव्यो मे नरसिंहाचार्य का "वेदान्तदशकम्", नारायएरभट्ट का कल्याणदशकम्, श्रीशकराचार्य का अन्नपूर्णदशकार", आदि।

पञ्चदशी संज्ञक काव्य– पन्द्रह पद्यों के संग्रह वाला काव्यों मे महाकवि उल्लूर का "पन्चदशी", एव तेजोभानु की विप्रपञ्चदशी आदि उल्लेखनीय हैं।

पञ्चाशिका संज्ञक काव्य– पचास पद्यो के संग्रह वाले काव्य की संज्ञा पञ्चाशिका संज्ञा लोकप्रिय रही हैं। यथा–विल्हण की "चौरपञ्चाशिका", वृक्षमनि श्रीनिवास की "कुचपञ्चाश्किा', अप्पयदीक्षित की शिवपन्चाशिका आदि।

शतक काव्यों की परम्परा

छठी एवं सातवीं शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक के संस्कृत मुक्तक सग्रहो को देखने से ज्ञात होता है कि संस्कृत मे शतक लिखने की परम्परा या परिपाटी अधिक थी। यह शतक काव्य लेखन की प्रवृत्ति २०वीं शदी तक निरन्तर जारी है जिसका साक्षात् प्रमाण है प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती" समीक्ष्य काव्य।

प्राचीन काल से लेकर आज तक शतक–काव्यो में अनेक रूपों में भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इन शतकों का मूल उद्‌गम स्रोत वैदिक ऋषियों की तपस्या तथा देवार्चना ही है।[1] शतक का अर्थ है हमारी वैदिक परम्परा मे पूर्णता का प्रतीक रहा है। **जीवेम शरदः शतम्**[2] आदि की आत्मा पूर्णता तथा कल्याण से युक्त हैं। इसी भाव से अनुप्राणित होकर भारतीय कवि की भी स्वानुभूति शतक काव्य के रूप में प्रकट हुई।[3] प्रायः शतक काव्यों के नामकरण में प्रतिपाद्य विषय को ही मुख्य रूप से लक्ष्य बनाया गया है, तथा अधिकांश काव्यों में देवी–देवताओ की स्तुति की गयी है। इसीलिए स्तुत्यदेव के आधार पर ही काव्य का नामकरण किया गया है। उदाहरण के लिए बेकटनाथ का "अष्टभुजाशतक", वेदान्त–देशिक का अच्युतशतक. बाणभट्ट का "चण्डीशतक" एवं मयूर का सूर्य शतक, प्रो० रसिक बिहारी जोशी का श्री राधापञ्चशती आदि।

चूंकि मुक्तक काव्यो का मुख्य प्रतिपाद्य विषय श्रृगार रस रहा है, अस्तु इनके अन्तर्गत नारी के विभिन्न अगों का चित्रण हुआ हैं।[4] यही कारण है कि नारी के सौन्दर्य

---

1. डॉ० दुर्गाप्रसाद अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि० "सस्कृत मे श्रृगरी कवियो के उपलबध शतक काव्यो का आलोचनात्मक अध्ययन", पृष्ठ–०१ से उद्‌धृत।
2. जीवेम शरद शतम्।
   बुध्येम शरद शतम्। रोहेम शरद· शतम्।
   पूषेम शरद शतम्। भवेम शरद· शतम्।
   भूषेम शरद शतम्। भूयसी· शरद शतत्।
   अर्थर्ववेद–१६/६७/२–८।
3. डॉ० दुर्गाप्रसाद अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि० "सस्कृत श्रृगारी कवियो के उपलब्ध शतक काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन",–पृष्ठ–०२ से उद्‌धृत।
4. डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि०, "गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती का आलोचानात्मक अध्ययन–" पृष्ठ ६५।

परक अंगो के आधार पर भी कुछ काव्यो का नामकरण हुआ है इस प्रकार के काव्यो मे वरदकृष्णमाचार्य का "कचशतक", एव विद्या सुन्दर का "रोमावली–शतक", आदि उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के शतको के नाममात्र से ही श्रृगांरिकता का बोध हो जाता है।

संस्कृत में शतकों के नामकरण की एक और महत्वपूर्ण पद्वति विकसित हुई है जिसके अन्तर्गत सामाजिक विषयो को लक्ष्य करके शतकों का नामकरण किया गया है। उदाहरणार्थ–विश्वेश्वर पाण्डेय का **"होलिका–शतक"** तथा वरदकृष्णमाचार्य का **"विधवा–शतक"** आदि।

कुछ शतक रचयिताओं ने छन्दो के आधार पर नामकरण किया है। इस प्रकार के शतक के रूप में विश्वेश्वर पाण्डेय का आर्याशतक द्रष्टव्य है।

कुछ मुक्तककारो ने शतको की उपर्युक्त नामकरण की परम्परा को छोडकर अपने नाम पर ही काव्य का सृजन किया है। इस परम्परा में अमरूक कवि का 'अमरूकशतक' मयूर कवि का 'मयूरशतक' एव भल्लर कवि का "भल्लरशतक आदि उल्लेखनीय है।[1]

आधुनिक शतक रचयिताओं में कुछ में अपने आराध्य देवी देवता या अमानवीय नायकनायिका के नाम पर शतक काव्य का सृजन किया है, जैसे–प्रो० रसिक बिहारी कृत श्रीराधापञ्चशती, जो आराध्य राधा के नाम पर, सोमेश्वर कृत राम शतक आदि।

इस प्रकार मुक्तक काव्यो मे श्रृगार, नीति एवं वैराग्य चित्रण की एक विस्तृत परम्परा विद्यमान रही है और प्राय· इसी आधार पर उनके नामकरण भी प्रस्तुत किये गये है। उदाहरणर्थ द्रष्टव्य है–[2] भर्तृहरि, ब्रजलाल, जर्नादन, नरहरि, एवं ब्रजराज के "श्रृंगारशतक"। वेंकटराय श्री निवासार्य एवं भर्तृहरि के 'नीतिशतक एवं अप्पयदीक्षित, जर्नादन, नीलकण्ठ, भर्तृहरि, शकराचार्य, सोमनाथ, पदमानन्द के "वैराग्यशतक",। इस प्रकार शतक वाक्यों की परम्परा एवं उनके नामकरण की विभिन्न पद्वतियो का स्पष्टीकरण हो जाता है।

---

1. डॉ० राम चन्द्र शुक्ला, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि०, "गोबर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती का आलोचनात्मक अध्ययन" पृष्ठ ६५।
2. वही पृष्ठ–६६।

यहाॅ पर सबसे ध्यातव्य तथ्य यह है कि मुक्तक काव्य के रूप मे हमे सर्वप्रथम शतकत्रय के प्रणेता भर्तृहरि या अमरूकशतक के रचयिता अमरूक का नाम लेना पडता है। यह तथ्य शतक काव्यों की महत्ता को बढा देता है। भर्तृहरि और अमरूक ने अपनी रचनाओ के माध्यम से लोक जीवन के व्यवहार की अनेक विधाओ की झाॅकी प्रस्तुत किया है। इन शतकों के छन्दो को लक्षण ग्रन्थो मे भी उद्धृत किया गया है। मम्मट जैसे साहित्य मर्मज्ञ ने अपने काव्य प्रकाश में इनके छन्दों को उद्धृत किया है। भावप्रवणता एवं रचचर्वणा की दृष्टि से अमरूक कवि ने प्रबन्धकाव्यों को भी बहुत पीछे छोड दिया हैं। अमरूक के एक–एक श्लोक के रस प्रवाह में सैकडों प्रबन्धकाव्यों को प्रवाहित किया जा सकता है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि लौकिक सस्कृत मुक्तक काव्य का प्रारम्भ शतक काव्य से ही होता है।

त्रिशती संज्ञक काव्य– इस परम्परा के काव्यों में सुन्दरेश्वर की श्रीकण्ठत्रिशती एव सोमराज दीक्षित तथा ब्रजराज की "आर्यात्रिशती" उल्लेखनीय है।

पञ्चशती संज्ञक काव्य– इस काव्य परम्परा में मूक कवि द्वारा कामाक्षी देवी की स्तुति में लिखी गयी–मूकपञ्चशती तथा बीसवीं शती में प्रो० रसिक बिहारी जोशी का श्री राधापञ्चशती काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी अध्याय के अन्त मे श्रीराधापञ्चशती विस्तृत उल्लेख होगा–

सप्तशती संज्ञक काव्य

मुक्त्क काव्यो मे सप्तशती सज्ञक काव्यों का अत्यन्त महत्व रहा है। सप्तशती संज्ञक काव्यो की रचना परम्परा में विविध विषयों का समावेश हुआ। इस परम्परा के वाहक

---

1. यथा ह्यमरूकस्य कवे मुक्तक श्रृंगाररसस्यन्दिन प्रबन्धायमाना प्रसिद्वा एव।",–ध्वन्यालोक–३/७ पर वृत्ति। अमरूकशतक के प्राचीनतम् व्याख्याकार अर्जुन वर्मदेव ने भी कहा है– "अमीषां श्लोकाना तावती रसोपकरणसामग्री यावती प्रबन्धेषु भवति।"
अतः–एवोक्त भरतटीकाकारै– "अमरूककवेरेक श्लोकः प्रबन्धशतायते इति।–रसिक सञ्जीवनी–५०२।

कुछ काव्य इस प्रकार है— महाकवि परमानन्द की "श्रृंगारसप्तशती", कुछ अज्ञातनामा कवियो की "मुक्तसप्तशती " एव "भक्तिसप्तशती" आदि।[1]

सप्तशती रचना परम्परा में स्तुत्य देव को लक्ष्य करके नामकरण की भी अपनी अलग परम्परा रही है इस परम्परा में 'दुर्गासप्तशती' उल्लेखनीय है। यद्यति महाभारत के अन्तर्गत गीता ७०० श्लोकों का संग्रह है लेकिन मुक्तक नही। अत स्पष्ट है कि केवल ७०० श्लोको का संग्रह मुक्तक नहीं हो सकता।

इसी रचना क्रम में प्रथम शती ई० की महाकवि हाल की "गाहासत्तसई" आती है यह सप्तशती प्राकृत भाषा मे अनेक कवियों के गाथाओ के सग्रह के रूप मे जानी जाती है। हाल ने गाहासत्तसई में स्वयं इसे स्वीकार किया है कि यह विभिन्न कवियों के विभिन्न मुक्तको का सग्रह है।[2]

महाकवि काल की गाहासत्तसई से प्रेरित होकर मुक्तक काव्यों की परम्परा में आर्या छन्द के आधार पर सप्तशती की रचना परम्परा प्रस्फुटित हुई। इसी परम्परा के प्रस्फुटन के फलस्वरूप बीसवी शती तक निरन्तर शतक काव्य परम्परा जारी है—यथा प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत "श्री राधापञ्चशती"।

शतक काव्य हमे मुख्यतः तीन रूपो में ही प्राप्त होते है जिनमें धार्मिक, नैतिक तथा श्रृगारिक[3]। श्रृंगारी शतकों में श्रृगार की भिन्न—भिन्न अवस्थाओ का मार्मिक चित्रण किया गया है। रमणी सौन्दर्य का जितना सुन्दर तथा स्वाभविक विकास इन काव्यों मे हुआ है। उतना अन्यत्र पाना दुर्लभ प्रतीत होता है। श्रृंगार के क्षेत्र मे भारतीय मनीषियो की दृष्टि केवल लौकिक धरातल तक ही नहीं सीमित रही अपितु दिव्य श्रृंगार की भी झॉकी प्रस्तुत करने वाली हैं। अनेक आदि शक्ति देवियो की आराधना मे कवियो ने दिव्य श्रृंगारिक काव्य

---

1. डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, इ० वि० वि०, "गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती का आलोचनात्मक अध्ययन", पृष्ठ—६७ से उद्धृत।
2. सन्त सताइ कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरक्शि।
   हालेण विरइआइ सालङ्काराण गाहाण।।

   —गाह्मसत्तसई—१/३.
3. डॉ० दुर्गाप्रसाद, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि०, "सस्कृत मे श्रृगारी कवियो के उपलब्ध शतक काव्यो का आलोचनात्मक अध्ययन", पृष्ठ—०२ से उद्धृत।

रचे है। शतक का तात्पर्य है। १०० श्लोको का समुदाय। इसी रचनाक्रम मे एक सौ, तीन सौ, पांच सौ, सात सौ श्लोको के समुदाय का विभिन्न नामो एव विषयवस्तु के आधार पर, शतक, त्रिशतक पञ्चशती एवं सप्तशती काव्य का भेद तीन रूपों में प्राप्त होता–

१. स्तोत्र शतक साहित्य

२ काव्य शास्त्रीय शतक साहित्य

३. श्रृंगारी शतक साहित्य

स्तोत्र शतक सहित्य– धार्मिक शतकों का प्रतिपाद्य विषय देवताओं की स्तुतियॉ हैं। कवि ने अपने तथा लौकिक कल्याण के भाव से ओत प्रोत होकर दिव्य देवताओं की स्तुति मे अनेक शतको की रचना की जिनमें देवता विशेष को ही आधार बनाकर उन्हीं के यशोगाान में मुक्तक पद्यो मे सुन्दर रसपेशल भाव व्यक्त हुए। कवि ने देवता विशेष की दिव्याकृति, करूणामय स्वरूप तथा दैवी शक्ति आदि बातों को काव्य रूप प्रदान किया। यही स्तोत्र साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऐसी स्तुतियों की प्राचीनता सस्कृत में पर्याप्त मात्रा मे हैं। समग्र वैदिक संहिताएं देवताओ की विशिष्ट स्तुतियों से परिपूर्ण हैं। इन आर्थिक शतको की उद्गमस्थली तो स्वयं वेद का अखण्ड कल्याण कारी **''जीवेमशरदः शतम्''**, की है।

संस्कृत का स्तोत्र शतक साहित्य अत्यन्त विशाल, सरल, तथा हृदयस्पर्शी है। भक्त अपने हृदय की बातें भगवान के समक्ष प्रकट करने तथा महिमा वर्णन में कोमल भक्तिपूरित हृदय की अभिव्यक्ति करना है। परन्तु भारतीय भक्तों ने जिस उदारता के साथ भगवान के समक्ष अपने हृदय के भाव व्यक्त किये हैं वे सचमुच उपमाहीन हैं। भारतीय भक्त भगवान् के दिव्य–स्वरूप में चकित होकर उन्ही के गुणगान मे स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्मविस्मृत हो जाता है। वह अपने कर्मो के ऊपर दृष्टिपात कर बेचैन हो जाता है तथा कल्याण की इच्छा से ईश्वर के समक्ष अपने हृदय के समस्त भाव बिना किसी संकोच के प्रकट कर देता है। भारतीय मनीषी ने वैदिक काल से ही ईश्वर के प्रति अपने को अर्पण करने में सफलता मानी है। देवताओं के बन्दन मे ही एक–एक सूक्त का निर्माण किया

गया। उसी परम्परा मे बाद के लौकिक सस्कृत साहित्य मे देवी देवताओ की वन्दना, स्तात्र रूप मे चलती रही जिससे विशाल साहित्य का निर्माण हुआ। शतक काव्य परम्परा का भी विकास इसी भावभूमि मे हुआ। स्तोत्रो का इतना व्यापक प्रभाव रहा कि जैन तथा बौद्ध अनुयायी भी अपने को इससे अलग न रख सके।[1]

स्तोत्र का विकास यद्यात्मक, पद्यात्मक, तथा दण्डक तीनो रूपो मे पाया गया। प्रतिपाद्य विषय स्तोत्र शतक साहित्य मे शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि सभी स्तोत्रों का ग्रहण किया गया है। कालक्रमानुसार स्तोत्र शतकों का विवरण इस प्रकार है–

चतुः शतकः– मातृचेट का यह प्रमुख स्तोत्र ग्रन्थ है। यह स्तुतिकाव्य बौद्ध काव्यो का आदिग्रन्थ हैं। मातृचेट का समय १०० ई० के लगभग माना जाता है। यह तिब्बती अनुवाद के रूप मे उपलब्ध हुआ, बाद में इसका अंग्रेजी अनुवाद[2] किया गया।

अध्यर्ध शतक[3]:– यह मातृचेट का दूसरा स्तुति शतक है जिसमें १५० श्लोक पाये जाते है यह भी तिब्बती अनुवाद के रूप मे प्राप्त होता है।

पञ्चशती[4]:– पञ्चशती काव्य के प्रारम्भिक रचयिता महाकवि मूक माने जाते है। इन्होने काञ्चीपुरम् अधिष्ठिंत कामाक्षी देवी की स्तृति में पञ्चशती की रचना की जिसमे कटाक्ष, मन्दस्मित, वादारबिन्द, आर्या, एव स्तृति शतक पॉच भागो मे वर्णन किया गया है इनका समय निश्चित नही है किन्तु कुछ साक्ष्यो के अनुसार पर ३६६ से ४३६ ई० माना जाता है।[5]

इसीक्रम दूसरा पञ्चशती काव्य प्रो० रसिक बिहारी का श्रीराधापञ्चशती काव्य बीसवी शती की रचना है। इसमे राधा कृष्ण का युगल आराध्यदेव के रूप में स्तुति है।

---

1. डा० डी० पी० मिश्र, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, इ० वि० वि०, इलाहाबाद 'संस्कृत मे श्रृगारी कवियो के उपलबध शतक काव्यों का समालोचनात्मक अध्ययन'', पृष्ठ–०४ से उद्धृत।
2. एफ० डब्ल्यू० थामस का अंग्रेजी अनुवाद, इण्डियन एन्टीक्वरी वायलूम–२६ (१६०५), पृष्ट १४६–६३।
3. जर्नल आफ दि टायल एशियाटिक सोसायटी–१६७७, पृष्ठ–७५६–७७ से प्रकाशित।
4. काव्यमाला गुच्छक–५ मे प्रकाशित।
5. ए हिस्ट्री आफ क्लैस्किली सस्कृत लिटरेचर– एम० कृष्णामाचारियर, पृष्ठ–३२४।

चण्ड़ी शतकः– वाणभट्ट विरचित चण्डीशतक[1] भगवती दुर्गा की स्तुति मे स्रग्धरा वृत्त का प्रशस्त शतक है। इसमें बाण की परिचित शैली, लम्बे–लम्बे समास, कानो मे झकार करने वाले अनुप्रास्र, तथा उच्चकोटिक उत्प्रेक्षा का चमत्कार पाया जाता है इनका समय सातवी शती का पूर्वार्द्ध है।

सूर्यशतक[2]:– सम्राट हर्ष के आश्रित कवि मयूर भट्ट का यह स्तोत्र सूर्य की स्तुति मे लिखा गया। कवि ने कुष्ठ रोग से निवारण के लिए यह शतक काव्य लिखा था। स्रग्धरा वृत्त में रचित काव्यो मे यह प्रथम है। मयूरभट्ट बाण के सम्बन्धी थे इनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इसी को मयूरशतक भी कहते हैं।

देवी शतक[3]:– ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने मॉ पार्वती की स्तुति मे देवीशतक की रचना की हैं। इसमें १०० श्लोक है। यह शतक स्तोत्र काव्यों में अपना अनूठा स्थान रखता है। चित्रकाव्य का इसमें सुन्दर निदर्शन पाया जाता है। इसकी शैली के कारण आनन्दबर्धन को आलोचकों के व्यंग्य बाण भी सहने पडे थे। काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने उदाहरण रूप में देवीशतक से अनेक श्लोक भी उद्धृत किये हैं। इनका समय ९वीं शतब्दी माना जाता है।

जिन शतक[4] – ब्राह्मण–धर्म के समान जैन मतानुयायियों ने भी सुन्दर स्तोत्रो का निर्माण किया। इन स्तोत्रों की सख्या कम नहीं है। श्री जम्बू कवि का जिनशतक पूरा एक सौ स्रग्धरा वृत्त मे रचित प्राप्त होता है। इसमें चण्डीशतक तथा मयूरशतक की ही परम्परा का पालन किया गया है। इनका समय ६५६ ई० के लगभग माना जाता है।

पद्मनाभकशतक[5], रामशतक[6], कृष्णशतक[7]:– इन शतको के रचयिता ईशानदेव है, जो कृष्णलीला शुक के गुरू माने जाते है। इनका पूरा नाम ईशान भूति देव है। कृष्णलीला शुक के गुरू होने के कारण इनका समय ११वी शताब्दी माना जाता है। ये तीनों शतक स्तुतिपरक है। इसके अतिरिक्त इनकी भारतसंक्षेप, रामायणाकृत कृतियॉ भी पायी जाती है।

---

1. काव्यमाला गुच्छक–४ मे प्रकाशित।
2. काव्यमाला–६, मे प्रकाशित।
3. काव्यमाला गुच्छक–९ मे प्रकाशित।
4. काव्यमाला गुच्छक–७ मे प्रकाशित।
5. कैटलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन त्रवकोर।
6. वही।
7. वही।

रामार्याशतक[1]–

यह शतक विरचित है। इनका समय ११२० ई० के लगभग माना जाता है। उदयन न्यायलीलावतीकार (वल्लभ) तथा श्रीहर्ष ने इनका उल्लेख किया है, अत समय के विषय मे मतभेद पाया जाता है रामार्याशतक स्तुतिपरक काव्य है। इनका 'तत्वचिन्तामणि' ग्रन्थ भी है जिस पर जयदेव की आलोक नामक टीका है।

कृष्णकर्णामृतम्[2] –

लीलाशुक विरचित 'कृष्णकर्णामृतम्' चैतन्य महाप्रभु का परमप्रिय स्तोत्र बतलाया जाता है। प्रसिद्ध है कि महाप्रभु दक्षिण से यह स्तोत्र बंगाल लाये थे। आचार्य लीलाशुरू का समय १२वीं शताब्दी माना जाता है। कृष्ण स्तुतिपरक इस काव्य के तीन विभागों मे ३१० पद्य पाये जाते है।

रामशतक[3] –

सोमेश्वरकृत राम शतक के १०० श्लोकों में एकमात्र स्रग्धरावृत्त का ही प्रयोग हुआ है। कवि ने पृथ्वी मण्डल के अलंकार स्वरूप श्री रामचन्द्र के यश की प्रशस्ति रची है। यह स्तोत्र प्राचीन शतश्लोकी स्तोत्रों सूर्यशतक तथा चण्डीशतक के नमूने पर लिखा गया हैं इसमें राम की स्तुति उनके जीवन कथा के अनुसार आगे बढती है। सोमेश्वर का समय १३वी शताब्दी माना जाता है।

भक्ति शतक[4] –

१३वी शताब्दी में बंगाल के ब्राह्मण रामचन्द्र कवि भारती लकाजाकर बौद्ध हो गये तथा उन्होंने बुद्ध की स्तुति मे भक्ति शतक की रचना की। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्राप्त है।

---

1. काव्यमाला मे प्रकाशित।
2 एस० के० डे० सम्पादित (ढकन यूनिवार्सिटी १९३८)
3. रिपोर्ट आन दि सर्च फार सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि बाम्बे प्रेसीडेन्सी–आर० जी० भण्डारकर–८५।
4. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित–अग्रेजी अनुवाद जे० बी० टी० एस० वायकूम–१ (१८९३) भाग २, पृ० २१–४३।

शैलेशशतक[1]–

यह शतक श्री शैलेश की स्तुति मे लिखा गया है जो सौक्य जामातृ मुनि (मनवल–महामुनि) के गुरू थे। इनका समय १३२३–१४०० ई० माना गया है। इन्हें शैलेश के अतिरिक्त तिरूवोयमलि पिल्लई भी कहते थे। इस शतक के रचियता देवाचा जी है।

अच्युतशतक[2]–

वेंकटनाथ वेदान्त वेशिक ने विष्णु की स्तुति में प्राकृत भाषा में इस शतक की रचना की है। इनका समय १३६८ ई० में के लगभग माना जाता है।

वरदराजशतक[3] –

अप्पय दीक्षित ने स्तुतिपरक काव्य के रूप मे वरदराजस्तव या वरदराजशतक की रचना की। ये शैव दर्शन के महनीय आचार्य माने जाते है। १०६ सुन्दर श्लोकों मे भगवान के रूप का वर्णन बड़ी कमनीय भाषा में किया गया है जिससे ये नितान्त भक्त तथा दार्शनिक प्रतीत होते है। इनका समय १५४४ ई० माना जाता है।

आनन्द मन्दाकिनी[4] –

मधुसूदन सरस्वती प्रणीत आनन्दमन्दाकिनी काव्य भी एक शतक काव्य है जिसमें १०२ श्लोकों मे भगवान श्रीकृष्ण का नखशिख वर्णन प्रस्तुत किया गया है तथा उनकी दिव्य स्तुति की गयी है। मधुसूदन सरस्वती अद्वैती होते हुए अत्यन्त भावुक थे। इनका समय १६०० ई० के लगभग माना जाता है।

---

1. ट्रीनियल कैटलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन ओरियण्टल लाइब्रेरी मद्रास ३–११४६।
2. ए कैटलाग आफ ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी आफ दि (लेट) कालेज फोर्ट सेन्ट जार्ज बाई दि विलियम तयलोर, १–१४६।
3. लिस्ट्स आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन साउदर्न इण्डिया वाई गुस्तव आपर्ट–मद्रास, ६०६, ११०५, १५६३।
4. काव्यमाला गुच्छक २ मे प्रकाशित।

ईश्वर शतक[1] –

अवतार कवि प्रणीत इस शतक मे ११३ पद्य पाये जाते है। ईश्वर की आराधना मे कवि ने अपने हृदय के उद्‌गारो को निसकोच रूप से व्यक्त किया है। यह कश्मीरी कवि थे इनका समय अनिश्चित है। यदि हम स्तुति कुसुमाञ्जलि के टीकाकार राजानक रत्नकण्ठ के पितामह अवतार को इसका रचिता स्वीकार करे तो इनका समय १६२२ ई० के लगभग निश्चित होता है।

आनन्द सागरस्तव[2] –

नीलकण्ठ दीक्षित विरचित आनन्दसागरस्तव स्तोत्र काव्य की श्रेणी मे आता है इनका समय १६वी का पूर्वार्ध है। इसमे १०८ श्लोको मे देवी की भक्तिमय वन्दना की गयी है। पार्वती की स्तुति मे दीक्षित जी ने अत्यन्त मार्मिक भावो मे विषय वस्तु को सजोया है।

शिवशतक[3] –

यह स्तोत्र काव्य मैथिल महामहोपाध्याय गोकुलनाथ विरचित है। कविता की दृष्टि से सुन्दर तथा रूचिकर काव्य है, भाव कोमल तथा हृदयावर्जक है। आपका समय निश्चित नही है किन्तु आचार्य बलदेव उपाध्याय ने १७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है।

नारायणशतक[4] –

इसके रचियता दिवाकर पुरोहित जी है। यह शतक भगवान जगन्नाथ की प्रार्थना मे लिखा गया है। यह शतक पीताम्बर मिश्र की व्याख्या के साथ करूणा शर्मा, प्रधानाचार्य सस्कृत कालेज पुरी द्वारा सम्पादित है इसका रचनाकाल १७वी का उत्तरार्ध माना गया है।

---

1. काव्यमाला गुच्छक ६ मे प्रकाशित।
2. काव्यमाला गुच्छक ११ मे प्रकाशित।
3 काव्यमाला १८८७–१ मे प्रकाशित।
4 करूणाकर शर्मा द्वारा सम्पादित–पुरी।

आनन्दमन्दिर स्तोत्र[1] –

यह स्तोत्र भरद्वाज शकर दीक्षित के पौत्र तथा लक्ष्मण दीक्षित के पुत्र कवीन्द्र बहादुर लल्ला दीक्षित विरचित है। इसमे देवी की वन्दना तथा नखशिख वर्णन है। इसमे १०३ श्लोक है। इनका समय १८०२ है।

शूल पाणिशतक[2] –

यह शतक भगवान शकर की स्तुति में लिखा गया हैं इसके रचयिता कस्तूरी शिव शंकर शास्त्री का जन्म १८३३ ई० मे कूबीर्मचीवरी अग्रहारम आलमपुर तालुक जिला गोदावरी में हुआ था तथा ८३ वर्ष की उम्र मे १९१७ मे मृत्यु हो गयी है। यह बथूला गोत्र के नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम सोमराज है। शतककार राजा मुन्दरी के आर्ट कालेज में संसकृत के २५ वर्ष तक पण्डित रहे। दार्शनिक कृत्यों के अतिरिक्त इन्होंने शिवानन्द लहरी, स्तोत्र कदम्ब द्वादश मञ्जरी आदि का भी प्रणयन किया है।

समुद्र शतक[3] –

समुद्र की स्तुति स्वरूप शिवशकर शास्त्री विरचित यह भी एक अनोखा शतक है। शूलपाणि शतक के ही समान कवि ने इसमें भी सुन्दर भावों को संजोया है।

मीनाक्षीशतक, मालिनीशतक, हनुमच्छशतक, लक्ष्मीनृसिंह शतक–

ये सभी शतक[4] समर्पण के प्रतीक है। भक्तिभाव से आप्लावित होकर कवि ने स्तुति रूप में इन शतकों की रचना की है। इनके रचयिता कवि परिधियुर कृष्ण शास्त्री का जन्म १८४२ ई० में कदगम्बदी, जिला तंजोर में हुआ था। इन्होने सेंगलीपुरम् के वैद्यनाथ दीक्षित की अधीनता में शिक्षा ग्रहण की थी। इनकी मृत्यु १९११ ई० में हुई।

---

1. काव्यमाला गुच्छक १४ मे प्रकाशित।
2. हिस्ट्री आफ क्लैसिक्ल संस्कृत लिटरेचर–एम० कृष्णामाचारियर पैरा २८८।
3. वही।
4. वही पैरा ४६२।

शौणद्रीशशतक[1], व्याघ्रालयेशशतक[2] –

ये शतक काव्य भक्तिभाव से ओतप्रोत स्तुतिपरक है। इनके रचयिता केरलावर्मा आधुनिक महान कवि है इनका समय १८४५ है, ये केरला कालिदास के नाम से प्रसिद्ध थे। विशाखराज महाकाव्य, शृङ्गार मञ्जरी अन्य कृतियॉ है। यह त्रवंकोर के महारानी लक्ष्मीबाई के पति माने जाते है। इनका निर्वाण काल १९१० ई० है।

शक्तिशतक[3] –

यह शतक श्रीश्वर विद्यालकार प्रणीत है। इनका समय १८५० ई० माना जाता है। इस शतक में कवि ने दुर्गा देवी की स्तुति की है तथा उन्हें आदि शक्ति स्वीकार किया है।

दुर्गा सौन्दर्य शतक[4] –

इस शतक के रचयिता मेरी काशीनाथ गौतम गोत्रीय वेंकट शास्त्री के पुत्र थे। इनका जन्म १८५७ तथा मृत्यु १९१८ ई० मानी जाती है। विजयानगरम् के महाराज आनन्द गजपति (१८५१–१८९७) के समय में ये थे। ये महाराजा संस्कृत कालेज विजयानगरम में व्याकरण के प्रोफेसर थे। इनके गगास्तव तथा गोदावरीस्तव दो अन्य स्तोत्र काव्य भी उपलब्ध है। प्रस्तुत शतक मे दुर्गा देवी के सौन्दर्य–परक दिव्य स्वरूप का निदर्शन कवि ने स्तुति रूप में प्रस्तुत किया है।

शैलब्धीश शतक[5] –

यह भक्तिपरक शतक काव्य है। इसके प्रेणता नीलकण्ठ शर्मा का जन्म १८५८ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम नारायण शर्मा है यह मालावार कें प्रसिद्ध लेखक थे, इन्होंने इस शतक के अतिरिक्त पत्तभिषेक प्रबन्ध तथा आर्या शतक का भी प्रणयन किया है।

---

1. त्रवकोर से प्रकाशित।
2. हिस्ट्री आफ क्लैसिक्ल सस्कृत लिटरेचर–एम० कृष्णामाचारियर पैरा १७९।
3. हिस्ट्री आफ क्लैसिक्ल सस्कृत लिटरेचर–एम० कृष्णामाचारियर पैरा ७३७।
4. हिस्ट्री आफ क्लैसिक्ल सस्कृत लिटरेचर–एम० कृष्णामाचारियर पैरा ४९२।
5. हिस्ट्री आफ क्लैसिक्ल संस्कृत लिटरेचर–एम० कृष्णामाचारियर पैरा २४८।

लक्ष्मी पति शतक[1]–

इसके रचयिता जयन्ति वेकन्न का समय १८६४ ई० तथा मृत्यु १९२४ ई० माने जाते है। यह एक वकील थे पर अपना समय संस्कृत पढने मे ज्यादा देते थे। इन्होंने अनेक मधुर तथा रसीली कविताए लिखी। इन्होने रामायण का संक्षिप्त रूप ७०० श्लोकों की 'अभिनय रामायण' लिखी। इनकी मुकुन्द लहरी तथा प्रहलाद चम्पू अन्य कृतिया है। लक्ष्मीपति शतक में भगवान विष्णु के दिव्य स्वरूप का चित्रण तथा स्तुति की गयी है।

कृष्ण शतक[2] –

यह शतक वकथोल नारायण मैनन रचित है। इनका जन्म १८९० ई० में हुआ था। इस शतक में कवि की स्तुति की है। इनके तृप्ति सम्वर्ण तथा देवीस्तव अन्य दो काव्य हैं।

नृसिंह शतक[3] –

यह शतक भगवान नृसिंह की प्रार्थना में लिखा गया है। इनके रचयिता तिरूवेकट ततदेशिक है। इनका समय अनिनिश्चत है, यह शतक १८९२ ई० में प्रकाशित हुआ है।

शारदाशतक[4], महाभैरवशतक[5]–

ये शतक श्रीनिवास शास्त्री प्रणीत है। इन्होंने महामहोपाध्याय त्यागराज शास्त्री (राजू शास्त्री) मन्नारगुडि, जिला तंजीर के अधीनता में शिक्षा ग्रहण की। इनके अलावा आपके विज्ञप्तिशतक, योगिभोगि संवाद शतक, हेतिराज शतक भी पाए जाते है। आपका समय १९वी शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन शतकों में शारदा एव भैरव की स्तुति की गयी है।

---

1. वही पैरा ७३७।
2. मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन १९७०।
3. ऑगोल से प्रकाशित।
4. हिस्ट्री आफ क्लैसिक्ल सस्कृत लिटरेचर–एम० कृष्णामाचारियर पैरा २५४।
5. वही पैरा २५४।

आर्याद्विशती[1] –

आर्याद्विशती या मानसपूजनार्या द्विशती दुर्वाषा ऋषि की कृति मानी जाती है। परम्परया यह दुर्वाषा अत्रिमुनि अनुसूया के गर्भ से उत्पन्न दत्तात्रेय के सहोदर पुराण प्रसिद्व है। इनका त्रिपुर महिम्न स्तोत्र भी प्राप्त होता है। इसमे पार्वती की स्तुति की गयी है।

रामशतक[2] –

केशव भट्ट प्रणीत रामशतक एक स्तोत्र परक शतक–काव्य है जिमसें राम की स्तुति की गयी है। इनके समय के बारे में कुछ भी ज्ञात नही है।

रामार्याशतक[3] –

मुदगल भट्ट प्रणीत रामार्या शतक आर्याशतक के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस पर महेश्वर तथा काकभट्ट कृत टीकाएं भी प्राप्त है। इस शतक मे राम की स्तुति में सुन्दर भावों का विधान किया गया है।

गीति शतक[4] –

तिरूनेल्वेलिस प्रदेशवर्ती विट्ठलपुर निवासी अष्ट गोत्री तिरूमलैनल्लान चक्रकर्ती श्रीवात्स्य वेकटेश विद्वन्मणि पुत्र श्री सुन्दराचार्य ने गीतिशतक की रचना की। इसमे भगवती अम्बा को प्रार्थना की गयी है। इस शतक में १०२ पद्य है। रचयिता का समय अज्ञात है।

गंगालहरी शतक[5]–

यह लक्ष्मीनारायण कवि की रचना मानी जाती है जो तीन व्याख्याओं के सहित बम्बई से सम्पादित है पण्डितराज के गंगालहरी के ही समान यह भी भावपूर्ण रचना है।

---

1. लिस्ट्स आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन साउदर्न इण्डिया–वाई गुस्तक आपर्ट ५३४, ७०८८।
2 आफ्रेस्ट कैटेलोगस कैटेलोगोरम भाग १ – १२७।
3. ग्रन्थरत्न माला से प्रकाशित।
4. काव्यमाला गुच्छक ६ मे प्रकाशित।
5 बम्बई तथा बनारास से प्रकाशित।

लक्ष्मी नृसिंह शतक[1] –

यह श्रीनिवासाचार्य की कृति मानी जाती है। इनमें लक्ष्मी तथा नृसिह भगवान की स्तुति की गयी है।

तारावलीशतक, दयाशतक, मातृभूत शतक[2] –

ये शतक श्रीधर वेकटेश रचित है। ये दक्षिणी भारत में अपनी दया तथा त्याग के लिए प्रसिद्ध हैं। ये इनके धार्मिक काव्य है।

इन स्तोत्र शतको के अतिरिक्त भी बहुत से स्तोत्र–शतक पाए जाते है जिनका समय अज्ञात है तथा ये हस्तलेख रूप में ही सुरक्षित है।

कांव्य शास्त्रीय शतक साहित्य

संस्कृत कवियों ने जहॉ एक ओर स्तोत्र परम्परा को समृद्वशाली बनाया वहीं पर आचार्यो के प्रभाव से उन्होंने काव्य के महनीय तथा मान्य प्रयोजन **'कान्तासम्मित उपदेश'** का समादर किया। शतक काव्यों के माध्यम से भारतीय मनीषियों ने ऐसी उपदेशात्मक तथा नीतिपरक बातों की शिक्षा दी जो शायद किसी भी भाषा के साहित्य मे प्राप्त करना असम्भव है। भारतीय कवियों ने इन शत–मुक्ताओं को, जिसमे प्रत्येक मोती की अपनी स्वयं की आभा है, एक लडी के रूप पिरोकर शतक काव्य रचे, जिसको हमारे समाज ने नतसम्तक होकर स्वीकार किया तथा इन मुक्ताओ के समूह का अक्षय ज्ञान प्रकाश आज भी समाज को शिक्षा प्रदान कर रहा है। नीति विषयक उपदेशात्मक शतको का इतिहास भी काफी प्राचीन है। काव्य साहित्य शतक के अन्तर्गत हम नीति, उपदेश सुभाषित आदि सभी शतको का समावेश करके कालक्रमानुसार विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

---

1. प्रदास से प्रकाशित।
2. सम्पादित–श्रीविद्याप्रेस कुम्बकोनम।

चाणक्य शतक[1] –

नीति विषयक उपदेशात्मक शतको मे चाणक्य शतक सबसे प्राचीन है। कतिपय लोग इसे कौटिल्य कृत मानते है किन्तु यह जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य का ११० श्लोक का शतक है।

अवदान शतक–

यह जातको के ढग पर सस्कृत में विरचित नीति प्रधान साहित्य है।

चतु:शतक–

आर्यदेव प्रणति–४०० श्लोकों के शतक में महात्माबुद्ध एवं उनके व्यापक बौद्ध धर्म के सिद्वान्तों का समावेश है।

नीति द्विषाष्टिका–

मदुरा निवासी सुन्दर पाण्डय के श्लोकों को आनाश्र ने शतक के रूप मे रचा है जो पाचॅवी शती का है।

नीति शतक–

शतकत्रय के प्रतिपादक भर्तृहरि के इस शतक में जीवनोपयोगी सुन्दर उपदेशो तथा नीतियों का सग्रह है जो छठवीं शती का है।

बैराग्य शतक–

भर्तृहरि ने सासारिकता से उबकर वैराग्य के माध्यम से परमार्थ की प्राप्ति का उपदेश दिया है।

विज्ञान शतक[2]–

यह भर्तृहरि प्रणीत चौथा शतक माना जाता है।

---

1. जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित–काव्य सग्रह भाग–२ मे प्रकाशित–कलकत्ता।
2. संस्कृत चन्द्रिका–सस्कृत जार्नल कोल्हापुर.– भाग–६.

भल्लर शतक[1]–

कविवर भल्लर का स्थितिकाल ८वीं शती उत्तरार्द्ध है। मुक्तक पद्यों का यह शतक संग्रह अभिनवगुप्त मम्मट, आनन्दवर्धन आदि द्वारा अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किया गया है।

चारूचर्याशतक–

१०वी शदी के क्षेमेन्द्र विरचित यह शतक उपदेशात्मक सग्रह है। इसमें पौराणिक आख्यानो का दृष्टान्त बडा ही रोचक है।

शान्ति शतक[2]–

१२०५ ईस्वी की काश्मीरी कवि विल्हण की कृति है। इन्होंने हास्य पुट के साथ जीवनोपयोगी शिक्षाये प्रदान की हैं।

श्रीशयक शतक–

१३वीं शदी का धर्मघोष विरचित शतक है।

दृष्टान्त शतक–

कुसुमदेव का दृष्टान्तशतक १५वीं शदी का काव्य हैं। इन्होने प्रत्येक नीति वचन को एक उदाहरण द्वारा निर्देशित किया है।

हंसदूत[3]–

१५वीं शदी का यह दूतकाव्य माध्वाचार्य के शिष्य वामनभट्ट विरचित है। यह पूर्णत· मेघदूत के अनुकरण पर मन्दाक्रान्ता छन्द में विरचित है।

आर्याशतक–

१६वीशदी के अप्पय दीक्षित प्रगति इस शतक में जीवनोपयोगी बातों का समावेश है।

उद्वशतक[4]–

इसे उद्वव सन्देह भी कहते हैं। १७वीं शदी के रूपगोस्वामी रचित प्रधान सन्देह शतक काव्य है। इसमें कृष्ण विरहिणी गोपिकाओं के द्वारा भक्ति तत्व का सरस रूचिर विवरण प्रस्तुत है।

---

1. काव्यभाला गुच्छक–४ मे प्रकाशित।
2. जीवानन्द विद्यासागर काव्य सग्रह भाग–२ मे प्रकाशित–कलकत्ता।
3. डा० जे० बी० चौधरी सम्पादित कलकत्ता से प्रकाशित–१६४१
4. काव्यसग्रह–भाग ३, जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित–कलकत्ता

हंसदूत[1]–

१७वी शदी के रूपगोस्वामी की भक्ति रस स्निग्ध रचना है। शिखरिणी छन्द मे निवद्ध राधा की दयनीय दशा के सूचनार्थ हस को कृष्ण के पास मथुरा भेजा जाता हैं।

सभारञ्जन शतक[2]–

नीलकण्ठ दीक्षित विरचित एक उपदेशात्मक काव्य है। इसमें सभा के नियमो का बडा ही रोचक वर्णन है। इसमे अतिरिक्त अन्य शतक उल्लेखनीय है–

नीलकण्ठ विरचित अन्यापदेशतक, कलिविडम्बन शतक, वैराग्य–शतक, **गुमान कवि** का उपदेश शतक–१७वीं शदी; **वरददेशित** कवि प्रणति–अम्बुवावल्ली शतक, श्रीवाराह शतक **पण्डितराजजगन्नाथ** का पण्डितराजशतक, **रामभट्ट दीक्षित** का रामभद्रशतक; वेकेट शास्त्री, आर्याशतक, १८वीं शदी के **सामराज दीक्षित** का आर्यात्रिशती; मधुसूदन कवि का अचोपदेश शतकः १८वीं शदी के माधव सिह के दरबार श्यामसुन्दर रचित **माधवसिंह आर्याशतक**[3]; बेल्लाम कोदण्डत्र राय का **हयग्रीव शतक**[4], २०वीं शती के कृष्णरामरचित–**आर्यालङ्गार शतक, पलाण्डुशतक, सारशतक**[5]; १९वीं शती के बनारस राजा के राजपण्डित ताराचन्द्र जी का **काननशतक**[6]; १९वी शदी के श्रीनिवास शास्त्री का **विज्ञप्तिशतक, योगिभोगिसंवाद शतक**, तथा **हेतिराजशतक**[7]; बनारस हिन्दू वि० वि० में प्रो० बटुक नाथ शर्मा का **आत्मानिवेदन शतक, शतकसप्तक**, और **कालिका शतक**[8]; २०वी शदी के वरदकृष्णभाचार्य वलत्तुर का **विधवा शतक**[9]; बल्लाल कवि का **बल्लाल शतक**[10]; शम्भुकवि का **अन्योक्ति मुक्तालता;** कवि ककण का **मृगांक शतक**[11]; त्रिविक्रम कृत **त्रिविक्रमशतक**, तथा **व्याजोक्तिशतक** आदि।

---

1. वही
2 काव्यमाला गुच्छक–४
3. आफ्रेखुटस कैटेलोगस कैटेलोगोरम भाग–१, पृष्ठ–२६०,
4. हिस्ट्री आफ दि क्लौसिकल संस्कृत लिटरेचर–रूम कृष्णमा–चारियर–पैरा २८६।
5. वहीं–पैरा २४५
6 वही–पैरा २५४ एक्स।
7. वहीं–पैरा २५४ के।
8. वहीं–पैरा २५४ के।
9. वहीं–पैरा ५०४।
10. सस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास– वाचस्पति गैराला, पृष्ठ ६३४, प्रकाशन १६७८
11. आफ्रेख्ट–कैटेलोगस कैटेलोगोरम २–१५,

श्रृङ्गारी शतक साहित्य

समाज मे प्रचलित मान्यताए रूढिवादी हो जाया करती है। इसी प्रकार बाद मे हमारे कवियो मे भी यह श्रृङ्गार शतक रचना की परम्परा रूढिवादी बन गयी। कवियो ने रमणी के नयन, मुख, नासिका केश, कटाक्ष, वक्षोज, कटि, रोमावलि आदि अवयवो को ही विषय बनाकर चित्रण किया है जहां कहीं भावविभोर होकर वह लौकिक धरातल पर उतरने लगता है, अश्लीलता भी ला देता है परन्तु उसमें भी एक अपूर्व आनन्द तथा सौन्दर्य का समन्वित रूप पाया जाता है। प्रमुख श्रृङ्गार शतक काव्य निम्न है–

भावशतक[1]–

चौथी शदी ईस्वीं के संस्कृत विद्वान्शिवभक्त गणपति नाग द्वारा रचित है। इसका प्रत्येक श्लोक गाथासप्तशती के समान है।

श्रृङ्गार शतक[2]–

भर्तृहरि कृत श्रृङ्गार प्रधान शतक काव्य है। छठी शती को इस रचना में स्त्रियो के विभिन्न हाव भाव का चित्रण है।

अमरूक शतक[3]–

८वी शदी के कवि अमरूक की श्रृङ्गार प्रधान रचना है। इसमें नायिकाओं के हाव–भावो का चित्रण, श्रृङ्गार के सम्भोग एवं वियोग दोनो पक्षो का निरूपण, मान की विभिन्न अवस्थाओ एव नायक–नायिका भेद आदि का सम्यक् विवेचन है।

---

1. काव्यमाला गुच्छक–४ से प्रकाशित।
2. काव्यसग्रह भाग–२, जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित–कलकत्ता।
3. निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

इसके अतिरिक्त अन्य भी श्रृड्गार शतक उल्लेखनीय है– १५वी शदी के कविवर **घनदराज** का श्रृड्गार घनदशतक[1], **रामचन्द्र** कवि का रोमावली शतक[2], गोस्वामी जर्नादन भट्ट का श्रृड्गार शतक[3] १७वी शदी के **कामराज** का श्रृड्गारकलिका त्रिशती[4], १६वी शदी के उत्प्रेक्षा भल्लभ या शिवभक्तदास का सुन्दरीशतक[5], १६वी शदी के **श्रीकृष्ण बल्लभ** का काव्यभूषण शतक[6], १८वी शदी के **विश्वेश्वर पण्डित** का रोमावलि शतक[7], तथा वक्षोजशतक; **आत्रेय श्रीनिवास** का कुचशतक[8], **गणपति शास्त्री** प्रणीत कटाक्षशतक[9]; **मूक कवि** का कटाक्ष शतक[10], **शंकराचार्य** का सौन्दर्य लहरी[11] आदि प्रमुख श्रृड्गार प्रधान शतक काव्य है।

---

1. काव्यमाला गुच्छक–१२ मे प्रकाशित।
2. वही
3. काव्यमाला गुच्छक–११ मे प्रकाशित।
4. वही गुच्छक–१४ मे प्रकाशित।
5. वही गुच्छक–६ मे प्रकाशित।
6. वही गुच्छक–६ मे प्रकाशित।
7. वही गुच्छक–८ मे प्रकाशित।
8. डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिटस इन द ओरियण्डल मैनुस्क्रिप्टस लाइब्रेरी, मद्रास २०–७८६३
9. क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारियर–पैरा २५४ एन।
10. काव्यमाला गुच्छक–५
11. गणेश एण्ड कम्पनी (मद्रास) प्राइवेट लिमिटेड, मद्रास–१७, १६५७

शतक काव्य परम्परा के 'पञ्चशती' संज्ञक काव्य में श्रीराधापञ्शती

भारतीय वाड्मय मे वर्णित राधा कृष्ण काव्यों से तथा वैष्णवाचार्यो के मतों से प्रभावित होकर वैष्णव आचार्य एव बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी प्रो० रसिक विहारी जोशी राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप की कथावस्तु एवं भगवतीराधा की आह्लादिनीशक्ति को मुक्तक काव्य–गीति काव्य के रूप मे उपनिवद्ध किया है। यह पॉच सौ ग्यारह श्लोको से युक्त होने से पञ्च शतक काव्य का प्रतिनिधित्व करता है। शतक, त्रिशतक, पञ्चशतक सप्तशतक श्रृंखला की कडी में राधापञ्चशती की कथा वस्तु निम्न है–

वैष्णव शास्त्र में श्रीकृष्ण वह अद्वयज्ञान तत्त्व है जो ज्योति रूप से साधकों को चिदाकाश में दर्शन देता है। इसका प्रमुख कारण श्रीकृष्ण की तीन अभिन्न शक्तियॉ मानी गयी हैं।– (१) सान्धिनी: (२) संवित्त एवं (३) ह्लादिनी।

सान्धिनी– शक्ति से भगवान श्रीकृष्ण नित्य सत्ता को धारण करते हैं। देश काल तथा वस्तु का सन्धान करने वाली यह शक्ति सन्धिनी शक्ति कहलाती है। घट में घटत्व धर्म की नित्यता की भांति श्रीकृष्ण में सन्धिनी शक्ति नित्य धर्म के रूप में रहती है।

ह्लादिनी शक्ति–के द्वारा भगवान् आन्नद तथा आह्लाद का अनुभव करते हैं।

भगवती राधा श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं राधा से ही श्रीकृष्ण नित्य आह्लाद के समुद्र में डूबे रहते हैं। राधा शक्ति हैं और श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं। शक्ति तथा शक्तिमान में अविनाभाव सम्बन्ध होता है। एक के बिना दूसरा विशिष्ट नहीं रहता है।[1] जैसे अग्नि की शक्ति दाहकता है। इसको अग्नि से अलग नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण और राधा में भी अभेद सम्बन्ध है। परमार्थ में राधा श्रीकृष्ण से अलग हो ही नहीं सकती। शक्ति को शक्तिमान से पृथक् करना सर्वथा असम्भव हैं– शक्ति शक्तिमतोरऽभेदः। केवल व्यवहार में जब तक साधक साधनावस्था में रहता है तब तक राधा की उपासना श्रीकृष्ण की नित्य अभिन्न ह्लादिनी शक्ति के रूप में होती है। राधाकृष्ण की युगलस्वरूप की उपासना का सिद्वान्त निम्वार्क मत से प्रभावित हैं। राधा की ह्लादिनी शक्ति रूप में उपासना तो चैतन्य मत का पोषक है।

---

1. अजासि राधे! त्वमनादिसिद्वा
ब्रह्मस्वरूपासि हरेराभिन्ना।
योगीश्वरास्त्वत् कृपया लभन्ते
पदं प्रयन्नाम विधेहि तनमे।।– श्रीराधापञ्चशती–३६४।

श्री राधापञ्चशती मे राधा आह्लादिनी शक्ति के रूप मे श्रीकृष्ण मे पूर्ण विस्तृत हो जाती है और श्रीकृष्ण के हृदय मे समस्त भुवनों मे आनन्द वितरण की इच्छा होती है। तब ही श्रीकृष्ण लीला आरम्भ करते है। वास्तव मे राधा की आराधना का अधिकार उसी व्यक्ति को मिलता है। जिसकी भेद दृष्टि समाप्त हो जाती हैं राधा की उपासना का अधिकारी पात्र बनने के लिए निम्नलिखित योग्यता क्रम सन्दर्भ से प्राप्त होती है–

१. सर्वप्रथम राधा और कृष्ण के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होना चाहिए। इस ज्ञान की प्राप्ति किसी सद्गुरू की कृपा से प्राप्त होती है जो स्वयं राधा कृष्ण का अनन्य भक्त होता है।[1]

२. सद्गुरू से राधा कृष्ण के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होने पर भी राधा की उपासना का अधिकार तब तक नहीं मिलता जब तक काम क्रोधादि को पूर्णत· जीत नहीं लेते हैं।

३. कामक्रोधादि विकारो को जीतने के लिए अन्तर्देह को निर्मल करने की प्रक्रिया का ज्ञान अपेक्षित है। यह विधि केवल समर्थ सद्गुरू की कृपा से ही अधिकारी पात्र मिलने पर प्रदान की जाती है।[2]

४. नित्यनिरन्तर अभ्यास द्वारा जब अन्तर्देह शुद्ध हो जाता है। और स्फटिकमणि के समान चमकने लगता है तो साधक भक्त प्रत्यक्ष अनुभव करता है कि उसकी रीढ की हड्डी में हजारों बिजालियॉ चौध रही है किन्तु ये स्थिर नहीं रह पाती।

५. फिर भी इस प्रकाश को देखकर साधक को परवैराग्य प्राप्त हो जाता है वह अपने निकट सम्बन्धियों पुत्र, मित्र, कलत्र, बन्धु बान्धवों से तटस्थ हो जाता है। वह अनुभव करता है कि सांसारिक प्रपञ्च के प्रेमजाल दिखावटी तथा जञ्जाल मात्र है।[3]

---

1. ससारे जनु–मृत्यु रूप गहनाम्भोधौ बूडन्तो जनाः
   भीता क्रोधमदादिनक्रमकरैर्गाढान्धकारात्मकै.।
   श्रीमत्–सद्गुरू–वाक्य–लब्धधिषणा ज्ञात्वा स्वरूपस्थिति।
   राधे। ते स्तव–भक्त–पाठ निरता भीति जहत्यत्तत ।। श्रीराधापञ्चशती–श्लोक–३३।
2. श्री राधापञ्पशती, श्लोक–६।

3.(क) परिहाय विनाशकर सकल
   सतुदारसुह्रतपरिवारगणम्।
   वृषभानुसुतापदपद्मरति
   कलयाम्यधुना ननु धामगतिम्।।–श्रीराधापञ्पशती, श्लोक–४४१।
   (ख) श्रीराधापञ्पशती श्लोक–४४३,

६ परवैराग्य जब 'वशीकार' की स्थिति मे आ जाता है। तो अन्तर्जगत् के द्वार अपने आप खुल जाते है। अब साधक निरन्तर भावसमाधि मे डूब, जाता है। इस समय उसका स्थूला शरीर जो साधक देह है, व्यवहार जगत मे सब कार्य करते हुए भी राधा की उपासना का पथिक बन जाता है इस समय साधक के अन्तर्देह की रचना हो जाती है जो सिद्ध देह कही जाती है। अब साधक अपन स्थूल साधक देह तथा सूक्ष्म सिद्ध अन्तर्देह की रचना की आराधना अहर्निश करने लगता है तभी राधा की कृपा की वर्षा हो जाती है। साधक नित्य अन्तर्गत लीलाओ मे प्रवेश कर जाता है और प्रति क्षण राधाकृष्ण की नई–नई लीलाओ का दर्शन करने लगता है।[1]

कवि ने राधापञ्चशती में बडे रोचक ढग से श्रीराधा के ध्यान की विधि बताया है कि इस ध्यान की विधि के दो अंग हैं। सर्वप्रथम स्वरूपाध्यान का स्थान आता है। स्वरूपाध्यान मे जब भेद और विकल्प नष्ट हो जाते है और चिन्त केवल राधा के स्वरूप में तन्मय हो जाता है तो उसी समय राधा के दिव्य दर्शन की एक झलक साक्षात् मिल जाती है इस अवस्था मे सर्वप्रथम एक रत्नपीठ का ध्यान करना चाहिए। रत्नपीठ के भलीभॉति प्रकट होते ही वहा एक नीलकमल प्रकट होता है। इस नील कमल के बारह दल होते है, किन्तु ध्यानावस्था मे अष्ट दल ही चमकते हैं। इस नील कमल पर घने नीले रंग की साड़ी पहनी हुई राधा स्फुरित होती है। राधा की देह कान्ति हजारों, लाखों विजलियो की चमक से भी तेज चमक प्रकट करती है। राधा के कानो मे उससे भी जयादा चमकदार हीरे चमकते है। राधा का यह स्परूप विग्रह ध्यानावस्था में भक्त के अन्तश्चक्षु के सामने एक मात्रा के पॉच सौ हिस्से के बराबर काल तक भी स्थिर नहीं रहता। इस समय यह विग्रह एक दिव्य भास्वत्–गौर वर्ण की अंगुष्ट के आकार की ज्योति बन जाता हैं जिसका

1. वही, श्लोकः– १८०, ३००, ४३४।

साक्षात्कार करते ही साधक समाधि मे लीन हो जाता है। इस प्रकार साधक भक्त का दिव्य चक्षु मिल जाते है। यह कवल राधा की कृपा से होता है।[1] दिव्य चक्षु मिलत ही त्रिकालज्ञता का ज्ञान हो जाता है। इस ज्ञान शक्ति से सम्पन्न होने पर ही दीर्घकाल तक समाधि लग जाती है। राधाकृष्ण का साक्षात्कार और अन्तरग लीलाओ का दर्शन होने लगता है। अब इस स्थिति मे देहानुसन्धान बिल्कुल नही रहता।

ध्यानविधि के दूसरे अग की प्रक्रिया में चित्त की वृत्ति को साध्यमन्त्र के ज्येतिर्मयबिम्ब पर केन्द्रित करना चाहिए। यह बिम्ब चमकते हुए तीन श्वेत बिन्दुओ के रूप मे प्रकट होता है। ये बिन्दु एक उर्ध्वमुख त्रिकोण का रूप ले लेते हैं। यह त्रिकोण रेखाओ से नहीं जुडता। जैसे–जैसे चित्त की वृत्ति यहां जम जाती है। वैसे–वैसे ये तीन विन्दु लुप्त हो जाते हैं और कमल पर एक श्याम बिन्दु शेष रह जाता हैं। दूसरे आगे की ध्यान की विधि केवल गुरूकृपा से प्राप्त होती है। ध्यान के इस दोनों विधि अंगो तक कोई विरला ही योगभ्रष्ट साधक भक्त पहुच पाता है क्योंकि इसके लिए पूर्वभूमिका अपोक्षित होती है। वास्तव मे जब चित्त इस लोक तथा परलोक दोनों के भोगों से विरक्त हो जाता है। सद्गुरू के रहस्य उपदेश से बुद्वि शुद्व हो जाती है। तभी इस विधि से ध्यान मे प्रवेश होता है। ध्यानाविधि की प्रक्रिया मे अन्य अनेक ऐसी बाते है जो गुरू से साक्षात्कार होने पर ही सम्भव है।

प्रो० रसिक बिहारी जोशी की श्रीराधापञ्चशती बड़ी अनोखी है। यह अमृत का भण्डार है। इसमे ज्ञान, ध्यान भजन तथा उपासना के तन्तु बिखरे पडे है। यह ग्रन्थ तो राधा जी की कृपा के माहात्म्य वर्णन से भरा पडा है।[2]

---

1. य लोक लभते हि सिद्वपुरूषो ध्यानेन योगीश्वर
   स्त भक्तयैव सदाघपञ्जपतित कारूण्यद्दृष्टिं गत ।।–श्रीराधापञ्चशती· श्लोक–३२।
2. श्रीराधापञ्चशतीः श्लोक–४७, १६७, २००, ३२१

यथा– तवकटाक्षलव कलयाम्थह

धनविहीनजनाय धनप्रदम्।

पतित बन्धुमनश्वर भूतिदं।

त्रिविधताहर भवभुक्तिदम्।।[1]

साथ ही साथ की उपासना की सूक्ष्म विधि भी बतायी गयी है। स्वरूपाध्यान की प्रक्रिया मे चरणारविन्द, आभूषण श्रृड्गार, वाणी नेत्र तथा निकुञ्ज लीला, के अनुपम बिन्दु हैं। ये सब मधुर उपासना के अग है।

चरणाबिन्द का ध्यान तथा चिन्तन करना मधुर उपासना मार्ग मे दास्य भाव का प्रधान बिन्दु है। जब भक्त के मन मे सेब्य सेवक भाव अच्छी तरह परिपक्व हो जाता है। तो वह दास्य भाव के रस मे डूब जाता है। उसे यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि "राधा के चरण कमल ही वह दिव्य औषधि है जो जन्म जरा तथा मरण की पीडा को नष्ट कर देती है।[2] दास्य भाव से जब ध्यान में चरणकमल पर चित्तवृत्ति जम जाती हैं तो अमृत की बूंदे बरसने लगती है जैसे रस का कोई समुद्र ही उलट गया हो। इसी समय साधक भक्ति पर भक्ति रस का अभिषेक हो जाता है। उसका स्थूल देह राधा के चरणो मे हमेशा के लिए नत हो जाता है। तब बडे–बडे महात्माओ तथा सिद्व पुरूषों की कृपा एव आशीर्वाद मिलने लगता है।

इस प्रकार राधा–कृष्ण के चरणो के ध्यान तथा चिन्तन से जन्म जन्मान्तर के पाप धुल जाते है, तो सत्वगुण का प्रकर्ष देह तथा चित्त में उत्पन्न हो जाता है।[3] शरीर तथा चित्त मे एक हल्कापन (लघुता) तथा प्रकाशकता छा जाती है। कर्मो के बन्धन ढीले पड जाते है।[4] चरणकमल के पराग को ध्यानावस्था में अपने ललाट तथा मस्तक पर लगाते

---

1. वही श्लोक–१६७।
2.(क) श्रीराधापञ्चशती श्लोक–२२८।
 (ख) राधे! त्वं विभलौषधिर्मवमहाऽविद्यातमोनाशिनी
 नून सिद्वमहौषधिर्जनु–जनु स्वान्तस्थ दोषापहा।–राधापञ्चशती– श्लोक– ३५।
3. राधाकृष्णपदाश्रयी बुधजनो भक्त्याकृत सषिवे–
 न्नूत यत्न–फले सदैव महता ध्यानेन लाभप्रदे।।–श्रीराधापञ्चशती श्लोक–४०।
4. श्रीराधापञ्चशती श्लोक–२६४।

ही समदर्शिता उत्पन्न हो जाती हैं। यह निर्भय होकर भूमण्डल मे घूमने लगता है।[1] "राधा के चरणो का ध्यान से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पॉचो कलेश जडमूल से नष्ट हो जाते है। अब काम, क्राध, लोभ और मोह, उसे पहले की तरह ठग नही सकते। उसकी वाणी राधा की स्तुति मे मुखरित हो जाती है।"[2] जब वह स्तुति के सुन्दर–सुन्दर सुगन्धित पुष्प राधा के चरणो मे अर्पित करता है तो उसके कर्मपाशा के बन्धन ढील पड जाते है। भक्तिभाव से ओतप्रोत ये स्तुति पाठको पर अमृत की वर्षा कर देती हैं। जो विद्वान इन स्तुति की समझाते है वे तत्काल स्वय निर्मल होकर श्रोताओ को निर्मल बना देती है। जो ऐसी स्तुति को मधुर स्वर से गाते है वे मदोन्मत्त पापियो को भी तत्काल शुद्व कर देते है।

वैष्णव परम्परा तीन प्रकार के आन्नद मानती है। (१) स्वरूपानन्द (२) भक्तयानन्द तथा (३) भक्तानन्द। पहला आनन्द भगवान् के स्वरूपानुसन्धान से प्रकट होता है दूसरा आनन्द भक्ति की क्रिया तथा चर्या से उत्पन्न होता है। तीसरा आनन्द भक्त के स्वरूप के अनुसन्धान से दूसरे भक्तो को तथा स्वय भगवान् को प्राप्त होता है।

राधा के नाम तथा राधा के मन्त्र **"ॐ राधिकायै नमः"** दोनो ही विलक्षण है। इनकी तीन प्रमुख विशेषताए है।[3]

(१) कामदेव द्वारा इन्द्रजाल विद्या से विरचित मिथ्यानगरी को तत्काल नष्ट करना।

(२) अनन्त आशासर्पिणी पिशाचिनी को भगाना।

(३) भक्तापराध से अप्रसन्न तथा कूपित श्रीकृष्ण के क्रोध को शान्त करना।

---

1. ये राधिकापदपरागरज प्रलिप्त
   भाल विधाय दुरितानि विचूर्णयन्ति।
   ये ज्ञानिनोऽडवनितले समदर्शिनोऽलम्
   पश्यन्ति दिव्यललनामपवर्गदात्रीम्।।– राधापञ्चशती श्लोक–२६५।
2. ये पूजयन्ति विमल तव पादपद्म।
   ते क्लेशपञ्चकामिद सहसा जयन्ति।
   कामादिदोषनिवहोऽपि न वञ्चयेन्तान्
   ये जन्मन शुभफल समुद्रञ्चयन्ति।।–राधापञ्चशती, श्लोक–३०७।
3. कामेन्द्र जालरचित नगर धुनीते।
   वांछापिशाचरमणी प्लवने प्रवीण
   श्रीकृष्णकोपशमने मधुरो निनादो
   हे राधिके। विजयते तवनाममन्त्र ।। श्रीराधापञ्चशती,–श्लोक–२६३।

प्रणव के जप का अधिकार तो उन्ही को है जो वेदोक्त विधि से सस्कार सम्पन्न है। राधा के नाममन्त्र तो मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए है।[1] इसलिए बडे–बड योगी, मुनि, भक्त तथा देवता राधा मन्त्र का निरन्तर जप करते रहते है। इसकी मधुरनाद ध्वनि चित्तवृत्ति का शीघ्र निग्रह कर देती है। ससार महीरुह की जडे हिल जाती है। यह ससार तो जन्म, जरा, तथा मरण का एक विषय सागर है। जिसमे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य, मगरमच्छ के रूप मे अन्धेरे तले में डूबे रहते है। जब सद्गुरू के उपदेश से दुर्वुद्धि नष्ट हो जाती है। सुबुद्धि उत्पन्न हो जाती है। जब निजअनुसन्धान तथा पर स्वरूपानुसन्धान की प्रक्रिया चल पडती है। 'स्व' तथा 'पर' दोनों का यथार्थ बोध होने से अज्ञान के परदे फट जाते हैं। और मन्त्र, जप तथा स्तोत्ररचना के माध्यम से निर्भयता प्राप्त हो जाती है।[2]

राधा के स्वरूप ध्यान मे जैसे–जैसे चित्त केन्द्रित होता जाता है। एक के बाद एक ध्यान के ध्येय बिन्दु लुप्त होते जाते हैं। इस समय राधा के मन्दस्मित की छटा चारो तरफ फैल जाती है। सबसे पहले ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोहरे के गुब्बारे का एक धुँधला गोला तेजी से आज्ञाचक्र मे गोल–गोल धूम रहा है। यह गोला क्षण भर मे लुप्त होता जाता है। जब इस गोले के केन्द्र मे चित्तवृत्ति समाहित हो जाती है तो यह गोला प्रकाशुन्ज बन जाता है और इसके चारो तरफ एक हल्के नीले रंग के प्रकाश की गोलाकार आवरण रेखा प्रकट हो जाती हैं अब यह प्रकाश पूर्णिमा के चन्द्रमा की शीतल चॉदनी की शीतलता को भी तिरस्कृत कर देता है। इसके उदय होते ही चित्तस्थ राग तथा द्वेष के सस्कार नष्ट हो जाते हैं। चित्त पूर्ण रूप से एकाग्र हो जाता है। जब ध्यान में इस प्रकाश को हृदय में अष्टदल कमल पर विराजमान कर लेते हैं तो इसकी अलौकिक छटा में राधा के नेत्रो के स्पष्ट दर्शन हो जाते है। जिनसे करूणा रस के झरने बहते रहते है, यह झरना जब

1. श्रीपञ्चशती; श्लोक–२५,
2. ससारे जनु–मृत्यु रूप गहनाम्भोधौ बुडन्तो जना।
   गीता क्रोधमदादि न क्रम करैर्णाढा धकारात्मकै।
   श्रीमत् सद्गुरू–वाक्य लब्ध–धिषणा ज्ञात्वा स्वरूपास्थिति
   राधे! ते स्तव–मन्त्र पाठ–रिरता भीति जहत्यन्तत ।।–श्रीराधापञ्चशती–३३।

प्रज्ञालता को सीच देता है तो उस पर तत्काल दिव्य पुष्प खिल जाते हैं।[1] इस समय राधा की स्तुति स्वय मुखरित होकर बहन लगती है। नई–नई उत्प्रेक्षाये और कमनीय काव्यविम्ब स्वय निकलने लगते है। राधा के इस मन्दस्मित तथा कटाक्ष गगा का रस पीने वाला व्यक्ति काल गति को जान लेता ह और कालातीत अवस्था का अधिकार प्राप्त कर लेता है।[2]

राधा जी के नेत्रो की शोभा अनोखी है वाणी उसका वर्णन नही कर सकती। मैने ध्यान मे जिस प्रकार इन नेत्रो को सुषमा को देखा उसी प्रकार वर्णन करने का प्रयत्न किया है। जब चिन्त की वृत्ति एक निष्ठ होकर राधा के नेत्रों पर स्थित हो जाती है जो चारों तरफ प्रकाश का एकपुञ्ज फैल जाता है। ऐसा अनुभव होता है जैसे राधा के नेत्रों से अमृत से भरी हुई मन्दाकिनी निरन्तर अमृत की वर्षा कर रही है।[3] अमृत की यह धारा चन्द्रमा की किरणो से निचोड़े हुए रसनिष्यन्द से भी अधिक आह्लादक, मधुर तथा शीतल है।[4] यह शीतलता सांसारिक विविधि तापो को तत्काल शान्त कर देती है। कभी ऐसा मालुम होता है जैसे राधा के करूणा कटाक्ष पुष्पो से लदी हुई कोई दिव्य लता है। बडे–बडे योगी इस लता के पुष्पो को सूँधने के लिऐ लालायित रहते हैं।[5] जो पुण्यात्मा राधा का कृपापात्र बनकर इस लता के पुष्पों की गन्ध एक बार भी पा लेता है उस समस्त विभूतियों के आनन्द के साथ गोलोकधाम मे भगवान् श्रीराधाकृष्ण की नित्य सखी के रूप से सेवा का अधिकार मिल जाता है। जब तक कोई राधा की कटाक्षलहरी में स्नान नही करता, तक तक पापो से मलिन वृद्धि बिशुद्वि नही होती। क्या ऑगन का कीचड कभी पानी के बिना स्वच्छ होता है[6] वास्तव में राधा के नेत्रों से निरन्तर एक पावनी चिन्मयी गङ्गा बहती रहती है। जिसमे स्नान करते ही मनुष्य दिव्य रूप धारण करके चिन्मय हो जाता है।[7]

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक, ३६।
2. वही श्लोक–३७,
3. वही श्लोक–०२,
4 वही श्लोक–०३,
5. वही: श्लोक–०४,
6. श्रीराधापञ्चशती: श्लोक–६,
7. वही: श्लोक–८,

"राधा के नेत्रो की छटा कान तक बिखरी हुई है। भ्रूलता कुछ सकुचित और तिरछी है। राधा इस छवि से श्रीकृष्ण को एकटक देख रही है। राधा के नेत्र प्रेम तथा अनुराग से भरे है। राधा के नेत्रों की इस छवि का ध्यान करने वाला गुणातीत हो जाता है।[1]"

श्रीकृष्ण का चित्त विशुद्व राग के जल से भरा हुआ एक निर्मल सरोवर है। राधा इस सरोवर मे स्नान करने जा रही है। श्रीकृष्ण के चित्त सरोवर मे आनन्द की लहरे लहरा रही हैं। राधा के नेत्रो मे अनोखी कान्ति है और मुखारविन्द मन्दस्मित से मण्डित है। जपकाल मे यह ध्यान कने वाला राधा का कृपापात्र बन जाता है।[2]

राधा के नेत्रो के चार उपमान सस्कृतसाहित्य मे प्रसिद्व है।[3] (१) नीलकमल (२) कस्तूरी (३) खंजन तथा (४) मीन (मछली)। इसका प्रधान हेतु उपमानों की चचलता तथा नील वर्ण हैं। इसी कारण इन उपमानो का उपमेय नेत्र के साथ उपमान–उपमेयभाव बनता है किन्तु कवि की दृष्टि से ये चारों उपमान उपयुक्त नहीं है। क्योंकि ब्रह्म जी ने इनकी रचना के लिए श्याम गुण का आधान करने के लिए पार्थिव परमाणुओं का आश्रय लिया था।

अतः इन उपमानो मे पार्थिव मलिनता विद्यमान है। राधा के नेत्र तो शुद्ध सत्त्व गुण के प्रकृष्ट उपमान होने से किसी भी मलिनता से सम्पृक्त नही है।[4]

राधा की कमलालया कमला है। कमला का निवास स्थान कमल है।[5] कमल पर गन्ध के लोभी भौंरे मॅडराते रहते है, और रस सुधा का पान करते रहते हैं, किन्तु शाम होते ही भौरें कमल में बन्द हो जाते है। रात भर वही बन्दी बने रहते हैं। कमलालया कमला के निवास सदन की इस लीला को देखकर सरस्वती भक्तों के मुख–कमल में नित्य निवास करने लगे जाती है। क्योकि मुखकमल तो कभी भी बन्द नहीं होते हैं।[6]

---

1. वही श्लोक–५३,
2. वही श्लोक–३५,
3. वही· श्लोक–५८,
4. श्रीराधापञ्चशती श्लोक–६६।
5. वहीः श्लोक–२३४, ४७०।
6. वहीः श्लोक–३१७,

जब राधा–लक्ष्मी विष्णु–श्रीकृष्ण के साथ क्षीरसागर मे सहस्रफणावलि विभूषित शेषनाग पर रमण करती है तब उसके बायें हाथ मे एक सुवर्ण का रत्नजडित घडा रहता है। इसमे करूणा का अमृत भरा रहता है। जो ध्यानावस्था में इस सुधा–घटी को देख लेता है उसके समस्त शुभ–अशुभ कर्म नष्ट हो जाते है।[1]

राधा के दाहिने हाथ मे एक लीला कमल रहता है। जिसे वह प्रसन्नता से घूमाती रहती है। इस लीला कमल पर भौंरे मॅडराते रहते है। जो इस लीला कमल का दर्शन कर लेता है और भौरे के गुॅजननाद को सुन लेता है उसकी कविता शक्ति तत्काल प्रस्फुटित हो जाती है।[2] नये–नये भाव, नयी–नयी कल्पना, नये–नये काव्य बिम्ब, और अर्थानुकूल शब्दों के उचित प्रयोग स्वय आगे–आगे चलने लगता है।

इस समय भक्त कवि भाव समाधि मे डूब जाता है। वह जो कुछ लिखता है वह प्रत्यक्ष देखी हुई लीलाओ का वर्णन मात्र होता है। उसकी कविता बुद्धि का व्यायाम मात्र नही होती। बल्कि राधा के कृपा का, राधा के नेत्रो की प्रिय सखी "कृपा" की कृपा का और सरस्वती की कृपा का परिणाम होती है।

राधा के पास एक मंजूषा है जिसमे रस और भाव के बहुमूल्य रत्न भरे रहते है। इस मजूषा का ध्यान करने वाला व्यक्ति भी काव्य रचना की कला में परम चतुर हो जाता है।[3]

श्रीकृष्ण राधा के नेत्रों को उसके सौन्दर्य से विभोर होकर एकटक निहारते रह जाते हैं। इस समय श्रीकृष्ण का प्रतिबिम्ब राधा के नेत्रो मे अंकित हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे राधा के नयन मन्दिर में श्रीकृष्ण की रसमयी मूर्ति बिराज रही है। राधा के नेत्रों से आनन्द, प्रेम तथा अप्राकृत राग का जल छलछला जाता है। जो पुण्यात्मा इस जल की एक बूद का भी विषय बन जाता है और पवित्र होकर राधा के नेत्रों मे प्रतिबिम्बित श्रीकृष्ण की मूर्ति का दर्शन करके पूजा कर लेता है, वह माया को जीतकर मुक्त हो जाता है।[4]

---

1. वही श्लोक–३१६,
2. वही श्लोक–४६८,
3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–३६।
4. वही, श्लोक–३५।

स्वरूप ध्यान की प्रक्रिया मे मन्त्र जप के साथ–साथ कभी राधा के नेत्रों म लगा कज्जल प्रकट होता है। कभी चम्पे की कली के समान तीखि नासिका के दर्शन होते हे। कभी गले मे कमलो की सुगन्धित माला दिखती है। कभी–कानों मे कुन्द पुष्पों की कलियो के झूमके झूलते दिखायी देते है।[1]

कभी दाहिने हाथ मे हिलता हुआ लीलाकमल दिखता है जिस पर भौरें गुँजार करते है तो ऐसा लगता है जैसे वेदान्त के पारगत योगी 'महावाक्य' बोलते हुए श्रीकृष्ण का गुणानुवाद कर रहे है।[2]

यह राधापञ्चशती काव्य मधुर भक्ति तथा रसमयी उपासना का भण्डार है। इस काव्य का प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद प्रत्येक भाव प्रत्येक पद प्रत्येक भाव प्रत्येक बिम्ब और प्रत्येक उत्प्रेक्षा प्रेम भक्ति से सनी हुई है। रसशास्त्र में शुद्वसत्व को ही 'भाव' कहते है। जब भगवद्विषयणी रति से चित्त शुद्व हो जाता है और अत्यन्त निर्मल तथा कोमल बन जाता है तब प्रेम की पहली अवस्था भाव कही जाती है। इस अवस्था मे अश्रु, रोमांच, कम्प आदि सात्तिक भावों का निरन्तर उदय रहता है। इसी को भाव रति कहते हैं। यही भाव रति जब प्रगाढ होती है तब प्रेम पद से वाच्य होती है। भाव रति की अपरिपक्व अवस्था और प्रेम, रति की परिपक्व अवस्था है। जब साधक भक्त के ह्रदय मे भावरति पूर्ण रूप से उद्रिक्त हो जाती है तो इष्ट देवता की अप्रकट लीलाओं का साक्षात्कार होने लगता है। साधक भक्त आनन्द सागर में डूब जाता है। साधक का मन उल्लास से भर जाता है। शरीर में आलस्य निद्रा, तन्द्रा का होश भी नही रहता है। वह भगवान की मधुरता के आनन्द में डूबा रहता है। उसका अन्तर्वपु और अन्त:करण दोनो इष्ट देवता के स्वरूप तथा लीला के स्फुरण मे लीन हो जाते हैं।

---

1. राधाकज्जललोचना अधरपुटे ताम्बूल रागाञ्चिता
नासाजातिककुड्मला सुरभिताऽम्भोजस्रजा मोहिनी।
कर्णान्दोलितकुन्द कलिका हस्तारबिन्दद्वयी।
पादालक्तकरागिणी भवतु मे प्रत्यूह–विध्वसिनी।।– श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२२।
2. श्रीराधापञ्चशती श्लोक–२७.

यह भाव दो प्रकार से उत्पन्न होता है—

(१) यथाविध गुरू द्वारा उपदिष्ट मार्ग का दीर्घकाल तक सत्कारपूर्वक पालन करने से—चित्त शुद्धि द्वारा भाव की उत्पत्ति।

(२) जन्मान्तर के प्रारब्ध दोष से मलिन चित्त पर भी भगवान की अहेतुकी कृपा[1] अथवा गुरू की वात्सल्य कृपा से यह भाव उत्पन्न हो जाता है। किन्तु कृपा द्वारा "भाव" की उत्पत्ति का यह प्रकार सिद्वान्त में यथार्थ होने पर भी व्यवहार में अत्यन्त दुर्लभ है।

वास्तव मे जब राधा—कृष्ण विषयिणी प्रेम रति उत्पन्न होती ह उसे पूर्वराग कहते है। पूर्वराग की अवस्था मे भक्त मे भगवान् के प्रति अनन्य प्रेमा भक्ति उत्पन्न हो जाती है। भगवान् के साक्षात् दर्शन के लिए मन व्याकुल हो जाता है। किन्तु साक्षात्कार नही होता है। इसलिए यह अवस्था पूर्वराग कहलाती है इस अवस्था को साधारण जन सिद्वावस्था समझते है। किन्तु यह सिद्वावस्था नहीं बल्कि यह तो पूर्वराग प्रधान साधनावस्था ही है। भगवान् के साक्षात्कार की योग्यता होने पर पूर्वजन्म के प्रतिबन्धक कारणो से साक्षात्कार नहीं होता। जैसे कस्तूरी—मृग अपनी नाभि मे स्थित कस्तूरी की सुगन्ध से मदमत्त होकर चारों तरफ दौडता रहता है। किन्तु उसे प्राप्त नहीं कर पाता। यही स्थिति भक्त की होती है। भगवान् का साक्षात् दर्शन तो केवल सिद्वदेह से समाधि की अवस्था मे ही होता है।

यह ब्रह्माण्ड जड है। जड प्रकृति त्रिगुणात्मिका तथा दुःखमोह स्वरूपिणी है। जड प्रकृति के आगे एक आनन्द सागर है। जो निर्मल ज्योति का पुन्ज है, स्वय प्रकाशमान है, इसका प्रकाश; चित्त—शक्ति से होता है, चित्त—शक्ति प्रकृति से परे हैं इसलिए यहां अज्ञान तथा अविद्या का लेश भी नहीं रहता; अज्ञान के अभाव में अज्ञान का कार्य जगत् भी नही रहता। इसी को परब्रह्म कहते हैं। इसी के केन्द्र मे आनन्द का घनीभूतसागर है यही ईश्वर ज्योति, वैकुण्ठधाम, कहलाता है। दूसरे मध्य में उससे अधिक निर्मल 'श्रीकृष्ण ज्योति' है इस ज्योति मे "राधा ज्योति" समायी रहती है जो समस्त उपलब्ध ज्योतियों में अत्यन्त निर्मल, शीतल तथा उज्जवल है। यह ज्योति समस्त भुवनो को मोहित कर देती है। यही राधाभक्ति

---

1. वही, श्लोक १३६।

का माहात्म्य है। इसीलिए राधाभक्ति की चतुर्दिक, सार्वकालिक प्रशसा होती है जो समस्त पुरूषार्थचतुष्ट्य को प्राप्त करने का सर्वोत्त्म साधन माना गया है।

भगवान् तो आत्मकाम तथा आत्मराम है। भगवान् मे अहकार का लेस भी नही रहता। अहकार तो जड प्रकृति की एक विकृति हो। भगवान् जड प्रकृति से परे रहकर इसे नियन्त्रित करते हैं। वास्तवं मे जो योगी तथा भक्त राधा–कृष्ण के पराग से तृप्त हो जाते है। और अहकार से शून्य हो जाते है। वे भी शास्त्रीय तथा लौकिक विधि निषेघ की मर्यादा के ऊपर उठ जाते है और बन्धन मे नही फॅसते।

श्रीकृष्ण का जो सचिदानन्द स्वरूप है। यह त्रिपादविभूति का स्वरुप है। यह केवल वृन्दावन में श्रीकृष्ण की अहेतुकी कृपा से ही साक्षात्कार का विषय बनता है। भगवान की कृपा के बिना। किसी को भी योगाभ्यास से विद्या से, कुल की गौरवगाथा से, तपस्या से या उपासना से इस स्वरूप का रसास्वाद नही हो सकता। भगवान् राधा–कृष्ण की रसमाधुरी के आस्वाद् के लिए दिव्य चक्षुं भी पर्याप्त नही है। इसके लिए प्रेमाभक्ति में ओत–प्रोत सखी भाव आवश्यक होता है। अद्वयज्ञान स्वरूप साकार सगुण परब्रह्म श्रीकृष्ण का साक्षात्कार उपनिषद के ज्ञान से भी गम्य नही है।

भगवान् का साक्षात्कार तो केवल निष्काम भक्ति से ही होता है। वह निष्काम भक्ति तभी कारण बनती है जब साधक भक्त उसको कारण नही समझता। इस प्रकार निष्काम भक्ति करते हुए भक्ति के साधन के अहकार तथा बल से जब चितरहित हो जाता है तब भगवान् की अहेतुकी कृपा की शरण ले लेता है। तब नितान्त शुद्व चित्त भाव–भक्ति और भाव समाधि की स्थिति कंो निरन्तर प्राप्त कर लेता है। इसी के बाद गुरूकृपा तथा भगवत्कृपा से पराभक्ति का उदय होता है। परा भक्ति द्वारा जब निष्काम भाव परिपक्व हो जाता है तब अन्तश्चक्षु खुल जाते है और भगवान् राधा–कृष्ण के अनुपम दर्शन प्राप्त होते हैं।

भगवान् राधा कृष्ण की कृपा से साधारण व्यक्ति भी कैसे अद्‌भूत कार्य कर लेता है[1] इस विषय मे कवि प्रो० रसिक विहारी जोशी स्वयं प्रमाण हैं। कवि का कहना है कि मुझ जैसा सामानय, विकार ग्रस्त, भावशून्य तथा अहकारी व्यक्ति को भी भगवान राधा–कृष्ण ने अपने अहेतुकी कृपा से इस दिव्य काव्य की रचना का निमित्त बनाया। प्रिया–प्रियतम की इस कृपा के साथ पूज्य पिता एव गुरू जी पण्डित राम प्रताप शास्त्री की विशेष वात्सल्‌य कृपा भी इस काव्य रचना मे निमित्त है। उन्होने ही मुझे राधाकृष्ण की मधुर उपासना में दीक्षित किया गया। इस प्रकार कवि की काव्य रचना की सामर्थ्य राधा–कृष्ण अहेतुकी कृपा तथा पिता एव गुरू की वात्सल्‌य कृपा से प्राप्त हुई।

इस प्रकार यह श्री राधापञ्चशती कवि की राधाभक्ति का परिणाम है। इसमे राधा कृष्ण की भक्ति का विविध भावों एव रसों से माहात्म्य वर्णित है।

---

1. श्रीराधापञ्चशती श्लोक -५०६, ५०७।

तृतीय अध्याय

भारतीय वाङ्मय में गोपीभाव एवं राधा का स्वरूपः

श्रीराधापञ्चशती में राधा का स्वरूपः

(i) ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णित राधा–

वैदिक साहित्य मे राधा, पौराणिक राधा, गाथासप्तशती की राधा।

(ii) धार्मिक दृष्टि से वर्णित राधा का स्वरूप–ज्योतिष्मे राधा, योगतत्त्व मे राधा, शिव रूप मे राधा,शक्ति तत्व में राधा, आलवारमत में राधा, निम्बार्क सम्प्रदाय मे राधा, बल्लभ मत में राधा, राधा–बल्लभ सम्प्रदाय मे राधा, चैतन्यमत मे राधा, सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय मे राधा, गौडीय सम्प्रदाय मे राधा, और ललित सम्प्रदाय मे राधा।

(iii) साहित्यिक राधा–

सस्कृत साहित्य मे गोपीभाव एव राधा, अपभ्रश काव्य मे राधा, मैथिली काव्य की राधा; बगला साहित्य की राधा, ब्रज साहित्य मे राधा–निम्बार्की, राधाबल्लभीय एव अष्टछापी कवियो की राधा–

पूर्वाञ्चलीय– उत्कल एव असमिया साहित्य मे राधा–

पश्चिमाञ्चलीय मराठी एव गुजराती साहित्य मे राधा–

दक्षिणाञ्चलीय–तमिल, कन्नड, तेलगू, मलयालम साहित्य में राधा–

२– श्रीराधापञ्चशती में राधा का स्वरूप–

भारतीय वाङ्मय में गोपीभाव एवं श्री राधा कास्वरूप

प्राचीन भारतीय साहित्य मे प्रेम की देवी राधा के अतिरिक्त एकनाम और उभरकर हमारे सामने आता है, वह नाम है–गोपी। गोपी यद्यपि यह नाम नही है परन्तु जैसे राधाकृष्ण की प्रियतमा थी वैसे ही गोपियॉ भी कृष्ण को अत्यधिक प्रिय थी। कही कही प्राचीन भारतीय वाड्मय मे हम गोपियों के प्रेम की पीर को समझने का प्रयास करते हैं। इस दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इनका प्रेम तो राधा से बढकर भी जान पडता है। क्योकि ये किसी की पत्नी, किसी की मॉ होकर भी सब कुछ लोक लज्जा त्यागकर कृष्ण से अलौकिक प्रेम करती थीं और यह भी सत्य है कि कृष्ण राधा को जितना स्नेह देते थे गोपियों को कृष्ण का उतना प्रेम उतरोत्तर बढता गया।[1] गोपियो की भावनाओं को सामान्य नारियो की उद्भूत भावनाओ से नही आका जा सकता, क्योकि सामान्यतया नरियों की भावनाए बाह्य रूप से जुडी रहती है जबकि गोपियो का कृष्ण के प्रति जो भाव था वह आन्तरिक था। ये गोपी भक्ति की पुजारिन मानी जा सकती है।

गोपीभाव रस–साधना की उत्कृष्ट कोटि मानी जा सकती हैं। गोपी–भाव स्त्री–सुलभ वाह्य–वेश के ऊपर आश्रित नही होता, वरन् यह एक उदात्त आन्तरिक भाव माना जा सकता है। वह भक्ति भावना की उदात्त कोटि का उज्ज्वलतम् प्रतीक है। भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्द मे अपने समस्त आचार–व्यवहार, कार्य–कलाप धर्म–कर्म का पूर्ण समर्पण तथा उनके विरह में परम व्याकुलता भावना की गोपीभाव में यही दो परिचायक लक्षण दिखायी पडते है। नारद की सम्मति मे भक्ति का पूर्ण आदर्श ब्रज–गोपिकाओं के जीवन में विकसित हुआ था। भक्ति का आदर्श क्या है? इसका सम्यक् निरूपण पं० बलदेव उपाध्याय ने इस प्रकार दर्शाया है–

तदर्पिताखिलाचारितात्दविरहे परमव्याकुलता च।[2]

---

1. श्रीराधा का चारित्रिक विकास–अप्रकाशित–शोधप्रबन्ध पृष्ठ स० १३ (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पुस्तकालय) से उद्धृत।
2. पंडित बलदेव उपाध्याय. भागवत सम्प्रदाय पृष्ठ ६३२

अर्थात् भगवान् को अपने समग्र आचारो का समर्पण तथा उनक विरह मे परम व्याकुलता। ससार के समस्त निजी कर्मो, व्यापारों तथा नाना प्रपञ्चो को छांडकर चित्त को रसिक शिरोमणि किशोरमूर्ति की श्रीकृष्ण की भक्ति मे लगाना, जिसमे एक क्षण की बाधा भी न होने पाये और यदि उनसे विरह हो, तो उसमें इतनी तडपन हो, इतना व्यग्रता और छटपटाहट हो कि ससार के कार्यो से चिन्त हटकर उसी व्याकुलता की अन्यतम दशा दृष्टिगोचर हो।

गोपियो को कई नामों से अभिहित किया गया है और इनकी तुलना कई वस्तुओं से की गयी है प्रत्येक बार एक से बढकर एक अलग–थलग अलड्कारो से इन्हे अलड्कृत किया गया। एक अन्य स्थल पर यह प्रेम की ध्वजा भी मानी गयी है। सस्कृत साहित्य का एक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ श्रीमद्भागवतपुराण है जिसमें राधा–कृष्ण, गोपी–कृष्ण, आदि की सुन्दर विवेचना प्रस्तुत की गयी हैं। यह ग्रन्थ इनकी भावनाओ को और अधिक उजागर करता है।

गोपियो ने अपने लिए जिस पथ का चयन किया था यह पथ सुलभ नहीं था, अपितु इस श्रृखला की बेडी जो उनके अपने पैरों में पडी थी, वह पिता माता पुत्र समाज आदि की थी जिसे निकल पाना बहुत ही दुर्लभ था परन्तु उन्होंने इस दुर्गभ स्थल को भी अपने लिए सहज और सरल बना लिया। अपनी एकाग्रता, अपने पवित्र प्रेम के माध्यम से ही तो उन्हें रास्ता सूझा, और प्रत्येक पल वह उस रास्ते पर आगे बढती ही गयीं। क्रमश आगे बढती हुई कमी को भी पलटकर उसने पीछे नही देखा और उनके इस प्रेम के वशीभूत होकर ही कृष्ण भी उनकी आराधना करने लगते हैं–

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां, स्वसाधुकृत्यं विवुधायुषापि वः।

या मामजन् बुर्जरगेहं–श्रृंखलाः, संदृश्चय तद् व. प्रतियातु साधुना।।[1]

---

1. प० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय. पृष्ट ६३४.
(श्रीमदभागवतपुराण का श्लोक १०/३२/२२)

उपर्युक्त पद मे श्रीकृष्ण ने यह स्वीकार किया ह कि सच तुम गोपियो न घर गृहस्थी की कठिन कडी को तोडकर मेरे लिये सब कुछ किया, तुम्हारा मर प्रति जो भाव है वह कही भी दोषयुक्त नहीं दिखायी देता हैं। स्वार्थपरता तो तुम गोपियो म मानो जन्म से ही न रही है। किसी भी कीमत पर मै तुम लोगो का उपकार नही भूल सकता हूँ। अत तुमसे निवेदन है कि तुम ही लोग इस उपकार का बदला चुकाने का कोई आसान हल बताओ।

गोपी–भाव आनन्दयुक्त भाव है। इस भाव में पहुँचकर व्यक्ति अपने आपको भी भूल जाता है। क्योकि वह अपनी साधना द्वारा उस स्थल पर पहुँचना चाहता है जहॉ उसे पहुँचना है। चिन्तन और भक्ति के पश्चात् जब साधक अपने शरीर का त्याग कर साधना मे तल्लीन होता है तब कही जाकर वह भाव गोपी भाव के नाम से अभिहित किया जाता है।

कृष्ण के उन उद्‌गारो को कैसे भूला जा सकता है जो उन्होंने अपनी सखा उद्धव को गोपियो का सन्देश जानने के लिए ब्रज भेजते समय भरे गले से कहा था, और गोपियों की उच्चभावना का परिचय उद्धव जी को उन्होने दिया। 'श्रीकृष्ण के उद्‌गार थे– गोपियॉ मुझे ही प्रेम करती है उन्होंने अपना सर्वस्व मुझे समर्पित किया है। मै ही इनका सब कुछ हूँ– प्रिय, प्रियतम पालक आदि। मेरे विरह ये विल्कुल दिम्भ्रमित हो जाती हैं।[1] जब मैं इनसे दूर रहता हूँ तब ये मूर्च्छित हो जाती है। भूमि आसूँओ से भीग जाती है। मेरे वापस आने का सन्देश पाकर ही इनके हृदय को कुछ राहत मिलती है। कृष्ण का कथन है कि मै और गोपी कोई दो नही वरन् हमारी आत्मा एक हो गयी हैं, हम एक ही है। राधा को तो कृष्ण का वियोग तो दूर, केवल सखी से श्रीकृष्ण के कल जाने की सूचना पाकर ऑसूओं की झडी लग जाती है।

कृष्णस्यास्ति गतौ मतिः परदिने श्रुल्वैव संख्या· क्वचित्
सास्र नेत्रयुग वहत्यविरतं श्रीराधिका सर्वदा।
कुर्वाणनुनयं मुरारिचरणौ धृत्वा प्रियौ प्रेमत·
कृष्ण वारयतीति साश्रुनयना माम्पातु रागानुगा।।[2]

---

1. वृन्दावनपरित्यागो गोविन्दस्य ने विद्यते
   अन्यत्र यद्वपुस्तत्तु कृत्रिमतन्त्र सशय ।।– पद्म–पुराण–५/७७/६१
2. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ४६ ।

उद्वव जी भी गोपियां के प्रेम से प्रभावित होकर सोचते है कि उन गोपिया की आराधना नही की जा सकती क्योंकि इन्होने इन तमाम कठिन बन्धनों से छुटकारा पा लिया है और अपने चरणाबिन्द कृष्ण की आराधना में तल्लीन है तो इनकी क्या उपासना की जाय–

आसामहो चरणरेणु जुषायहस्याम्
वृन्दावने किमपि गुल्मलतोषधीनाम्
या दुस्त्यज्ञ स्वजनमायं पथ च हित्वा
भेजे मुकुन्दपदवी श्रुतिमिवि मृग्याम्।।[1]

उपुर्यक्त पद का भाव यह है कि गोपियॉ भले ही प्रेम मे अपने आपको विस्मृत कर दे परन्तु इस तथ्य से भलीभॉति परिचित है कि हमारे हर क्रिया–कलाप, भावना, विचार आदि सब कुछ भाव श्रीकृष्ण से जुडे है। अगर गोपियॉ प्रेम करती है तो उस प्रेम का जो बिन्दु आधार है, वह कृष्ण ही है। उनकी अभिलाषा की पूँजी कृष्ण ही हैं। उनके प्रेम का आलम्बन कृष्ण है। वह सब कुछ कृष्ण से जुडा मानती हैं, उनसे अलग हटकर उनके लिए इस संसार में कुछ नहीं है। वे यहॉ तक कि अपने प्रेम को भी सामान्य मानव शरीर का प्रेम नहीं मानती, अपितु यह तो ईश्वरीय प्रेम है। गोपियों ने स्वयं स्वीकार किया था–

न खलु गोपिका–नन्दनों भवानखिलदेहिनामन्तरात्मद्दक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये, साधि उदेयिवान् सात्वतां कुले।।[2]

उपर्युक्त इस कथन में गोपियो ने यह माना है कि तुम यशोदा के नन्द ही नही हो वरन् तुम पर तो सबका समान अधिकार है। यह अधिकार भी अन्तरात्मा का है। आपने जिस कुल में जन्म लिया है उसका मतलब ही हैं दूसरों का उद्वार करना।

गोपियॉ कृष्ण के वाह्य रूप की अपेक्षा आन्तरिक हृदय से अधिक जुडी हुई है। वह कृष्ण संसार के दुःख को दूर करेगे, विषमता आदि का नाश होगा, ऐसा इनका विश्वास है।

---

1. प० बलदेव उपाध्याय, भगवत सम्प्रदाय, पृष्ठ ६३५
2. पं० बलदेव उपाध्याय; भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ ६३६ (नारदभक्तिसूत्र २२–२३)।

नारद जी यह मानकर चलते हैं कि प्रेम का सच्चा रूप तो वही है जो अपने प्रिय के सुख मे ही अपने आपको प्रसन्न माने और दु:ख में दु:खी रहे,। यही सच्चे प्रेम की पहचान हैं।[1] जहॉ काम–वासना आदि भाव अधिक उजागर होगे वहा इस प्रेम का कोई महत्व नही होगा। हर व्यक्ति के जीने का कोई न कोई लक्ष्य और उद्देश्य, अवश्य होता हैं। गोपियो का एक ही उद्देश्य मानो रहा हो– अपने क्रिया–कलापो, आचार–व्यवहार से कृष्ण को अपनी ओर आकृष्ट करना, और प्रेम मे उन्हें सब कुछ मिल जाता था।[2] स्वार्थ की भावना इनमे लेशमात्र न थी। वासना और काम को ये नीच दृष्टि से देखा करती थीं। हमारी जो इन्द्रियॉ हैं, उनकी अपनी कुछ इच्छाये होती हैं। उसी मे काम–वासना नामक भाव का दर्शन भी होता रहता है। इन द्रन्द्रियो को हमे अपने वश मे कर लेना चाहिए। गोपियो ने भी कुछ ऐसा ही किया था वे कृष्ण को सर्वदा प्रसन्न रखती थी। उन्ही के सुख में अपने को सुखी मानती थी और उनकी इस प्रसन्नता को ही हम प्रेम के नाम से अभिहित कर सकते है। इन्हे स्वय के सुख–दु.ख की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं थी। कृष्ण के लिए ही इनके सारे सुख–दु·ख थे। ससार का क्या धर्म हैं, वेद में क्या चर्चा है इसकी ओर इनका ध्यान कभी नही जाता है। लोक–लज्जा संकोच आदि के लिए इनके हृदय में कोई स्थान नहीं रह जाता। इन सबको त्यागकर ये पूर्णरूपेण अपने प्रिय पर न्यौछावर है और उन्हें सर्वतोभावेन सुख पहुॅचाना चाहती है।[3] **गोपी भाव के चार परिचायक गुण माने गये हैं–**

१. समग्र स्वत्व तथा सम्पत्ति को कृष्ण के लिए समर्पित करना।

२. क्षणिक विस्मृति मे भी नितान्त व्याकुलता।

३ शिरोमणि के माहात्म्य एवं यश की गरिमा का ज्ञान।

४. अपने प्रिय के सुख में ही अपने को सुखी मानना।

---

1. काशी हिन्दू वि० वि० अप्रकाशित हिन्दी साहित्य का शोध प्रबन्ध– "श्रीराधा का चारित्रिक विकास" पष्ठ–१७
2. वही–पृष्ठ–१८ से उद्धृत।
3. वही–पृष्ठ–१८ से उद्धृत।

इन चारो गुणो का जहा समन्वय दिखायी पडता है वहा गोपीभाव माना जाता है। अष्टछाप के मान्य कवि परमानन्दास जी की यह स्तुति यथार्थ प्रतीत होती है–

ये हरिरस ओपी–गोपी सब तिय ते न्यारी
कमल–नयन गोविन्दचन्द्र की प्रान प्यारी
निरमत्सर जे सत तिनहि चूडामनिगोपी
निर्मल प्रेम–प्रवाह सकल मरजादा लोपी
जे ऐसे मरजाद मेटि मोहनगुन गावैं
क्यो नहि परमानन्द प्रेम मगती सुख पावैं।।[1]

गोपीभाव साधना के एक उत्कृष्ण कोटि का नाम है। वह वाह्य–आलम्बन पर आश्रित न होकर अन्तर्भाव पर अवलम्बित है। राधा–कृष्ण, प्रेम के मध्य गोपियों ने अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अगर गोपियॉ न होती तो इनका यह प्रेम शायद अधूरा ही माना जाता। इन राधा–कृष्ण के प्रेम की पूर्णता प्रदान करने वाली गोपियों ही हैं। इनकी सभी लीलाओं में गोपियो ने भाग लिया। राधा–कृष्ण की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है परन्तु गोपियों के अभाव मे वे कुछ भी नही कर पाती। **राधा और गोपियों में कोई भेद नहीं है। सिर्फ भेद इतना है कि राधा एक मात्र प्रेमिका हैं जबकि गोपी प्रेमिका के साथ–साथ भक्त भी हैं।**[2]

चैतन्य चरितामृत मे राधा तथा गोपियों के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में उल्लेख इस प्रकार द्रष्टव्य है– "श्रीराधा प्रेम की कल्पलता है तथा साखियाँ उस लता के पल्लव, पुष्प तथा पत्ते है। इन गोपियो का मुख्य ध्येय श्रीकृष्ण के साथ प्रेम क्रीड़ा की भावना नही हैं बल्कि राधा–कृष्ण के परस्पर आनन्द केलि का सम्पादन ही उनके जीवन का लक्ष्य है। कान्ताभावमयी उनकी लीला, कामक्रीडा नहीं है। उनका एकमात्र उद्देश्य श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करना ही है। अतएव महर्षि नारद ने श्रीकृष्ण के चरणारबिन्द में अपने समस्त आचार व्यवहार एवं धर्म–कर्म के प्रति पूर्ण समर्पण तथा उनके विरह में परम व्याकुलता को गोपीभाव का आदर्श रूप माना है।"[3]

---

1. प० बलदेव उपाध्याय, "भागवत सम्प्रदाय" पृष्ठ ६३६–६४० से उद्धृत।
2. काशी हिन्दी वि० वि०, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, "श्रीराधा का चारित्रिक विकास", पृष्ठ सं० १६ से उद्धृत।
3. डा० शैलेष मोहन झा, ब्रजबेली साहित्य, पृष्ट २०० से उद्धृत।

गोपीभाव ऐसा भाव है, जिसमे आकर भक्त की क्रियाए ही बदल जाती है। वह एक रूप मे नही रहता वरन हर क्षण अलग–अलग ढग से और नये–नय तरीक स अपने आराध्य की सेवा, पूजा करता है। उनके आराध्य मे जो भाव जिस क्षण दृष्टिगत होता है भक्त भी वही भाव अपने आप मे लाता रहता है। जैसे यदि राधा कृष्ण काम वासना मे लीन हो तो भक्त उस क्षण अपने को उसी के अनुरूप ढाल लेता है और स्वय को सुखी रखने का प्रयत्न करता है। इस भाव को निम्न पद में सरलता से देखा जा सकता हैं–

श्रीमदन–मोहन सुन्दरता पुञ्ज

श्रीराधा–सग राजत निकुञ्ज।

गावे सुर–गन दम्पति विलास

तहॅ सदा रहे मन सूरदास।।[1]

गोपी–भाव तक पहुॅचकर भक्त सचमुच ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है और सिद्धि आनन्द और सुख प्रदान करने वाली है। अनेक काल तक वह भक्त अपने आराध्य की साधना मे ही लीन रहता है। भक्त का एक मात्र क्षेत्र यही रह जाता है और इसमे भक्त को सफलता मिलती है, तब वह गोपी–भाव तक पहुॅच पाता है।[2]

गोपी–भाव प्राप्त करना एक अत्यन्त ही दुर्लभ कार्य है और उसकी प्राप्ति के अनेकशः साधन बताये गये है। उसमें जो सुन्दर और सुलभ साधन बताया गया है वह है वृन्दावन में सदैव वास करना,[3] इस स्थल पर रहने मात्र से आन्तरिक प्रसन्नता रहती है। और जिसे अपने भाव तक पहुॅचने की सफलता मिल जाये, उसका क्या कहना। परमानन्द दास जी ने अपने एक पद के माध्यम से इस तथ्य को सत्य घटित माना है–

1. डा० नन्द दुलारे बाजपेयी, सूरसागर, प्रथम भाग, पृष्ठ १०६ से उद्धृत।
2. काशी हिन्दू वि० वि०, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, "श्रीराधा का चारित्रिक विकास", पृष्ठ स० २० से उद्धृत।
3. वृन्दावनं परित्यज्य, पादमेक न गच्छति।
वृन्दावन परित्यज्य क्वचिन्नैव सगच्छति।। –यामलवचनम्–१०

लगे जो स्त्री वृन्दावन रग

देह अभिमान सबैमिटि जैहै, अरू विषयन के सग

सखी भाव सहज होय, सजनी पुरूष भाव होय भग

श्रीराधावर सेवत सुमिरत, उपजत लहर तरग

मन को मैल सबै छुटि जैहैं, मनसा होय अपग

परमानन्द स्वामी गुन गावत मिटि गये कोटि अनंग।।[1]

गोपी भाव का तात्पर्य श्रीकृष्ण का गोपियों एव उसमें भी सर्वप्रमुख राधा विषयक प्रेम का चरमोत्कर्ष की स्थिति होना। प्रेम की स्थिति प्राणि मात्र अणु परिमाण में पार्षदादि में मध्यम परिणाम में श्रीगोपाङ्गनाओ मे महत् परिणाम मे है और श्रीराधारानी में परम महत् परिमाण परिमित है। पूर्णतम माधुर्य का प्रकाश वहीं है।[2]

जैसे सूर्य के समक्ष चन्द्रक्षतादि फीके पड जाते है, दीखते ही नहीं, वैसे ही महामाधुर्य के सामने समस्त ऐश्वर्य प्रकट ही नहीं होते। **जैसे जल और तरङ्ग का अखण्ड़ सम्बन्ध है, वैसे ही श्रीकृष्ण एवं गोपङ्गनाओं का। गोपाङ्गनाएं तरंग हैं तो श्रीकृष्ण** जल। श्रीराधा रानी तो श्रीकृष्ण रूपी जल के तरंग के भी अन्तरंग हैं वे जल में माधुर्यस्थानीया है।[3]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि समस्त भारतीय वाङ्मय मे श्रीकृष्ण–गोपङ्गनाओं एवं सर्वप्रमुख राधा का जल–तरङ्ग एवं तन्निहित माधुर्य की भॉति अखण्ड सम्बन्ध है जो गोपीभाव की चरम परिणति माना जा सकता है। अब गोपीभाव विषयक राधा का स्वरूप भिन्न–२ दृष्टियो से अध्ययन करेगे–

1. गोवर्धननाथ शुक्ल, परमानन्द सागर, पृष्ठ २६४ से उद्धृत।
2 श्री हरिहरानन्द जी सरस्वती (करपात्री जी) महाराज के प्रवचन माला–श्रीराधासुधा के पृष्ठ १५६ से उद्धृत (राधा कृष्ण धानु का प्रकाशन प्रथम सस्करण १९८६)।
3 वही। (श्रीराधाकृष्ण धानुका प्रकाशन, कलकत्ता प्रथम सस्करण–१९८६)।

ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णित राधा का स्वरूपः–

ऐतिहासिक दृष्टि से राधा का विकास तीन चरणों (स्तरों) मे समझना समीचीन होगा। कालक्रम की दृष्टि से तो वेद, वैदिक साहित्य एव पुराणो का क्रमिक विकास हुआ है लेकिन राधा का स्वरूप वर्णन की दृष्टि से प्राचीनतम उल्लेख पुराणो– (विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, पद्मपुराण, एव ब्रह्मवैवर्तपुराण) मे तत्पश्चात् वैदिक साहित्य मे तथा प्राकृत एव लौकिक सस्कृत साहित्य मे क्रमिक विकास के रूप मे हुआ है।

वैदिक साहित्य में राधाः–

वेद में राधा तत्त्वः–

वेद मे राधस् शब्द का विपुल प्रयोग हम पाते हैं। यह शब्द नाना विभक्तियो एव अर्थो में प्रयुक्त किया गया उपलब्ध होता है। साहित्यिक राधा के अर्थ मे कदापि नहीं। वेद मे राधस् शब्द भी राधा् धातु से ही निष्पन्न है जो धीरे–धीरे देवों की प्रधानता क्रम में इन्द्र, विष्णु के साथ सामञ्जस्य स्थापित करके राधापति कृष्ण की ओर उन्मुख होकर स्वाभाविक विकास का परिचायक जान पडता है। वेद में राधस् के विभिन्न विभक्ति में प्रयोग द्रष्टव्य हैं–

१ यस्य ब्रह्मवर्धन मस्य सोमो यस्येद राधः स जनास इन्द्रः।[1]

२. सखाय आनिषीदत सविता स्तोम्यो नु नः दाता राधांसि शुम्भति।[2]

अब इस वैदिक शब्द, **राधस्** का अर्थ विचारणीय है– निघण्टु मे राध शब्द धन नाम में पठित है।[3] इस प्रकार 'राधा' शब्द का प्रयोग दो मन्त्रों में किया गया उपलब्ध होता है–

१ स्तोत्र राधाना पते गिर्वाहो वीर यस्य ते विभूतिरस्तु सुन्तता।[4]

---

1. ऋग्वेद, २/१२/१४
2. ऋग्वेद, १/२२/१८
3. निघण्टु, २/१०.
4. यह मन्त्र ऋग्वेद–१, ३०/५, सामवेद तथा अथर्ववेद–२०/४५/२.

यह मन्त्र ऋग्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद तीनो वेदो मे समान रूप से मिलता है।

२ इद ह्मन्वोजसा सुत राधाना पते पिबा त्वस्य गिर्वण ।[1]

यह मत्र ऋग्वेद तथा सामवेद मे प्रयुक्त है और दोनो जगह **'राधानां पतेः' इन्द्र के विशेषण** रूप में प्रयुक्त है।

मेरी दृष्टि से राध. तथा राधा दोनो की उत्पत्ति **राध् वृद्धौ धातु से है जिसमें आ उपसर्ग जोड़ने पर आराधयति धातु पद बनता है** फलत इन दोनों शब्दों का समान अर्थ है– आराधना, अर्चना या अर्चा।

साहित्यिक राधा इस प्रकार वैदिक राधः या राधा का व्यतिकरण है, राधा पवित्र तथा पूर्णतया आराधना की प्रतीक है। आराधना की उदात्तता उसे प्रेमपूर्ण होने में है। इस प्रकार राधा शब्द के साथ प्रेम के प्राचुर्य का, भक्ति की विपुलता का, भाव की महनीयता का सम्बन्ध कालान्तर में जुटता गया और धीरे–धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप मे साहित्य और धर्म मे प्रतिष्ठित हो गयी।

राधनांपतेः मन्त्रो मे प्रयुक्त **इन्द्र** के अर्थ में हैं, कालान्तर में जब इन्द्र का प्रधान्य विष्णु के ऊपर आया और कृष्ण का विष्णु के साथ सामञ्जस्य स्थापित किया गया तब कृष्ण का राधापति होना स्वाभविक है, ऐसी मेरी धारणा और मेरा विचार है।

वैदिक साहित्य में राधा

वैदिक साहित्य में राधा का उल्लेख कहॉ है? इसकी खोज प्राचीन लेखको ने की है। वैदिक साहित्य उपनिषदों में दो उपनिषद् राधा से सम्बद्व है **प्रथम–राधोपनिषद् तथा द्वितीय– राधिकातापनीयो–उपनिषद्।**

---

1. ऋग्वेद, ३ ५१ १० तथा सामवेद के स्थलो पर सूत्र स० १६५, ७३७.

इन उपनिषदो का आविर्भाव काल अर्वाचीन प्रतीत होता है। यदि य इम काल से पूर्ववर्ती होते ता गोडीय गाम्वामियो के ग्रन्थों के द्वारा इनका सकेत तथा उद्वरण अवश्य ही कही न कही उपलब्ध हांता। फलत इनकी अर्वाचीनता नितान्त स्पष्ट है।

(१) राधोपनिषद्– गद्य मे रचित राधा की महिमा का प्रतिपादक है। इसमे राधा कृष्ण की परमान्तरगभूता ह्लादिनी शक्ति बतायी गयी है। **राधा की व्युत्पत्ति राध् धातु से है– 'कृष्णेन आराधाते' इति राधा। 'कृष्णं समाराध्यति सदा' इति राधिका गान्धर्विति व्यपदिश्यते।**

तात्पर्य है कि **कृष्ण के द्वारा जो आराधित है वही राधा है तथा कृष्ण की सदा आराधना करने वाली** राधिका है गान्धर्वी शब्द के द्वारा उसी (राधा) का निर्देश किया गया है कि 'गान्धर्वी नाम गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् मे उपलब्ध होता है। इसमे कहा गया है– "ब्रज की गोपाड्गनाये, श्रीकृष्ण की समस्त महिषियॉ तथा वैकुण्ठ की अधीश्वरी श्रीलक्ष्मी जी इन्ही श्रीराधा की काव्यव्यूह (अंशरूपा) हैं। ये राधा तथा रससागर श्रीकृष्ण एक होते हुए भी शरीर से क्रीडा के लिए दो हो गये हैं। राधिका की अवहेलना करके जो श्रीकृष्ण की आराधना करना चाहता है वह महामूर्ख नहीं मूढतम है।[1]

(२) अथर्ववेदीय **"राधिकातापनीय" उपनिषद्** में अत्यंत अर्वाचीन एव परिमाण मे छोटा ही हैं। इसमे भी राधिका की प्रशस्त स्तुति है और वही सर्वश्रेष्ठ बतलायी गयी है। श्रीकृष्ण का उत्कृष्ट प्रेम तथा सातिशय आदर के निमित्त है। राधा की प्रशंसा में इस उपनिषद् का तो यहॉ तक कहना है कि विश्वपालक श्रीकृष्णचन्द्र एकान्त में अत्यन्त प्रेमार्द्र होकर जिनकी पद–धूलि अपने मस्तक पर धारण करते है, जिनके प्रेम में निमग्न होने पर उनके हाथ से वशी भी गिर जाती है एवं अपनी बिखरी अलको का भी उन्हें स्मरण नहीं रहता तथा वे क्रीतदास के द्वारा जिनके वश मे सदा रहते हैं उन राधिका को हम नमस्कार करते हैं।[2]

---

1. गोपालोत्तरतापिनी उपनिंषद् से सम्बद्व 'राधामहिमा प्रकरण पृष्ठ–३६ से उद्धुत।
2. यस्या रेणु यादयोर्विश्वभर्त्ता, धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेम युक्त ।
   स्रस्तवेणु कवरीं न स्मरेद्य, तल्लीन. कृष्ण· क्रीतवता नमाम·।।
   –'राधिकातापनीय' उपनिषद्–श्लोक स० ७

महाभारत के प्रख्यात टीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धर ने वैदिक मन्त्रों मे कृष्णचरित्र का अनुसन्धान किया। मन्त्रभागवत नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के नाना लीलाओ तथा चरित्रो के प्रदर्शक मन्त्र ऋग्वेद से गृहीत हैं।

ध्यातव्य है कि वैदिक साहित्य मे राधाकृष्ण का अस्तित्व मिलता है। **देवकीनन्दन कृष्ण का प्रथम निश्चित निर्देश छान्दोय उपनिषद् में मिलता है–[1] घोर अड्गिरस** ऋषि ने देवकीपुत्र कृष्ण को उपदेश दिया कि जब मनुष्य का अन्तसमय आये तो उसे इन तीन यजुर्मन्त्रों का ध्यान करना चाहिए– (१) त्वम्अक्षितमसि–तुम अविनश्वर हो, (२) त्वम् अच्युतमसि–तुम अच्युत हो (३) त्वं प्राणसंशितमसि–तुम सूक्ष्मप्राण हो। इस उपदेशों को पाकर कृष्ण पिपासा हीन हो गये अर्थात् उनकी तृष्णा या पिपासा शान्त हो गयी।

पुराणों में राधा

पुराणों में राधाचरित्र की छानबीन करने में बड़ी विप्रतिपत्ति उपस्थिति होती है। पुराणों के वैज्ञानिक संस्करणों के अभाव में यह कहना बहुत ही कठिन है कि अमुक अध्याय मूलग्रन्थ का है अथवा प्रक्षिप्त अंश है। फिर भी पुराणों में राधा का चरित्र श्रीकृष्ण के चरित्र के साथ–साथ वर्णित हैं। प्रायः आलोचक पौराणिक वर्णन को काल्पनिक बताकर उसकी उपेक्षा ही करते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं है सर्वत्र ही प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं।

राधा का नाम रहित प्राचीनतम् स्वरूप का वर्णन **श्रीमद्भागवतपुराण** एवं **विष्णु पुराण**' से प्राप्त होता है। जो ईसा पूर्व दूसरी एवं तीसरी शदी का है। सबसे आश्चर्य की बात है कि जिस श्रीमद्भागवत् में राधा–कृष्ण की ललित तथा मधुर लीलाएं विस्तार के साथ वर्णित हैं। उसमें राधा का नाम स्पष्टतया अंकित नहीं है। भागवत् पुराण में रास लीला के प्रसंग में वर्णन आता है कि श्रीकृष्ण रासमण्डल में से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर्हित (छिप) जाते हैं। उसके सौभाग्य की प्रशंसा करती हुई गोपियॉ कह उठती हैं–

---

1. तद्वैतद् घोर अड्गिरस' कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वा उवाच अपिपास एव स बभूव।
सोऽन्तवेलायामेतत् तयं प्रतिपद्येताक्षितमसि अच्युतमसि प्राणसंशितमसीति।।
–छान्दोग्य उपनिषद् ३/१७/६.

अनया–राधितो नून भगवान हरिरीश्वरः ।

यन्नो विहाय गोविन्द प्रीता यामनयद्रहः ।।[1]

इस रमणी के द्वारा अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्ण आराधित हुए है, क्योकि गोविन्द हमको छोडकर प्रसन्न होकर उसे एकान्त मे ले गये है। धन्या गोपी की प्रशसा मे उच्चरित इस पद्य मे राधा का नाम झीने चादर से ढके हुए किसी गूढ बहुमूल्य रत्न की भॉति स्पष्ट झलकता है।

व्यासनन्दन श्री शुकदेव जी के मत मे यह श्लोक निकुज लीला का संकेतक है जो नितान्त गोप्य, गुप्त, तथा रहस्यभूता है। इस लीला मे राधा ही एकमात्र श्री कृष्ण की सहचरी रहती हैं।[2]

श्रीमद्भागवत् में राधा नाम प्रतिपादित है परन्तु वह भी अस्पष्ट रूप से ही है। द्वितीय स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में शुकदेव जी ने कथा आरम्भ करने से पहले दिव्य स्तुति मे राधा का अस्पष्ट उल्लेख किया है।[3]– इस प्रकार श्रीमद्भागवत् मे प्रत्यक्ष रूप से राधा का नामोल्लेख न मिलने पर भी अप्रत्यक्ष उल्लेख का निषेध नही किया जा सकता है।

विष्णु पुराण रचना दृष्टि से प्राचीनतम् पुराणो मे अन्यतम् है क्योकि यह तमिलभाषा काव्य 'मणिमेखलै' से परिचय रखता है। यह श्लोक परिमाण की दृष्टि से भागवत्पुराण का एक तिहाई मात्र है। विष्णु पुराण के पञ्चम खण्ड मे श्रीकृष्ण का वर्णन ३८ अध्यायो में संक्षेप मे है। इसी खण्ड के १३वे अध्याय मे रास–लीला का वर्णन है। विष्णु पुराण मे तो एक प्रधान गोपी का अस्पष्ट निर्देश हुआ है।[4] "यही बैठकर उन्होंने निश्चय ही किसी बडभागिनी का फूलों से श्रृड्गार किया है। अवश्य ही उसने अपने पूर्वजन्म में

---

1 श्रीमद् भागवत् पुराण, १०/३०/२४

2. प० बलदेव उपाध्याय कृत भारतीय वाड्गमय मे श्री राधा, पृष्ठ।। से उदधृत। (प्रथम सस्करण–१९६२ विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना)

3 नमोनमोऽस्त्वृषभाय सात्वता विदूर काष्ठाय मुहु कुयोगिनाम्।
निरस्त साम्यतिशयेन राधसा, स्वाधामनि ब्रह्मणिरस्यते नम ।।– भागवत्–२/४/१४
(यहॉ राधस् शब्द ऐश्वर्य का वाचक जो अप्रत्यक्ष रूप से राधा का सूचक है।)

4. अत्रोपविश्य वै तेन काचित् पुष्पैरलड्कृता।
अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितस्तया।।– विष्णुपुराण–५/१३/३५

सर्वात्मा श्रीविष्णु भगवान की उपासना की होगी। इस प्रकार श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण के रास वर्णन मे भाव तथा भगी की दृष्टि मे बहुत कुछ अनुरूपता है। अन्तर यह है कि भागवत् का पञ्चाध्यायी रास वर्णन विस्तृत, जबकि विष्णु पुराण का एकाध्यायी रास वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त है।

उपर्युक्त पुराण वर्णन के अतिरिक्त पद्मपुराण एव ब्रह्मवैवर्त पुराण का वर्णन बहुत बाद का अर्थात् अर्वाचीन है। उसमे पुराण कालीन राधा की विशिष्टताओ से हटकर वर्णन है।

पद्मपुराण के उपलब्ध वर्तमान रूप से स्पष्ट है कि पुराणो मे यह मुख्य वैष्णव पुराण है। राधा तत्त्व के उन्मीलन, वर्णन मे जागरूक है। पद्मपुराण मे राधा का उल्लेख हुआ है–

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्या कुण्ड प्रिय तथा।
सर्वगोपीषु सैवेका विष्णोरत्यन्त बल्लभा।।[1]

इस पुराण मे राधा का नाम, यश, स्वरूप तथा व्रत का वर्णन इतनी अधिकता से आज उपलब्ध हो रहा है जिससे विद्वानों को इन विषयों की प्राचीनता मे सन्देह है। राधातत्त्व का विकसित रूप हमे उस पुराण में उपलब्ध होता हैं। राधा विषयक उल्लेखों से तो यह पुराण भरा पडा है। इस पुराण के ब्रह्मखण्ड के सप्तम अध्याय में राधाष्टमी के व्रत का पूर्ण विधान है। राधा के जन्म के विषय में बताया गया है कि भादों मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को राजा वृषभानु की यज्ञ भूमि मे राधा का प्राकट्य हुआ। यज्ञ के लिए जब राजा वृषभानु भूमि का शोधन कर रहे थे तब उन्हें राधा जी मिली।[2]

इसमे माणिक्य के सिहांसन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ललित एवं साहित्यिक विवरण है। इसी क्रम में राधा का भी रोचक विवरण प्राप्त ही कि–"**राधा आद्यप्रकृति तथा कृष्ण की बल्लभा हैं। दुर्गा आदि त्रियुगमयी देवियाँ उसकी कला के करोड़वें अंश को धारण करती हैं और उनके चरणों की धूलि के स्पर्शमात्र से करोड़ विष्णु उत्पन्न होते हैं।**"[3]

---

1. पद्मपुराण से सम्बद्ध श्लोक, प० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय वाङ्गमय मे श्रीराधा", पृष्ठ १६ से उद्धृत (विहार रा० भाषापरिषद पटना–१६६२ से प्रका०)
2. पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड सप्तम् अध्याय, श्लोक ३६–४० से उद्धृत।
3. तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा।
   तत्कलाकोटिकोट्यशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः।।
   तस्या अङ्घ्रिरजः स्पर्शात् कोटिविष्णुःप्रजायते।।
   –पद्पुराणः पातालखण्ड, अध्याय ६६, श्लोक स० ११८

पद्मपुराण मे ही राधा विद्या तथा अविद्यारूपिणी, परा, त्रयी, शक्तिरूपा, मायारूपा, चिन्मयी, देवत्रय की उत्पादिका तथा वृन्दाबनेश्वरी वतायी गयी है।[1] पद्मपुराण की पूर्ण मान्यता है कि राधा के समान ने कोई स्त्री है और कृष्ण के समान न कोई पुरूष है।[2]

श्रीदेवीभागवत् पुराण मे भी राधा की उपासना तथा पूजा पद्धति का विशेष विवरण मिलने से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उस युग मे राधा को श्रीकृष्ण का साहचर्य प्राप्त हो गया था। नवम स्कन्ध के तृतीय अध्याय मे महाविष्णु की उत्पत्ति चिन्मयी राधा से बतलायी गयी हैं। इसी नवम् स्कन्ध के ५० मे अध्याय मे राधा के मन्त्र का स्वरूप, जपविधि तथा फल का विवरण विशेष रूप से दिया गया है। राधा का मन्त्र है–

श्रीराधायै स्वाहा!

राधा, कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय है। वे व्यापक परमात्मा कृष्ण राधा के अधीन सर्वदा बने रहते है और उसके बिना वे क्षण भर भी नही रहते–

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं बिना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्त्तव्यं राधिकार्चनम्।।[3]
कृष्ण प्राणाध्किा देवी तदधीनो विधुर्यत.।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया विना न तिष्ठति।।[4]

विशेष ध्यान योग्य बात यह है कि राधा की पूजा विधि का सम्बन्ध सामवेद के साथ बतलाया गया है। इसमें भगवती राधा के दिव्य रूप की झॉकी शोभन रूप में दी गयी है– "भगवती राधा का रूप श्वेत चम्पक के समान हैं और उनका श्रीविग्रह असख्य चन्द्रमा के समान चमचमा रहा है। रत्नमय आभूषणो से विभूषित ये देवी सदा बारह वर्ष की अवस्था की प्रतीति होती है"[5] देवी भागवत् वस्तुतः शक्ति की उपासना तथा महिमा बताने वाला पुराण हैं।

---

1. पद्मपुराण, पातालखण्ड; अध्याय ७७; श्लोक स० १३, १४, १५, १६, १७,
2. न राधिकासमा नारी न कृष्णसदृश पुमान्।" श्लोक–५१ से उद्धृत।
3. श्रीदेवी भागवत् पुराण; ६/५०/१७ (नवम स्कन्ध, ५०वॉ अध्याय १७वॉ श्लोक)
4. वही, ६/५०/१८
5. प० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा" पृष्ठ १८ से उद्धृत। (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना–प्रथम संस्करण–१६६२.)

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के कृष्ण जन्म खण्ड नामक अन्तिम खण्ड मे, जो परिभाषा मे शेष अन्य खण्डो के सम्मिलित अध्यायों से भी बढकर है,[1] श्रीराधा तथा कृष्ण के चरित्र बडे ही रोचक ढग से वर्णित है। पन्द्रहवे अध्याय मे राधा के स्परूप का बडा चमत्कारी साहित्यिक विवरण प्रस्तुत किया गया हैं। **यहां राधा आदर्श नारी की प्रतिनिधि रूप में स्थापित की गयी है। साथ ही राधा के साथ कृष्ण का विधिवत्** विवाह वर्णित है।[2] २७वे अध्याय में राधा–कृष्ण सवाद का प्रसंग है जिसमें राधा के साथ अपने अविनाभाव सम्बन्ध को प्रकट करते समय पार्वती का वचन है–

> यथा क्षीरेषु धावल्य यथा बह्नौच दाहिका।
>
> भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव।।[3]

राधा के साथ माधव श्रीकृष्ण के अन्तर्हित होने की बात यहॉ उसी रूप में है जिस रूप मे भागवत् तथा विष्णु पुराण में वर्णित है।[4] संसार में जितनी शक्तियॉ हैं सावित्री, दुर्गा, पार्वती, त्रिपुरा, सती, अपर्णा गौरी आदि उनके सबके साथ राधा का ऐक्य स्थापित किया गया है, और यहॉ भी शक्ति और शक्तिमान का अभेद स्थिर किया गया है।[5]

राधा–उद्धव सवाद अनेक अध्यायों मे वर्णित हैं। इस सवाद में ऐसी अनेक बातें दृष्टिगोचर होती है जिनमे भक्ति के प्राचुर्य का महात्म्य, कीर्तन विशेष रूप से वर्तमान है। प्रेम की चर्चा करते–करते उद्धव बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ते है। और गोपियो उनका गला पकडकर रोती हैं और राधा उनके मुह में जल डालकर उन्हे उठाती हैं। ये सब वर्णन प्रेम के गौरव प्रदर्शन के निमित्त किये गये प्रतीत होते हैं। इसके १११वे अध्याय में राधा एवं कृष्ण की निरूक्ति दी गयी हैं–

एक व्युत्पत्ति के अनुसार– 'रा' शब्द विष्णु का तथा 'धा' शब्द धात्री का वाचक है। इस प्रकार राधा को विष्णु की जननी, ईश्वरी तथा मूल प्रकृति सिद्व किया गया है।[6] इस पुराण में कुछ प्रसंग तथा घटनाएं ऐसी है जो अन्य पुराणों में दृष्टिगोचर नहीं होती है यथा राधाकृष्ण विवाह प्रसंग। इस प्रकार इस युग में राधा की महिमा, अपने उत्कर्ष पर विद्यमान थी। पुराणो मे राधा वर्णन का यही संक्षिप्त रूप है। गौडीय वैष्णवों ने प्रसिद्व पुराणों मे से केवल पद्य पुराण तथा मत्स्य पुराण में ही राधा का उल्लेख माना है।

---

1. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का 'कृष्ण जन्म खण्ड' शेष अन्य खण्उ के सम्मिलित अध्याय सख्या १३१ से परिमाण मे अधिक है।
2. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण–अध्याय १५, श्लोक–१६६,
3. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, अध्याय २७, श्लोक २१२
4. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण–अध्याय २६, श्लोक–१२,
5. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण–अध्याय ६२, श्लोक–८६, ८७.
6. राशब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
   विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचक ।।
   धात्री माताहमेतेषा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
   तेन राधा समाख्याता हरिणाच पुरा बुधै.।।
   –ब्रह्मवैवर्त्तपुराण;८१११वॉं अध्याय, श्लोक– ५७ व ५८

गाथा सप्तशती की राधा

श्री कृष्ण की प्रेयसी कल्पना जगत् की सृष्टि न होकर मासल रूप मे अपना साहित्यिक आविर्भाव पाती है– हाल कृत गाथासप्तशती मे।

प्रथम शदी ईस्वी मे रचित गाथासप्तशती, प्राचीन युग के प्राकृत कवियों की कविता सग्रह है जो लोक साहित्य का प्रतिनिधि काव्यग्रन्थ है। सग्रहकर्त्ता सातवाहन राजा हाल माने गये हैं। यह गाथा सप्तशती श्रृंगार के भावो के प्रकटन मे अद्वितीय है।

राधा का सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख हाल सगृहीत गाथा सप्तशती मे उपलब्ध हैं–

मुहमारूएण त कह्न! गोरअ राहिआए अवणेन्तो।

एताणं वल्लकीणं अण्णाव वि गोरअ हरसि।।[1]

इस गाथा मे कोई कृष्ण से उनकी राधा के प्रति आसक्ति को लक्ष्य कर कह रही है इस प्रकार इसमें राधा का स्पष्ट उल्लेख ही नही प्रत्युत इसके प्रति कृष्ण की विशिष्ट आसक्ति तथा प्रेम का भी पूरा सकेत है।

राधा कृष्ण की श्रृंगारलीलाओं का उद्‌गम का वही युग था। **कृष्ण को ब्रज की आभीर बालाओं से विशेष प्रीति थी।** उनके साथ क्रीडा करते कभी अधाते नहीं थे। उन गोपियो मे एक प्रेयसी गोपी थी जिसका भागवत तथा विष्णुपुराण मे स्पष्ट संकेत है। वहीं प्रेयसी **राधा** नाम से मण्डित होकर आभीरों के प्राकृत साहित्य मे वर्णित हैं। आभीर शको (प्रथम शती ईस्वी में) के अधीन राजा हुए तथा सातवाहन राजा (द्वितीय या तृतीय शदी) के पतन मे सहयोग दिये थे।

श्रृंगारिक कविता के इस युग मे कृष्ण प्रेयसी का नामकरण ही नहीं, अपितु उसकी श्रृगारिक केलिक्रीडा का भी काव्य जगत् में आविर्भाव किया।[2]

विरह के दिन गिनते–२ हाथ पैर की उगलियॉ समाप्त हो जाने से असमर्थ मुग्धा रो रही है।

हत्थेसु अ पाससु अ अंगुलि–गणणाइ अइगआ दिहआ।

एणिहं उण केण गणिज्जउ न्ति भणिऊ रूअई मुद्धा।।[3]

---

1. गाह्यसप्तसई १/८६, सस्कृतानुवाद–
   त्व कृष्ण राधिकाया मुख्यमारूता गोरजोऽपनयन्
   आसमान्या सामपि गोपीना गौरव हरासि।।
   – मथुरानाथ शास्त्री कृत गाथासप्तशती–८२
2. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय भारतीय वाङ्मय मे श्री राधा, पृष्ठ –२१७–१८ (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,पटना प्रथम संस्करण १६६२) से उद्‌धृत।
3. हाल, गाथासप्तशती–४/७

२–धार्मिक दृष्टि से वर्णित राधा का स्वरूप

भारतीय वाङ्मय मे ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणो वेद तथा वैदिक साहित्य मे उपलब्ध राधा स्वरूप की समीक्षा के अनन्तर विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो मे परिलक्षित राधा तत्त्व को प्रस्तुत किया जा रहा है–

ज्योतिषतत्त्व के रूप में राधा

राधा के जीवन के इतने पहलू है कि कुछ विद्वानों और साहित्यकारो द्वारा इनका विश्लेषण कर पाना सम्भव नहीं है फिर भी इस दिशा में साहित्यकारों को ही अधिक सफलता मिली है। राधा की अवतारणा के विषय में विद्वानों और साहित्यकारों मे आपसी मतभेद है। क्योकि अपने–२ मतानुसार इन लोगों ने राधा–कृष्ण की कल्पना कर ली है।[1] हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो मे राधा का नाम नही मिलता है। यदि राधा की अवतारणा का थोडा–बहुत अकुर कही फूटा मिलता है तो वह शक्तिवाद के रूप में ही मिलता है।[2] प्राचीन परम्परा की विशेष मूर्ति राधा नाम की हो सकती है।

ज्योतिष तत्त्व के अन्तर्गत राधा के भाव को स्पष्ट किया गया है। कृष्ण सूर्य के प्रतिविम्ब माने जा सकते है तो गोपियां स्वाभाविक रूप से तारा ही होगी। कार्तिक पूर्णिमा के दिन राधा और सूर्य का मिलन होता है क्योंकि यह दिन विशाखा का अपना रहता है। 'विशाखा' राधा का पूर्व नाम था सूर्य और विशाखा का यह मधुर मिलन गुप्त मिलन माना जायेगा। सूर्य कृष्ण हैं, राधा विशाखा और तारें गोपियॉ मानी गयी है। इस प्रकार ज्योतिष तत्त्व[3] के रूप मे इसकी सुन्दर विवेचना की गयी है।

---

1. डा० शशिभूषण गुप्त, राधा का क्रम विकास, पृष्ठ ३ से उद्धृत।
2. डा० मुंशी राम शर्मा, भारतीय साधना और सूर साहित्य; पृष्ठ १६७
3. काशी हिन्दू वि० वि० अप्रकाशित शोध प्रबन्ध; "श्रीराधा का चारित्रिक विकास;" पृष्ठ–५२

योगतत्त्व के रूप में राधा

रास लीला को यौगिक रूप मे देखने वालो की दृष्टि मे राधा महाकुण्डली स्वरूप में प्रकट हुई है।[1] राधा के आस पास की इडा पिगला नाडियो को गोपी रूप मे स्वीकार किया गया है। निकुज चक्ररूपा है। कमलो से ढके उपबन के मध्य जब श्रीकृष्ण प्रवेश करते है तब राधा भी नही पहुँचती हैं और इनका मिलाप होता है। यह कुण्डली स्वरूप राधा सदैव अपने प्रियतमा के मस्तिष्क के आस–पास मडराती रहती है।

शिवरूप में राधातत्व

एकबार शिवजी के मन मे अजीब इच्छा उत्पन्न हुई,[2] जिसे उन्होने अपनी पत्नी पर प्रकट किया कि हम दोनो पृथ्वी पर चलें। यहाँ पर तुम पुरूष रूप धारण करो मैं स्त्री बन जाऊँ। पार्वती बोली कृष्ण रूप मेरा भद्रकाली का होगा। शिवजी अपने को पृथ्वी पर नौ रूपों मे प्रकट कर दिखाते है, इस प्रकार पृथ्वी पर पार्वती कृष्ण के रूप और शिव राधा के रूप मे अवतरित हुए। यही राधा शिव तत्त्व रूप में मानी गयी हैं।

शक्ति रूप में राधा

शक्ति के रूप में राधा की प्रतिष्ठा विक्रम की १३वी, १४वी शदी के अनन्तर १७वीं–१८वी शदी के ग्रन्थों में स्थापित की गयी है।[3] राधा इस विश्व की माता तथा कृष्ण इसके पिता हैं। माता रूप अधिक प्रभावशाली माना गया है। अत राधा का रूप अधिक उज्ज्वल है। राधा को शक्ति की अधिष्ठात्री माना गया है फलस्वरूप इसकी पूजा–अर्चना भी कृष्ण की तुलना मे अधिक की जाती है। राधा–कृष्ण का मिलन सही अर्थो मे शिव–पार्वती का मिलन है। राधा ज्योतिष तत्त्व, शक्तिरूप, में भी प्राचीन भारतीय बाङ्मय में दिखायी पडती है।[4]

---

1. काशी हिन्दू वि० वि० अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, श्रीराधा का चारित्रिक विकास, पृष्ठ–५२. से उद्धृत।
2. वही पृष्ठ ५३,
3. डा० शशिभूषण दास गुप्त, राधा का क्रम विकास, पृष्ठ १२, से उद्धृत।
4. वही काशी हिन्दू वि० वि० अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, श्रीराधा का चारित्रिक विकास, पृष्ठ–५२.

आलवार सम्प्रदाय में राधा

धर्म मे राधा विषयक छानबीन करते समय आलोचक का चित्त स्वभावतः तमिलनाडु के प्राचीन वैष्णव भक्तो आलवार की ओर आकृष्ट होता है। ये आलवार भक्त अपने हृदय की कोमल भक्ति भावना की अभिव्यञ्जना बडे सुन्दर ढग से अपनी तमिल भाषा की कविता मे की है। **आलवार शब्द का अर्थ है–[1] अध्यात्मज्ञान रूपी समुद्र में गहरा गोता लगाने वाला व्यक्ति। ये भगवान् नारायण तथा श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे।**

आलवारों द्वारा लिखित भगवत्स्तुतियो का विराट् सग्रह **"नालायिर प्रबन्धं"** (दिव्य प्रबन्ध) नाम से प्रख्यात है। यह तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध है। **आलवारों का समय पञ्चम शती से नवम् शती तक माना जाता है।** इनके गायनो मे श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन बडे विस्तार से किया गया है। आलवार विष्णुचित के प्रख्यात गीतिकाव्य–**तिरूप्पावै** (श्रीव्रतप्रबन्ध) का विषय भागवत् में वर्णित कृष्ण की बाललीला से सम्बद्व एक प्रख्यात कथा हैं।

तिरूप्पावै के पद्यों में एक विशिष्ट गोपी की ओर स्पष्ट सकेत है जो श्रीकृष्ण को अपने वश में कर उनके साथ रमण मे प्रवृत्त होती है। श्रीवैष्णव के सस्कृत ग्रन्थों मे विशिष्ट गोपी का नाम नीला देवी है और तमिल भाषा में उसका नाप्पिनै प्पिराट्टि नाम है। चार हजार गायन वाले दिव्य प्रबन्ध मे नीलादेवी का प्रसंग सैकड़ो स्थलों पर आता है। यही नीलादेवी अथवा नप्पिनै श्रीराधा की तमिल प्रतिनिधि है। आण्डाल के जीवन चरित्र के अध्ययन से स्पष्ट है कि वह दिव्यभावापन्न थीं। नप्पिनै को प्राप्त करने के लिए इन गायनों में श्रीकृष्ण को हम **'वृषवशीकरण'** का अनुष्ठान करते हुए पाते हैं।[2] यह प्रथा तमिलदेश में प्रचलित थी। इस अनुष्ठान के द्वारा नर की शूरता की परीक्षा की जाती थी। नीला देवी को प्राप्त करने के लिए श्रीकृष्ण को यह अनुष्ठान करना पडा था। ऐसा तिरूप्पावै में मिलता है। तिरूप्पावै की १६वीं गाथा में 'नीलादेवी' "कुसुमस्तवकालङ्कृत केशपाशाञ्चित नीलादेवी" कही गयी है। यह विष्णु पुराण के प्रख्यात श्लोक का अनुसरण करता है जिसे हमने राधा का निगूढ सकेत स्वीकार किया है।–

---

1. प० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा" (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम सस्करण १६६२) पृष्ठ ५८ से उद्‌धृत।
2. वही – पृष्ठ– ६०

अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलङ्कृता

अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो यया।।[1]

निष्कर्षत अलवार भक्तो मे श्रीकृष्ण की प्रेयसी गोपी का नाम नप्पिनै (नीलादेवी) था। कृष्ण का उसके साथ विधिवत् पाणि–ग्रहण हुआ था। फलत वह उनकी स्वकीया थी। वह लक्ष्मी का अश मानी गयी है। भगवान् विष्णु के अनुग्रह को भक्तों के निमित्त परिचालित करने के लिए लक्ष्मी जी ने निप्पनै का यह मधुर मनोहर रूप धारण किया था। इससे स्पष्ट है। इस नप्पिनै को ही राधा की प्रतिनिधि मानने में किसी प्रकार का संशय न होना चाहिए।

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा तत्त्व

मध्य मुगीय कृष्णप्रेमाश्रयी शाखा वाले वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय प्राचीनतम् है। राधा का प्रथम धार्मिक आविर्भाव इसी सम्प्रदाय में मानना उचित प्रतीत है इसके ऐतिहासिक प्रतिनिधि आचार्य निम्बादित्य या निम्बार्क हैं। आचार्य निम्बार्क में अपने प्रख्यात स्तोत्र **'वेदान्तकामधेनु'** (दशश्लोकी) मे भगवान् श्रीकृष्ण के वामअङ्ग में विराजमान वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका का स्मरण किया है कि–

"वृषभानु की आत्मजा अर्थात् राधा भगवान श्रीकृष्ण के वामअङ्ग में विराजती है। वह समस्त कामनाओं और इच्छाओ को देने वाली हैं। श्रीकृष्ण के अनुरूप ही उनका सौन्दर्य तथा सौभाग्य है तथा वह हजारो सखिये के द्वारा सदा सेवित है।"[2]

राधा–कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना इस सम्प्रदाय को इष्ट है। और इस उपासना की प्राचीनता बतलाते हुए निम्बार्क का कथन है कि सनत्कुमार ने इसी का उपदेश अखिलतत्त्वसाक्षी श्री नारद को दिया था।[3] फलत इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के साथ राधिका का साहचर्य सर्वतोभावेन मान्य है।

---

1. विष्णु पुराण ५/१३/३५.
2. अङ्गे तु वामे वृषभानुजा मुदा
   विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
   सखीसहस्तै. परिसेविता सदा
   स्मरेम देवी सकलेष्टकामदाम।।–वेदान्तकामधेनु–५.
3. आचार्य निम्बार्क, वेदान्तकामधेनु स्तोत्र श्लोक ६ से उद्धृत।

श्रीनिम्बार्क के शिष्या मे अन्यतम शिष्य श्री औदुम्बराचार्य क "आदुम्बर महिता" ग्रन्थ मे राधा–कृष्ण के युगल तत्त्व का विवेचन विशेष रूप से किया है उनका कथन है कि राधा–कृष्ण का यह युग्म सदा सर्वदा विद्यमान रहता है। यह नित्य वृन्दावन म विहार करता है। यह जोडी सच्चिदानन्द रूप मे सामान्यतया अगम्य होने से विरले ही सुजन इस तत्त्व को जानते है। दो दृष्टिगोचर होने पर भी वास्तव मे दोनों एक रूप ही ह। इनकी आकृतियाँ आपस मे नितान्त सम्पृक्त दो कल्लोलों (लहरो) की भाँति है जो सरिता म तो अलग–२ दीखते है परन्तु दोनो मिलकर इस प्रकार एक रूप बन जाते हैं कि उनका विश्लेषण कथमपि नहीं किया जा सकता।

जयति सततमाद्यं राधिका कृष्ण युग्मं
व्रतसुकृतनिदान यत् सदैतिह्यमूलय।
विरलसुजनगम्य सच्चिदानन्दरूपम्
ब्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम्।।[1]

कल्लोलकौ वस्तुत एक रूपकौ
राधामुकुन्दौ समभाव भावितौ
यद्वत् सुसम्पृक्तनिजा कृतिध्रुवा–
ब्रजवासिनौ सदा।।[2]

इसी सम्प्रदाय के प्रख्यात आचार्य श्रीभट्ट जी ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'युगलशतक' मे राधा को कृष्ण को सहचरी उद्घोषित किया है। श्रीभट्ट जी युगल उपासना के प्रसिद्व आराधक थे। अपने युगलशतक मे कमनीय उपमा के सहारे राधा तत्व का विवरण प्रस्तुत किया है। "श्रीराधा और कृष्ण कथमपि अलग–अलग दृष्टिगोचर नही होते। श्री राधा श्याम सुन्दर का विग्रह है तो श्रीकृष्ण श्रीराधिका की मूर्ति हैं– दर्पण और उसके प्रतिबिम्ब के समान। जैसे कोई पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है तो उसे दर्पण ने अपना मुख

1. श्री औदुम्बराचार्य कृत "औदुम्बर संहिता" राधाकृष्ण युगलतत्त्व प्रकरण पद–१३, पृष्ठ–२५ से उद्धृत।
2. वही।

मण्डल दिखायी पडता है, और उसके नेत्र की कनीनिक मे वह नत्र सहित दर्पण प्रतिविम्वित होकर दिखायी पडता है। ठीक दशा है–राधा और कृष्ण के प्रतिविम्बित रूप की।"[1]

श्रीभट्ट देव जी के प्रधान शिष्य हरिव्यासदेवाचार्य जी के प्रधान ग्रन्थ 'महाबानी' मे राधातत्व का विशद वर्णन है। इस प्रकार, इनकी दृष्टि मे राधा का श्रीकृष्ण के साथ नित्य साहचर्य है–एक तन तथा एक मन, देखने मे आपातत दो, परन्तु वस्तुत एक। युगल सरकार का यही रूप एक मत में स्वीकृत है।[2]

व्याकरण आगम में शब्द ब्रह्म से सृष्टि होती है। यह शब्द ब्रह्म श्री राधा जी के चरण कमलो मे नूपुर से होने वाला कलरव ही है। **फलतः राधा सृष्टि की अधिष्ठात्री देवी हैं और शब्द ब्रह्म से नितान्त उच्चतम उदात्त तत्त्व है।**[3]

'महावाणी' मे श्रीराधा श्यामसुन्दर की आह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित की गयी है। श्यामसुन्दर आनन्द स्वरूप में और राधा उस आनन्द की आह्लाद है। फलतः दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बद्व है बीज–वृक्ष की भॉति। राधा के बिना न कृष्ण की स्थिति है और न कृष्ण के बिना राधा की स्थिति। फलतः नाम तो दो दिखायी पडता है परन्तु वे दोनो एक ही स्वरूप है। फलतः युगलता भी एक नित्य वस्तु है।–

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनन्द के आह्लादिनि श्यामा, अहलादिनी के आनन्द स्याम।
सदा सर्वदा युगल एक तन, एक युगल तन विलसत धाम।
श्री .हरिप्रिया निरन्तर नित प्रतिकामरूप अद्‌भुत अभिराम।।[4]

---

1. श्रीभट्ट प्रणीत 'युगलशतक' से सम्बद्व पद' "भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा, प० बलदेव उपाध्याय, प्रथम सस्करण १९६२ के पृष्ठ–७४. से उद्‌धृत (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से प्रकाशित)।
   –ज्यो दर्पण मे नैन, मे नैन–नैन सहित दर्पण दिखवारौं
   श्रीभट्ट जौंट की अति छवि ऊपर तन मन धन न्यौछावर डारौ।।–युगल शतक।
2. श्री 'हरिप्रिया' दरस हित दोय तन दर्सवत
   एक तन एक मन एक दो री।। –श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी कृत 'महावानी' श्लोक–३ से उद्‌धृत।
3. प० बलदेव उपाध्याय कृत भारतीय वाड्यम में श्रीराधा, प्रथम सस्करण १९६२ (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना), पृष्ठ ७५ से उद्‌धृत–
   श्रीराधापद कमल तै। नूपुर कलस्व होय।
   निर्विकार व्यापक भयौं, शब्द ब्रह्म कहि सोय।।
4. श्री हरिव्यासदेवाचार्य कृत 'महावाणी' सिद्वान्तसुख–२६

निम्वार्क सम्प्रदाय म राधिका श्रीकृष्ण की स्वकीया मानी जाती ह परकीया का कोई स्थान नही। निम्वार्क भाषा कवियो ने राधा के अभिसार का वर्णन किया है इससे राधा का परकीया होना कहीं सूचित नही होता। राधिका श्रीकृष्ण की विवाहिता थी। राधा क लिए कुमारिका शब्द का प्रयोग अविवाहित होने का सूचक नही, केवल अवस्था सूचक है।

वल्लभ सम्प्रदाय में राधातत्त्व

वल्लभाचार्य प्रतिष्ठापित पुष्टिमार्गीय साधनो मे भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की सुव्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। पुराणो मे व्याख्यायित राधा तत्त्व इस मत के लिए नितान्त प्रमाण भूत है।[1] इस सम्प्रदाय की राधा कृष्ण की आत्मा है और आह्लादिनी शक्ति से पूर्ण है। वे सुख की मूर्ति और रस की भण्डार है। ये उपासिका का रूप भी प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करती हैं। प्रेयसी का उज्ज्वल–स्वरूप प्रकट करती हैं। इस सम्प्रदाय की राधा सखी रूप मे भी हमारे सामने आती हैं जिसने सखी की भूमिका का निर्वाह किया। माधुर्य भक्ति की अधिकारिणी राधा ही हैं जो स्वकीया मानी गयी हैं। गोपियों में सर्वश्रेष्ठ और प्रधान गोपी राधा ही है। वल्लभ सम्प्रदाय की राधा शक्ति तत्व के रूप में प्रकट हुई है, यह जीवात्मा मानी गयी है और परमव्रह्म कृष्ण परमात्मा हैं।[2] इन दोनों का मिलन होने पर भक्तगण भी आनन्द से ओतप्रोत हो जाते है।

राधा विषयक स्वकीया और परकीया शब्द सापेक्ष और संकुचित अर्थ के द्योतक है इनमें धर्म–धर्मी युक्त आत्मा जैसी अन्तरंगता नहीं है। इसलिए पुष्टिसम्प्रदाय में श्रीराधा का न तो स्वकीयात्वेन और न परकीयात्वेन निर्देश किया गया है। यहॉ तो वे सर्वत्र सच्चिदानन्द रसमय पुरूषोत्तम की मुख्य शक्ति स्वामिनी के रूप में आलेखित हुई है।[3]

आचार्य वल्लभ, भागवत् की सुबोधिनी टीका में श्रीराधा को भगवान् की सर्वोत्कृष्ट सिद्वि मानते है **काचिद् भगवतः सिद्विरस्ति राधस् शब्द वाच्या। न तादृक सिद्धि क्वाचिदन्यत्र, न वा ततोऽप्याधिका । तया सिद्वया भगवान् स्वगृहे एव रमते। तच्चाक्षरात्मक ब्रह्म।**[4]

---

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण दोनो मे समवाय सम्बन्ध का प्रमाण प्रस्तुत करता है–
   यथा क्षीरेषुधावल्य यथा वह्नौ च दाहिका
   भुवि गन्धो जलेशैत्य तथा कृष्णे स्थितिस्तव।।–ब्रह्मवैवर्तपुराण– २७–२१२.
2. काशी हिन्दू वि० वि०, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, श्रीराधा का चारित्रिकविकास पृष्ठ ५८ से उद्धृत।
3. श्रीकण्ठमणि शास्त्री, श्रीराधा गुणगान ग्रन्थ, पृष्ठ ८१. (प्रकाशन गोरखपुर स० २०१७)।
4. निरस्त साम्यातिशयेन राधसा।
   स्वधामिनी ब्रह्मणि रंस्यते नम ।।–भागवत् पुराण, श्लोक २/४/१४ की सुबोधिनी टीका से उद्धृत।

बल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी विषयक राधा

गोस्वामी विट्टलनाथ ने अपने तीन स्तोत्रों में अत्यन्त विशद रूप से श्रीकृष्ण प्रेयसी राधिका के चरणकमलो मे अपने जीवन को समर्पित करने का वर्णन किया है। उनके अनुसार साधक के जीवन की चरम अभिलाषा है श्रीराधा जी की कृपा का पात्र बनना तथा उनके मुख से निःसृत कतिपय मधुमय वचनो का श्रवण ही भाग्य की पराकाष्ठा है। वह इन वचनो के ऊपर मोक्ष को लुटाने के लिए तैयार रहता है–

कृपयति यदि राधा बाधित शेषबाधा

किमपरमवशिष्ट पुष्टिमर्यादयोर्मे।

यदि वदति च किञ्चित् स्मेरहसोदितश्री–

र्द्विजवरमणिपङ्क्त्या युक्तिशुक्त्या तदा किम्?[1]

विट्ठलनाथ जी की दृष्टि मे पुष्टिमार्ग में स्वामिनी राधा जी का स्थान इतना उक्त तथा उन्नत हैं कि वे अपने भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं का अवसान श्रीराधा के विविध कार्यो के द्वारा ही सम्पन्न होना ही बतलाते हैं।

"श्रीराधा यह नाम समस्त वेदो का मानो छिपा हुआ धन है मेरी वाणी इसी मन्त्र को चुपचाप जपती रहे किसी अन्य को न जये। प्रदोष काल में यमुना पुलिन की ओर जाने के लिए उद्यत श्री राधा जी के चरण युगल मेरे मानस मे निवास करें"।[2]

विट्ठलनाथ जी की उक्ति बडी मार्मिक तथा हृदयावर्जिका है कि– न मुझे मोक्ष, योग, ज्ञान तथा विषय सुख की कामना है अपितु मेरा भोजन हो राधा का जूठा भोजन (प्रसाद), मेरा पेय हो राधा का चरणामृत, राधा के पदतल की धूलि मेरे उत्तमाङ्ग की शोभा बढाये,। हे स्वामिनी जी प्रत्येक जन्म मे मुझे आपके पाने की कामना है।[3] इस सम्प्रदाय में राधा माधुर्यभाव, कान्ताभाव का पूर्ण परिपाक है तथा उसे प्रेम की देवी माना गया है।[4]

---

1. गोस्वामी विट्ठलनाथ जी कृत चतुःश्लोकी राधा प्रार्थना" पृष्ठ–२१ से उद्धृत।
2. रहस्य श्रीराधेत्यखिलनिगमानामिव धन
   निगूढ मदवाणी जपतु सतत जातु न परम्।
   प्रदोष दृड्भोषे पुलिनगमना याति मधुर
   चलत्तरयास्चञ्चत चरणयुगमास्ता मनासि मे।।– श्रीस्वामिन्यष्टक स्तोत्र–३१
3. न मे भूयान् मोक्षो न परमराधीशसदन
   न योगो न ज्ञात न विषयसुख दृखकदनम्।
   त्वदुच्छिष्ट भोज्य, तव पदजल पेयनपि तद्
   रजो मूर्ध्नि स्वामिन्यनुसवनमस्तु प्रतिभवम्।।–श्रीस्वामिन्यष्टक स्रोत्र–४६
4. श्री द्वारिका प्रसाद मित्तल– 'हिन्दी साहित्य मे राधा" पृष्ठ १८३ से उद्धृत।

राधाबल्लभ सम्प्रदाय में राधा तत्त्व

इस सम्प्रदाय ने आचार्य श्रीहरिवंश जी या श्री हितहरिवंश जी है। यह वैष्णव सम्प्रदाय १६वी शदी मे वृन्दावन मे उत्पन्न हुआ। **इन आचार्यो ने राधा कृष्ण ही युगल उपासना की हैं। कृष्ण की तुलना मे राधा को श्रेष्ठ माना गया है।** इस सम्प्रदाय का मूल मन्त्र 'राधा प्रेम गाथा ही है। यह राधा प्रेम की अधिष्ठात्री है। इन राधा मे परिकीया तत्व का बोध होता है। 'राधा–बल्लभ' सम्प्रदाय की राधा उपासिका, देवी, और आराधना करने वाली मानी गयी है। इस सम्प्रदाय मे कृष्ण को उतना महत्व नही दिया गया है अपितु राधा की सर्वस्व ही इस सम्प्रदाय का मूल स्वरूप युगल माधुरी का है। राधा प्रेम सर्वोपरि है। इसलिए इसकी आराधना करनी आवश्यक जान पडती है।

श्रीहितहरिवंश जी श्रीकृष्णचन्द्र के मुरली के अवतार माने जाते है। इनका दीक्षागुरू कोई व्यक्ति नही था, प्रत्युत श्रीराधा जी ने इन्हें स्वप्न में अपने मन्त्र की दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया। राधाजी इस मार्ग की गुरू स्थानीया हैं।[1] इसी तथ्य का राधासुधानिधि के रसकुल्या टीकाकार श्रीहरिलाल व्यास जी ने प्रकट किया है।[2]

राधैवेष्टं सम्प्रदायैककर्त्ताऽचार्यो राधा मन्त्रद सद्गुरूश्च।

मन्त्रों राधा 'यस्य सर्वात्मनैवं, वन्दे राधा पादमद्मप्रधानम्।।

श्रीराधिका जी इस सम्प्रदाय में इष्ट है, आदिकत्री है, आचार्या है, मन्त्रदात्री गुरू है तथा वे ही मन्त्र हैं। राधा का यही रूप राधाबल्लभ सम्प्रदाय मे सर्वथा अभीष्ट है।

राधाबल्लभी सम्प्रदाय प्रेमतत्व का उपासक रस मार्गी सम्प्रदाय है। स्वकीया परकीया दोनो भाव अपूर्ण है। स्वकीया में मिलन है पर विरह नही, परकीया में विरह है तो मिलन का पूर्ण सुख नही। प्रेम की पूर्णता तो तब होती है जब नित्य मिलन मे भी विरह का ललक (सुख) उपस्थित है। अथवा विरह मे नित्य मिलन का आनन्द विद्यमान रहे चकई का

---

1 राधाबल्लभ सम्प्रदाय, सिद्वान्त और साहित्य ग्रन्थ पृष्ठ १०१ से उद्धृत कथा।

2. प० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा" विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना प्रथम सस्करण १९६२ पृष्ठ–६६ से उद्धृत है।

प्रेम विरह प्रधान, तो सारसी का मिलन प्रधान, अतएव दानों एकागी हैं। प्रम की सच्ची पहचान है–प्रेम विरहा अर्थात् मिलन मे भी विरह की सत्ता का भान।[1] यही प्रेम विरह राधा वल्लभीय पद्वति का सार है।

हितहरिवश जी अपने एक पद मे इसी सुन्दर भाव को दर्शाया है। राधाकृष्ण के सामने बैठी है परन्तु एक क्षण के लिए उसके नेत्रो के सामने केशों का लट आ जाता है जिससे दर्शन मे बाधा पडने के हेतु वह तीव्र विरह वेदना का अनुभव करती है–

कहा कहौ इन नैननि की बात।

ये अलि प्रिया वदन अम्बुज रस अटके अनत न जात।।

जब–जब सकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलात।

लम्पट लव निमेष अन्तर ते अलप कलप सत सात।।

श्रुति पर कज दृगजन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात।

हितहरिवंश नाभि सर जलचर जॉचत सॉवल गात।।[2]

राधा जी का पद नितान्त समुन्नत है इस विषय मे श्रीहरिवश जी ने अपना मन्तव्य बडे ही विशद शब्दो मे अभिव्यक्त किया है–

राधा–दास्यमपास्य य प्रयतते गोविन्द सङ्गाशया

सोऽयं पूर्णसुधारूचेः परिचय राकां बिना काङ्क्षति।

किं च श्यामरतिप्रवाह लहरी वीजं न ये तां विदु–

स्ते प्रप्यापि महामृताम्बुधिमहो विन्दु पर प्राप्नुयु.[3]

आशय है कि जो लोग राधाजी के चरणों की सेवा छोडकर गोविन्द कृष्ण के संगलाभ की चेष्टा करते हैं, वे मानो पूर्णिमा तिथि के बिना पूर्ण चन्द्रमा का परिचय प्राप्त करना चाहते है। वे नहीं जानते कि श्यामसुन्दर के रतिप्रवाह की लहरियों का बीज यही श्रीराधा जी हैं। वे अमृत का महान समुद्र पाकर भी उससे से केवल एक बूद ही ग्रहण कर पाते हैं। कृष्ण की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है–राधा–चरण सेवा। इसलिए कृष्ण की अपेक्षा राधा का गौरव इस सम्प्रदाय में बहुत अधिक है।

---

1. प० बलदेव उपध्याय, भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा, (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना प्रथमसस्करण १९६२) पृष्ठ ६५ से उद्धृत।
2. श्री हितहरिवश जी प्रणीत हित चौरासी, पद ६०
3. राधासुधानिधि श्लोक–७९

चैतन्य सम्प्रदाय में राधा

चैतन्य मत मे राधा तत्व का विवेचन विशिष्ट दार्शनिक रूप मे मिलता हं। इसका विवरण कृष्णदास कवि चैतन्यचरितामृत, रूपगोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि तथा हरिभक्तिरसाभृतसिन्धु तथा· जीवगोस्वामी (रूपगोस्वामी के भ्रातृस्पुत्र) कृत भागवतसन्दर्भ या षडसन्दर्भ में प्राप्त होता है।

चैतन्य मत मे राधा भगवान की, अनेक शक्तियो में प्रमुख स्वरूपाशक्ति मे प्रधान आह्लादिनी शक्ति के रूप में वर्णित है। इसी आह्लादिनी शक्ति का नाम राधा है। राधा तत्व को स्पष्ट शब्दों में कृष्ण दास कविराज ने प्रस्तुत किया है–

हलादिनी कराय कृष्णेर अमन्दास्वादन
हलादिनी द्वारा करे भक्तेरपोषण
हलादिनी सार प्रेम सार भाव
भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव
महाभाव–रूपा श्रीराधा ठकुरानी
सर्वगुणखानि कृष्णकान्ता शिरोमणि।।[1]

चैतन्यमत में राधा परकीया रूप मे स्वीकृत की गयी है। परन्तु जीवगोस्वामी ने इसे स्वकीया माना है परकीया का आशय लीलावाद से बताया है।[2] राधा को विशुद्ध परकीया मानने वाले आचार्यो में चैतन्य चरितामृत लेखक कृष्णदास कविराज हैं– इन्होंने कान्ताप्रेम के उत्कृष्टतम रूप परकीया रति को स्थिर किया हैं–

परकीया भावे अति रसेर उल्लास
व्रजबिना इहार अन्यत्र नाही वास
ब्रजवधू गणेर एइ भाव निरवधि
तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवाधि।।[3]

---

1. कृष्णदास कविराज, चैतन्यचरितामृत आदि–लीला सर्म–६ श्लोक/पद–२२ से उद्धृत
2. प० बलदेव उपध्याय, भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा, पृष्ठ–१४६ से उद्धृत (विहार राष्ट्रभाषापरिषद, पटना,

आशय स्पष्ट है कि परकीया में रस का उल्लास क्यो कर होता हैं। साहित्य की दृष्टि से रति उत्कर्ष के तीन कारण हो सकते है। वारणत्व, प्रच्छन्नकामुकत्व तथा दुर्लभत्व। साधना की दृष्टि से परकीया भाव चैतन्य मत मे प्रतिष्ठा पाने में समर्थ हुआ।

सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय में राधातत्त्व

वैष्णव सम्प्रदाय बगाल मे प्राचीन काल से अपनी स्थिति बनाये हुए है जिसमे से एक–सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय है। यह विशुद्ध तान्त्रिक वैष्णव धर्म है। जिस पर ब्राह्मण तन्त्र तथा बौद्ध तन्त्र (जिसे सहजिया या सहजयान कहते हैं) का प्रभाव विशेष रूप से पडा था। सहजमार्ग रागभार्ग है वैराग्य मार्ग नही, जिससे बन्धन सिद्ध होता है मुक्ति भी।[1]

सहजिया मत मे राधा–कृष्ण प्रकृति–पुरूष तत्व के द्योतक है। सहज महाभावस्वरूपा हैं जिससे श्रीकृष्ण आस्वादक है तथा श्रीराधा आस्वाद्य। यहा यही राधा–कृष्ण आराध्य देवता हैं। कृष्ण है रस और राधा है रति; कृष्ण ही है काम और राधा है मादन। राधा कृष्ण के लिए सदा आनन्द विलास की प्रदात्री हैं। वह कृष्ण के लिए सर्वदा व्याकुल रहती है– एक क्षणं का भी विरह इसके लिए करोडो वर्षो के विरह के समान प्रतीत होता है। सहजिया राग मार्ग है वैराग्य मार्ग नहीं, यह **रसमार्ग है कामभार्ग नहीं। यहां काम को दबाया नहीं जाता प्रत्युत शोधन की आवश्यकता है।** शोधित काम मानव को दिव्य रूप प्रदान करने मे सर्वदा समर्थ होता है। यह एक निःसन्दिग्ध तत्व है।

सहजिया सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कवि चन्डीदास हैं। सहजिया लोगों की दृष्टि मे मनुष्य ही इस सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। क्योंकि परमतत्व की उपलब्धि इसी के भीतर से होती है। चण्डीदास की विख्यात उक्ति सहजिया वैष्णवों की मूल धारणा को अभिव्यक्त कर रही है–

सवार उपरे मानुष सत्य

ताहार उपरे नाई।[2]

---

1. "रागेन बध्यते लोको रागेनैव विभुच्यते"
   प० बलदेव उपाध्याय, भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा पृष्ठ १५६ से उदधृत– हेव्रजतन्त्र की उक्ति
2. सहजियां वैष्णव सम्प्रदाय, चन्डीदास की उक्ति, प०
   प० बलदेव उपाध्याय, भारतीय वाड्मय मे श्रीराधाः पृष्ठ १६० से उदधृत–

गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा तत्व

गौडीय सम्प्रदाय के समर्थक राधा को प्रेमस्वरूप मानते है, और प्रेम तत्व के रूप मे ही इन आचार्यो ने राधा की उपासना की। कृष्ण पूर्ण आनन्दमय तत्व रूप हैं और राधा शक्ति देवी के रूप में विराजमान हैं। इस सम्प्रदाय में कृष्ण के लिए, राधा का प्रेम ही सब कुछ है। वह इन्हे पूजनीया मानते है। राधा का वह प्रेम रूपी चरित्र ही उन्हें प्रभावित करता है। जिसके फलस्वरूप वह विविध लीला रचाने को इच्छुक हैं। रूपगोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि मे राधा को गोपियों मे सर्वाधिक प्रिय माना गया है।

आह्लादिनी शक्ति के रूप में वह इस सम्प्रदाय मे सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। इस सम्प्रदाय के आचार्य राधा में प्रेम तत्व और आह्लादिनी शक्ति तत्त्व प्रवल रूप में विद्यमान मानते है।[1]

ललित सम्प्रदाय में राधा तत्व

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक वंशीअली हैं जो राधा को सिद्वान्त रूप में देंखते हैं। प्रेमस्वरूपिणी राधा की विवेचना दर्शन के आधार पर करते हैं। इस सम्प्रदाय की उपासिका राधा दिखायी देती है। यह सत् चित् और आनन्द की प्रतिमूर्ति हैं। कृष्ण भी उस सम्प्रदाय मे राधा की उपासना करते हैं। ऐसा लगता है कृष्ण ने राधा की उपासना करते हैं। ऐसा लगता है कृष्ण ने राधा के साथ नित्य विहाार के लिए ही इस सम्प्रदाय में अपना प्रवेश किया। इस सम्प्रदाय में राधा ने सखी के रूप में कृष्ण की वन्दना की है और सेवा करके पुरस्कार भी पाया है।[2]

---

1. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृष्ठ–१६१ से उद्धृत (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना प्रथम सस्करण–१६६२)।
2. काशी हिन्दू वि० वि० अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "राधा का चारित्रिक विकास, से उद्धृत, पृष्ठ–५६

साहित्यिक राधा

साहित्यिक दृष्टि से सर्वप्रथम श्रीमद्‌भागवतपुराण, विष्णु–पुराण मे गोपी भाव रूप मे नाम रहित विशिष्ट गोपी का वर्णन मिलता है। यही वर्णन कम आगे बढकर १२वी शदी तक साहित्यिक राधा का स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी वर्णन श्रृंखला में संस्कृत साहित्य का प्रमुख स्थान है।

संस्कृत साहित्य में गोपी भाव एवं राधा तत्व–

सर्वप्रथम सस्कृत साहित्य में गोपियो के मनोभावो का अध्ययन मनन करने का यथा सम्भव प्रयास प्रस्तुत किया जा रहा है। गोपियों ने कृष्ण को किस भाव में देखा, परखा, और उनकी आराधना की। संस्कृत साहित्य में गोपी को मातृत्व पद से सुशोभित किया गया है वह माता के रूप में दिखायी गयी है। वह मात्र गोपी ही नहीं अपितु गोपी से आगे गोपी कुमार तक वन गयी हैं–

नवजलधखणम् चम्पकोदभासिकणा

विकसित नलिनास्य विस्फुरन्मन्दहास्यम्

रूचिदुकूलं चारू वहिवचूल

कमपिमिखिलसार नोमि गोपी कुमारं।[1]

जैस–जैसे भगवतधर्म विकसित होता गया, वैसे ही उत्तरोत्तर गोपियों का कृष्ण के प्रति असीम भाव भी अपने आप प्रकट होता गया। कृष्ण गोपी लीलाओं में अधिकांशतः श्रृंगारिकता का बोलबाला था। पद्मपुराण के पाताल खण्ड के एक पद में गोपियों को वेद की ऋचाए माना गया है। इस ऋचा ने आराधना की– हे भगवान! हम आपको सगुण रूप से अच्छी तरह पहचाते हैं।[2]

---

1. श्यामसुन्दर लाल·कृष्ण काव्य में भ्रमगीत. पृष्ठ–१४८.
2. डा० सावित्री अवस्थी· नन्दास जीवन और काव्य पुष्ठ–१२५

गोपियो मे चरम प्रेम की परिणति होती है और प्रेम का यही भाव आगे चलकर महाभाव का रूप धारण कर लेता है। गोपियों का कृष्ण के प्रति सभी व्यवहार प्रेम का रूप माना गया है। गोपियों एवं कृष्ण का प्रेम शारीरिक प्रेम न होकर आध्यात्मिक प्रेम है जो वासना से पूरित हो, यहॉ तक कि उनके नामकरण भी अलग–अलग न रहकर एक ही रूप में स्वीकार किये गये है। नारी और पुरूष का सबसे निकट सम्बन्ध दाम्पत्य भाव माना गया है यदि इसमें काम वासना का तनिक भी महत्व नहीं दिया गया है तो यह सम्बन्ध पवित्र माना जायेगा। गोपियों मे इसी शुद्व, पवित्र प्रेम का अधिक्य था। महाभाव की अगली सीढ़ी मादन मानी गयी है। इसका उपयोग करने का एकमात्र श्रेय राधा को है। इस अवस्था पर राधा को आनन्द की प्राप्ति होती हैं।[1]

ब्रज की सभी युवतियाँ, नारी, कुमारी, नयी नवेली दुल्हन, या वयस्क कोई भी हो, सभी अपने अनुरूप कृष्ण को अपना बनाने को उत्सुक रहती है। गोपियों का हृदय सरल, निश्चल और स्नेह की त्रिवेणी हो वे कृष्ण के रूप एवं गुणों से मोहित है तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए अनेक देवताओं की पूजा, ब्रत अर्चना करती है तथा सफल होती है। गोपियों को परकीया नायिका माना गया है जो कृष्ण की प्रेमिका थी।

दाम्पत्य भाव के आधार पर गोपियॉ कृष्ण की पत्नी मानी गयी है और कृष्ण उसके पुरूष माने गये हैं और हर नारी का हर क्रिया कलाप पुरूष को प्राप्त करना ही है। दाम्पत्य भाव की अधिकता होते हुए भी गोपियों में भक्ति की प्रधानता है।[2]

---

1. काशी हिन्दू वि०वि० अप्रकाशित शोध प्रबन्धः श्री राधा का चत्रिक विरासः पृष्ठ २३ से उद्धृत।
2. डॉ० प्रेम स्वरूप हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस– परिकल्पना पृष्ठ–१६८ से उद्धृत ।

श्रीमद्भागवत में विशिष्ट गोपी

श्रीमद्भागवतपुराण मे विशिष्ट गोपी अर्थात नाम रहित राधा के विविध क्रिया–कलापो का वर्णन है– श्रीमद्भागवत् मे गोपियो एवं कृष्ण के आध्यात्मिक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है किन्तु कृष्ण की आध्यात्मिक भावना को सर्वोत्तम माना गया है। बाद के ग्रन्थों मे भागवतपुराण के अनुसार उपासना का ध्येय आदर्श गोपियाँ ही मानी गयी हैं पुराणों में गोपियों का व्यक्तित्व क्रमशः विकसित होता गया है और यही विकसित अवस्था गोपीभाव का मुख्य साधन बन गया।

श्रीमद्भागवत में दो तरह की गोपियों का उल्लेख है[1] प्रथम दूसरे गोपो की पत्नियाँ, द्वितीय वे जो कृष्ण को अपना बनाने के लिए सर्वदा तल्लीन रहती है।

गोपी को गोपनीय प्रेम का प्रतीक माना जा सकता है। इस भाव का जितना भी अर्थ लगाया जाय अल्प ही होगा। इस प्रेम की अनेक अवस्थाएं मानी गयी है, और इस प्रेम की कल्पना अजीब सी है। गोपी कृष्ण में अनेक भावो का समन्वय है–दाम्पत्य, दास्य, सखा वात्सल्य भाव आदि। इनमें सबसे प्रमुख भाव–दाम्पत्य का है। यही गोपी, साहित्य की राधा तत्व रूप में वर्णित है।

जयदेव कृत गीतगोविन्द की राधा

गीतगोविन्द की राधा पार्थिव प्रेम की प्रतिमा न होकर दिव्य भक्ति की संचारिणी कल्पलता है। वह अपने आराध्य ब्रज–नन्दन के प्रति सहज स्वाभाविक अनुराग धारण करती है। आदर्श प्रेमी के समान वह अपने आराध्यदेव के वास्तविक दोषों का तनिक भी ख्याल नहीं करती। वह जानती है कि वह 'बहुबल्लभ' है।[2] उसकी प्रीतिपात्री कोई एक भाग्यवती ललना नहीं हैं, प्रत्युत वह अनेक नारियों को आकृष्ट करने वाला व्यक्ति है। इतना ही नहीं, वह 'स्वच्छन्दं रमते' मनमानी ढंग से रसकेलि में पगा हुआ रहता है, अपनी प्रणय लीला वह

---

1. काशी हिन्दू वि० वि०; प्रकाशित शोध प्रबन्ध 'श्री राधा का चरित्रिक विकास' पृष्ठ २६ से उद्घृत (बिहार राष्ट्र भाषा परि. पटना १९६२)
2. वही पृष्ठ २५६ से उद्धृत

प्रवृत्त होता है बेरोक–टोक, उसे वहाँ से हटाने वाला कोई भी पुरूष नही हैं, वचन देकर भी ठीक समय पर नही आता। इतना जानकर भी प्रियतम के दोषो से परिचय पाकर भी वह बुरा नही मानती। वह अपनी सखी से कहती है कि इसमें तेरा दोष ही क्या? से साधन किसी समान्य स्त्री के हृदय को विरक्त करने के लिए पर्याप्त होते, परन्तु राधा के ह्रदय मे इन बातों से अपने प्रियतम से किसी प्रकार की विरक्ति नहीं होती, प्रत्युत् वह कहती है कि क्षणभर के विलम्ब में भी इसका चित्त उत्कण्ठार्ति के भार से कट जायेगा। इस प्रकार राधा दिव्य प्रेमिका के रूप में चिंत्रित की गयी है।–

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे?
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमत किन्तत्र ते दूषणम् ?
पश्याद्य प्रिय सङ्गमाय दायितास्याकृष्यमाणं गुणैः
उत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्याति।।[1]

जयदेव की राधा की रूप सुषमा

जयदेव की दृष्टि में चिरसुन्दरी राधा भूतल पर विचरण करने वाली दिव्य ललनानाओं का अपूर्व सम्मिलन है। वह विचरण करती है पृथ्वी के ऊपर, परन्तु उसके अंग–प्रत्यङ्ग मे स्वर्गलोक की अप्सराएं अपने पूर्व वैभव तथा सौन्दर्य के साथ केलि किया करती है। राधा के नेत्र मदालसा है अर्थात मद से अलस तथा मदालसा नाम्नी अप्सरा। स्वर्गलोक मे तो एक ही मदालसा है किन्तु राधा के शरीर के एक भाग में दो मदालसा हैं। राधा का मुख चन्द्रमा के समान दीप्ति का विस्तार करता है तथा इन्दुमती नामक अप्सरा चन्द्रवदन में निवास करती है। राधा की गति मनुष्यों के मन को रमाने वाली है तथा वह मनोरमा अप्सरा है। राधा की दोनों जंघाओं ने रम्भा (केला तथा रम्भा नामक अप्सरा) को जीत लिया है राधा की रति (हाव–भाव तथा काम पत्नी) कलावती (कला–कौशल से युक्त तथा कलावती अप्सरा) है। राधा की मौहें क्रोध के कारण विचित्र भृकुटी (दो चित्रलेखा तथा चित्रलेखा नामक अप्सरा) है।

---

1. जयदेव कृत गीतगोविन्द उद्धृत श्लोक का भावनानुवाद–
आयो न नाथ जो साथ तिहारो, तो दोष कहा तुहि को दु.ख छायोगो।
ठौर कुठौर लखौ न सुछन्द, कठोर हियै की सखै निठुराओगे।
तौ उनके गुन यौवन रूप, फँदानि फस्यौ अति हि अकुलाओगे।
मो मन मोहि न मानत मोहन, मोहन के ढिग आपुहि जायगो।।
–गोतीगोविन्दादर्श–पृष्ठ५५–५६

हे तन्वी राधा! तुम पृथ्वी पर रहकर भी देवाङगनाओं के समूह को धारण करती हो। इस प्रकार जयदेव राधा के श्लाधनीय सौन्दर्य की दिव्य छटा की अभिव्यजना मुद्रा अलकार से अलंकृत इस पद्य में कितनी स्पष्टता से की है–

दृशो तवमदालसे वदनमिन्दु सन्दीपकं
गतिर्जनमनोरमा विजितरम्भमुरूदयम्
रतिस्तव कलावती रूचिरचित्र लेखे भ्रवा।
वहो बिवुधयौवनं वहसि तन्वी पृथ्वीगता।।[1]

फलतः राधा का मुख अलौकिक सौन्दर्य से युक्त तथा काम का उद्दीपक हो। इस तथ्य का संकेत जयदेव ने बड़ी सुन्दरता से किया है।[2]

जयदेव ही प्रथम कवि है जिन्होंने राधाकृष्ण की केलि को नायिका भेद के शास्त्रीय ढॉचे में ढालकर अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया। जिनको वैष्णव पदकारों ने अपना आदर्श मानकर अपने काव्यों में अनुकरण किया। भरतमुनि–नाट्यशास्त्र में अवस्था भेद से नायिका के आठ भेदों– (स्वाधीनपतिका, वासक–सज्जा, विरहोत्कठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा प्रोषितपतिका और अभिसारिका,) में सयोग और विप्रयोग श्रृंगार की उभयदशाओं में नायिका का समस्त जीवन चित्रित किया है।[3] जयदेव इन आठों भेदों का चित्रण कहीं व्यक्त रूप से कहीं अव्यक्त, तथा स्वल्प रूप से करते हुए दिखलाई देते हैं। द्वितीय सर्ग में प्रोषितपतिका, चतुर्थ में विरहोत्कठिता, पंचम में वासक–सज्जा, सप्तम में विप्रलब्धा, अष्टम् में खण्डिता नवम में कलहान्तरिता, दशम मे मानिनी, द्वादश में स्वाधीनपतिका आदि, राधा को अष्टविध नायिका रूप में सर्वप्रथम चित्रित कर वैष्णव कविता के इतिहास में एक युगान्तर उपस्थित किया है।[4]

प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत श्रीराधापंचशती काव्य अपने श्रृंगार वर्णन, एवं नायिका भेद चित्रण में गीतगोविन्द काव्य का विशेष रूप से ऋणी है।

---

1. गीतगोविन्द , सर्ग–१० श्लोक ७
2. गीतगोविन्द, सर्ग १०, श्लोक ६
3.(क) भरतमुनि नाट्यशास्त्र–नायिका भेद प्रकरण टीका पृष्ठ–४७ से उद्घृत
(ख) धनजय कृत दशरूपक द्वितीय प्रकाशः श्लोक २३ की टीका से उद्धृत।
4. प बलदेव उपाध्याय "भारतीय वाङ्मय में श्री राधा" (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्रथम संस्करण–१९६२) पृष्ठ २५१ से उद्धृत।

अपभ्रंश काव्यों की राधा–

अपभ्रश काव्यो मे भी गोपीजन के साथ श्रीकृष्ण की ललित कलि का वर्णन उपलब्ध होता है। जो परम्परा राधा कृष्ण की लीला का वर्णन गाथासप्तशती से प्रारम्भ हुई वह इस मध्य युग–अपभ्रश काव्य मे विद्यमान रही। **पुष्प दन्त** के उत्तर पुराण की ८५ वें सन्धि या सर्ग मे नारायणं की बालक्रीडा का बडा ही हृदयावर्जक वर्णन किया गया है जिसमें गोपियो की केलिक्रीडा का सरस विन्यास है। इसका समय दसवीं शदी मध्य है।

यथा– धूली धूसरेण करमुक्क सरेण तिणा मुरारिणा।

कीला रस वसेन गोवालअ गोवी हियय हारिणा।

मदीरउ तोडिवि आवंट्टिड, अद्व विरोलिउं दहिउ–पलोट्टिउ।[1]

पुष्पदन्त का यह वर्णन गीतगोविन्द से दो शती पहले का है। जो सस्कृत में अनुष्टुप, प्राकृत मे गाथा की भाँति अपभ्रंश के दोहा छन्द मे है।

जैनी हेमचन्द्र के दोहे जैसे–

हरिनच्चाविउ पगणहि विम्हइ पाडिउ लोउ।

एम्बइ राह पओहरहं जं भावइ तं होउ।।[2]

इसका आशय है कि हरि को प्रांगण में नचाने वाले लोगो को विस्मय ने डालने वाले राधा के पयोधरो को जो भावे सो हो। इस आशय से पता चलता है कि यह किसी सखी की राधा के प्रति उक्ति है जो उसके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा कर राधा के महत्व को प्रकट करना चाहती है।

---

1. पुष्पदन्त, उत्तर पुराण, ८५ वॉ सन्धि (नारायण वालकीडा वर्णनम्) (माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई १६४१) से उद्धृत
2. हेम चन्द्र के दोहे, पृष्ठ–६१ से उद्धृत

मैथिली काव्य की राधा

सस्कृत काव्य के अनन्तर मैथिली काव्य मे राधा–कृष्ण कंलि का वर्णन अन्य प्रान्तीय काव्यो के अतिरिक्त, प्रधान मैथिली महाकवि विद्यापति की पदावली (गीतसग्रह) भक्तजनो को आह्लादित करती है।

विद्यापति के गीत सग्रहों मे राधा के अद्भुत सुन्दरता का वर्णन किया गया है। एक पद मे गोरी राधा को सम्बोधित कर रहे हैं कि हे गोरी,। तुम अपने मुख को आंचल से ढककर रखों। नही तो चन्द्रमा की चोरी की रपट लिखायी गयी है। घर–घर में पुलिस तलाशी ले रही है। मानों उसका अपराध तुम्हें ही लगाया जायेगा। हे सुन्दरी! तुम मेरे उपदेश को सुनो, जिससे स्वप्न में भी तुम्हें विपत्ति या क्लेश न सहना पडे। इसी सब भावों को कवि की पदावली मे वर्णित है–

अम्बरे बदन झपावहु गोरि।

राज सुनइछि चान्दक चोरि।

घरे–घरे पहरी गेल अछ जोही।

अबहि दूषण लागत तोही।

सुन–सुन सुन्दरि हित उपदेश

सपनेहु जनु हो विपद क्लेश।[1]

विभिन्न अवस्थाओं में प्रेयसी के कोमल हृदय में अपने प्रियतम के लिए जो नूतन भाव अपना खेल किया करते है, उन्हें विद्यापति ने अपने लेखनी के द्वारा चित्रित करने में अपूर्व रसिकता दिखालायी है।

कुसुम रचित सेजा, दीप रहल तेजा

परिमल अगर चन्देन।

जब–अब तुम मेरा निफले वहलि. बेरा

तबे–तबे पीडलि मदने।[2]

---

1. विद्यापति, गीत सग्रह–२४१
2. विद्यापित, पदावली–गीतसग्रह–२१७

राधा के वियोग म कृष्ण की अद्वैत भावना हो गयी है। जब कभी आर जिस किसी को वह देखते हैं उसे ही वह राधा मान लेते हैं। इस प्रकार विद्यापति जी व्यावहारिक उदाहरणों के द्वारा राधा के सौन्दर्य एवं उसके विरह को प्रदर्शित किया है।

राधा ने जीवन भर प्रेम के सरोवर में अपने को डुबा रखा है। अपने परिपक्व अनुभव को सुना रही है। हे सखि मेरे अनुभव को क्या पूछ रही हो? वही प्रीति है वही अनुराग है, जो क्षण–क्षण में नूतन होता है। रमणीयता का तो यही रूप है–"**क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया।**" हृदय को जुडाने वाला करोडों में एक ही मिलता है। प्रीति की यह विचित्र रीति है।

सखि! की पूछसि अनुभव मोय

से हो पिरीति अनुराग बखानत

.तिले नूतन होय।[1]

कृष्ण के विरह मे राधा नितान्त खिन्न है। राधा की सखियाँ विश्वास दिला रही हैं कि कृष्ण अवश्य पधारेगें। इनके मीठे बचनो पर राधा को विश्वास नहीं होता है।

संस्कृत साहित्य के राधा विषयक चित्रण का प्रभाव विद्यापति पर अवश्यमेव पडा है।

---

1. विद्यापति पदावली–गीतसगेह–४४

बँगला साहित्य में राधा–

चैतन्य देव के प्रभाव से बगाल का कोना–२ बैष्णव भावा स मुखरित हो उठा। राधा–कृष्ण की लीला–वर्णन मे, कीर्तन मे प्रेम स्निग्ध पदों की सृष्टि होने लगी। पदावली साहित्य बँगला भाषा का सबसे माधुर्यमय कमनीय साहित्य है जिसमे हृदय के कोमल भावो की अभिव्यञ्जना चन्डीदास, गोविन्ददास, ज्ञानदास, बलराम–दास आदि ने बडे ही सुभग सरल शब्दो मे की।

चण्डीदास की राधा भोलेपन की भव्य प्रतिमा हैं। उनकी हर एक बात से भोलापन टपकता है। वे युवावस्था में पदार्पण कर चुकी है, परन्तु यौवनसुलभ केलियों को जानती ही नही। श्रीकृष्ण का नाम सुनकर ही पागल हो गयी है और अपनी सखी से इस विषय मे गम्भीर जिज्ञासा कर रही है कि है सखि! किसने श्याम का नाम सुनाया। कान के भीतर से होकर वह हृदय मे प्रवेश कर गया और मेरे प्राणों को उसने व्याकुल कर दिया है। यह समझ मे नही आता कि श्याम नाम कितना मधुर हैं।[1]

राधा विलास की मूर्ति न होकर भक्ति की मूर्ति है। उसके विषय में कृष्ण विषयक रति का अखण्ड सागर लहरे मार रहा है। उसके समस्त व्यापार का एक ही प्रयोजन है कृष्ण के चित्त का अनुरूजन।

बँगला पदों का सबसे बड़ा संग्रह 'पदकल्पतरू' है। जिसके रचयिता/सग्रहकर्ता वैष्णवदास जी हैं। पदकल्पतरू की चार शाखाए–पल्लव नाम से है। इसमें राधा–कृष्ण की श्रृङ्गारिक लीलाओं का साम्राज्य है।

ज्ञानदास की राधा कहती हैं कि हे सखि! बन्धु का प्रेम कितना अनोखा होता है जैसे दरिद्र को सोना मिलने पर रात–दिन उसकी आंखे उसी पर लगी रहती है। उसी प्रकार बन्धु से दृष्टि हटाते ही हृदय मे बेचैनी आ जाती है।[2]

---

1. सइ केवा शुनाइल श्याम नाम?
   कानेर भीतर दिया मर मे पाशिलगो
   आकुल करिल मोर प्रान।
   ना जाति कतेक मधु श्याम नाम आछे गो
   बदन छाडिते नाहि पारे।
   जपिते–जपिते नाम अवश करिल गो
   केमने पाइव सइ तारे।।– चन्डीदास पद सग्रह–२०
2. सइ किवा से बधुर प्रेम
   आखि पालटिते थिर नाहि माने येन दरिद्रेर हेम।।
   ज्ञानदास पदावली/पदसग्रह–।।

पूर्वाञ्चलीय साहित्य में राधा

(i) उत्कल साहित्य में राधा–

उत्कल साहित्य में कृष्ण के साथ राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। जो राधाकृष्ण की मधुर लालाओ के कीर्तन से सुधालुप्त है। उत्कलीय वैष्णव धर्म के साथ राधा का अविच्छन्न सम्बन्ध है। जगन्नाथ जी स्वय राधा तथा कृष्ण युगल–मूर्ति के प्रतीक हैं। दिवाकर दास के शब्दों मे।

राधाटि स्वयं जगन्नाथ, राधाटि स्थूलरूपे स्थित

राधांगे वश जगन्नाथ, राधारू क्षरिछि जगत्[1]

राधा रूप जगन्नाथ से समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है। फलतः विश्व की सृष्टि में राधा ही मूल तत्व है।

दिवाकर दास ने राधा–कृष्ण की दार्शनिक स्वरूप की अभिव्यक्ति हो श्रीकृष्ण साक्षात् परमपुरूष है तथा राधा उनकी सहचारिणी माया है।[2] राधा कृष्ण के युगल गायत्री मत्र में भी इसी अभेद तत्व का उद्घाटन है।[3]

उत्कल साहित्य में राधा पराशक्ति के रूप में वर्णित है। यशोवन्त दास ने श्री कृष्ण के मुख से ही राधा के आदिमाता विश्वसृष्टि की जननी, शक्तिरूपा होने का सपष्ट निर्देश है।[4] राधा के स्वरूप बोधक पद–

अपरापंचमी आविर्भूता शक्ति परा। पच प्राण स्वरूपिणी देवी प्रेम भरा।।

सकल सम्पददात्री कृष्णभक्ति प्रदा। बाराह कल्परे राधा आविर्भूत सदा।।

पंचम राधिका देवी हेले अंशरूप। कला अंश रूपकला–अंश अंशाशस्वरूप।।

इस प्रकार राधा पराशक्ति रूप मे आविर्भूत होती है। वह पांचों प्राणों का रूप धारण करने वाली प्रेम की मूर्ति है। समस्त सम्पत्ति देने वाली है। कृष्ण चन्द्र को भक्ति प्रदान करने वाली है। उसका आविर्भाव वाराहकल्प में हुआ था। यह पूरा वर्णन ब्रह्म वैक्र्त पुराण के अनुसार है कि मूलतः प्रकृति एक होते हुए भी सृष्टि कार्य के पांच रूप धारण करती है– दुर्गा, लक्ष्मी,सरस्वती तथा राधा।[5]

---

1. दिवाकर दास कृत "जगन्नाथ चरिताम्बृत"–अध्याय।।
2. माया ब्रह्म श्री पर ब्रह्म रे,। अछन्ति श्री नीलाचल रे।।, दिवाकरदास कृत जगन्नाथ चरितामृत- अध्याय १२
3. ओ राधाकृष्णाय विद्महे, प्रेम रूपाय धीमाहि, तन्ये राधाकृष्ण' प्रचोदयात।।
   प. वलदेव उपाध्याय . भारतीय वाड्गमय मे श्री राधा, पृष्ठ ३१५से उद्धृत
4. श्री राधाकृष्ण नित्य स्थाने कथा ये पूर्वा विधाने, से कथा अगाध गहन थोकाए फुस मोर मन।
   तु आदिमाता शक्ति हेतु।। यशोवन्तदासः प्रेमभक्ति ब्रह्मगीत, पद–१६ से उद्धृत।
5. यशोवन्त दास प्रेमभक्ति ब्रह्मागीत' राधा पराशक्ति रूप वर्णन ब्रह्मवैक्र्तपुराण के समान है–
   गणेश जननी दुर्गा, राधा लक्ष्मी सरस्वती
   सावित्री सृष्टि विधौ प्रकृति पंचधास्मृता।। ब्रह्म वैक्र्तपुराण पालातखण्ड

पश्चिमाञ्चलीय साहित्य में राधा

(i) मराठी साहित्य मे राधाः–

पश्चिमाचलीय मराठी साहित्य –महाराष्ट्र मे मराठी, तथा गुजरात मे गुजराती, की प्राधानता है। गुजराती साहित्य मे तो राधा अपने पूर्व वैभव के साथ है, जबकि मराठी म वैसी नही लेकिन स्थिति अवश्यमेव है।

मराठी बारकरी (अर्थात् भागवत्) सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ रूक्मिणी की प्रतिष्ठा है। यहाँ प्राचीन सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय था जबकि अर्वाचीन महाराष्ट्र का भागवती सम्प्रदाय बारकरी है बारकरी–यात्रा करने वाला अर्थात् जो यात्रा करके श्रीकृष्णके प्रतीक विट्ठल जी का दर्शन–पूजन करता है।[1]

मराठी साहित्य में १४वीं शदी से राधा की प्रतिष्ठा काव्य जगत् मे पूर्ण रूपेण हो गयी थी।[2] **नामदेव** राधा–कृष्ण काव्य के पुरस्कर्ता प्रतीत होते हैं। और उनके ससर्ग से उनकी दासी **जनावाई** ने राधा का बडा ही श्रृंगारी वर्णन अपने पदों मे प्रस्तुत किया है। इस युग से राधा कृष्ण भक्ति का जो प्रवाह मराठी साहित्य में चल पडा। वह अविरल गति से आज भी प्रवाहित है। इस श्रृगारी वर्णन में पूर्व संयम का निर्वाह किया गया है। कहीं भी उच्छल अनियन्त्रित प्रेम की छटा नहीं है।

ज्ञानदेव जी ने मधुराभक्ति का सकेत ही नहीं प्रत्युत् स्फुट वर्णन किया है। कवि ने श्रीकृष्ण के बिना अकेले में रात्रि के न बीतने की शिकायत प्रख्यात अभंग मे किया है–

तुझ बीण एकला कृष्णा न गये राती।।[3]

यहाँ राधा नाम अभाव अवश्य है लेकिन गोपियो की विरह दशा, कृष्ण–मिलन की तीब्र उत्कण्ठा और आतुरता, श्रीकृष्ण की लालित्व लीला आदि का वर्णन बडे मधुर और हृदयावर्जक भाषा मे किया गया है।

---

1. प बलदेव उपाध्याय "भारतीय वाङमय में श्री राधा" पृष्ठ–३३६ (बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना प्रथम सस्करण १९६२) से उद्धृत।
2. वही; पृष्ठ ३४३ से उद्धृत।
3. ज्ञानदेव, अभङ्ग–८८५, पृष्ठ–३१०

पश्चिमाञ्चलीय साहित्य में राधा

(i) मराठी साहित्य में राधाः–

पश्चिमांचलीय मराठी साहित्य –महाराष्ट्र मे मराठी, तथा गुजरात मे गुजराती, की प्राधानता है। गुजराती साहित्य में तो राधा अपने पूर्व वैभव के साथ है, जबकि मराठी म वैसी नहीं लेकिन स्थिति अवश्यमेव है।

मराठी बारकरी (अर्थात् भागवत्) सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ रूक्मिणी की प्रतिष्ठा है। यहाँ प्राचीन सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय था जबकि अर्वाचीन महाराष्ट्र का भागवती सम्प्रदाय बारकरी है बारकरी–यात्रा करने वाला अर्थात् जो यात्रा करके श्रीकृष्णके प्रतीक विट्ठल जी का दर्शन–पूजन करता है।[1]

मराठी साहित्य में १४वीं शदी से राधा की प्रतिष्ठा काव्य जगत् में पूर्ण रूपेण हो गयी थी।[2] **नामदेव** राधा–कृष्ण काव्य के पुरस्कर्ता प्रतीत होते हैं। और उनके संसर्ग से उनकी दासी **जनावाई** ने राधा का बडा ही श्रृगारी वर्णन अपने पदों में प्रस्तुत किया है। इस युग से राधा कृष्ण भक्ति का जो प्रवाह मराठी साहित्य में चल पडा। वह अविरल गति से आज भी प्रवाहित है। इस श्रृंगारी वर्णन में पूर्व संयम का निर्वाह किया गया है। कहीं भी उच्छल अनियन्त्रित प्रेम की छटा नही है।

ज्ञानदेव जी ने मधुराभक्ति का संकेत ही नही प्रत्युत् स्फुट वर्णन किया है। कवि ने श्रीकृष्ण के बिना अकेले में रात्रि के न बीतने की शिकायत प्रख्यात अभंग में किया है–

तुझ बीण एकला कृष्णा न गये राती।।[3]

यहाँ राधा नाम अभाव अवश्य है लेकिन गोपियों की विरह दशा, कृष्ण–मिलन की तीब्र उत्कण्ठा और आतुरता, श्रीकृष्ण की लालित्व लीला आदि का वर्णन बडे मधुर और हृदयावर्जक भाषा में किया गया हैं।

---

1. प बलदेव उपाध्याय "भारतीय वाङमय में श्री राधा" पृष्ठ–३३६ (बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना प्रथम सस्करण १९६२) से उद्धृत।
2. वही, पृष्ठ ३४३ से उद्धृत।
3. ज्ञानदेव; अभङ्ग–८८५, पृष्ठ–३१०.

मीराबाई राजस्थानी व्रजभाषा तथा गुजराती त्रिभाषी कृष्णभक्त एव कवि ह। इनका भक्ति वैशिष्ट है कि ये राधा की दासी या मजरी बनकर श्रीकृष्ण वरण करण हेतु अग्रसर नही अपितु स्वय अपने को राधा की प्रतिनिधि मानती हैं।[1]

कृष्ण के विरह में बिलखने वाला राधा का यह चित्र किसे मुग्ध नहीं करता–

सजणी कब मिडश्या पिव म्हारां।
चरण कवड गिरधर शुख देखयॉ राखयॉ नेरा णेरा।।
णिरंखॉ म्होरा चाव घणेरा मुखडा देख्यां थारां।
व्याकुड प्राण धरयांणा धीरज बेग हरयांम्हा पीरां।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर थे विण तपण घणेरा।।[2]

मीरा को अपने प्रियतम से विछुड़ने की वेदना का निवेदन इतना मार्मिक है कि उसे सुनकर पत्थर का भी कलेजा पिघल उठता है। नरसी मेहता जी के पदो का विषय है–राधा तथा गोपियों का श्रीकृष्ण के साथ मिलन तथा विरह। इनका हृदय राधा–कृष्ण की भक्ति से नितान्त ओत–प्रोत था।

गुजराती राधा–कृष्ण काव्य में वात्सल्य तथा श्रृङ्गार का वर्णन सफलता पूर्वक हुआ है। राधा का विरह प्रकृति पर विशेष प्रभाव डालता है। राधा के स्वर को सुनकर पक्षी जाग उठते हैं यमुना डोलने लगती हैं सूर्य देवता प्रकाश करते हैं, कमल खिलते हैं, पदमिनी भयभीत हो जाती है[3]।

इस प्रकार गुजराती सहित्य राधा का लीला प्रसंग, विस्तार के साथ वर्णित है जो मोहक, मधुर एवं मनोहर है। राधा का सुरत वर्णन भी मर्यादा के भीतर ही हुआ है।

रासपूर्णिमा को जन्म लेने बाली मीरा राधिका जी का अवतार मानी गयी है–

"रास पूणो जणमियॉ माई राधिका अवतार।"[4]

---

1. पं० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा" पृष्ठ–३४६–५० (विहार राष्ट्रभाषा, पटना प्रथम सस्करण १९६२)।
2. मीरा कृत "मीरा स्मृति ग्रन्थ" पद सं० ७१
3. नरसी मेहता कृत 'काव्यसग्रह' पृष्ठ ६० से उद्धृत।
4. 'मीरा स्मृति ग्रन्थ' मे दिया गया पूरा पद, परिशिष्ट, पृष्ठ १६, पदसंख्या–६७ (ख), प्रकाशन कलकत्ता वंगीय हिन्दी परिषद, स० २००६.

मीरा की पदावली का विश्लेषण हम इस पद पर पहुँचाता है कि मीरा ने अपने को राधा के रूप में चित्रित किया है और इसलिए उनके पदो मे प्रेम का इतना अमल निरजन रूप हमे मिलता है तथा भावो मे इतनी अन्तरगता, मार्मिकता, हृदयावर्जकता, उपलब्ध होती हैं मीरा को निश्चय है कि उनका प्रियतम उनका एक जन्म का साथी न होकर जन्म–जन्म साथी है, जिसे वह दिन रात कभी भूल नहीं सकती है–

> म्हारो जणम जणम से साथी
> थावे णाविशरय्या दिण राती।
> थ्यां देख्यां विण कडणा पडताजाणे म्हारी छाती।
> पड़–पड थारां रूप निहारा णिरख णिरख मदमाती।।t[1]

फलतः ब्रजनन्दन के प्रति राधा के समान गिरधर नागर के प्रति मीरा का प्रेम स्वाभाविक है।

मध्यमञ्चलीय या ब्रज साहित्य में राधा

ब्रजमण्डल में कृष्णभक्ति उपासक–वैण्णव कवियों ने राधा कृष्ण लीला वर्णन में अपनी प्रतिभा का चूडान्त प्रदर्शन किया जिससे हिन्दी ब्रज भाषा साहित्य उदात्त एवं उन्नत बन गया। इस ब्रजभाषा साहित्य में अष्टछाप के कवियों की कमनीय रचनाएं निम्बाकी कवियों तथा राधाबल्लभी कवियों का योगदान वर्णनीय है। तीनों सम्प्रदायों के कवियों ने राधा कृष्ण की लीलाओं का उनके अनुपम सौन्दर्य का उनके धाम वृन्दावन की सुषमा का बडा ही रसग्राही वर्णन किया है।[2] इनकी कविता मे हृदय पक्ष का प्राबल्ध है। लेकिन कला–पक्ष की उपेक्षा नहीं अपितु उतना ही जितना वह हृदय की स्निग्ध तथा तरङ्गित करने में समर्थ होती हैं।

ब्रजभाषा में भागवत् का अनेकशः अनुवाद हुआ यथा लालचदास ने हरिचरित्र नाम से दशम स्कन्ध, चतुरदास ने एकादश स्कन्ध, विप्रनगरीदास ने सम्पूर्ण भागवत् का।

---

1. मीरा कृत पदावली का पद "पं० बलदेव उपाध्याय कृत भारतीय वाड्मय मे श्रीराधापञ्शती" पृष्ठ ३५० से उद्धृत।
2. प० बलदेव उपाध्याय कृत 'भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा", (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथमसस्करण–१९६२), पृष्ठ ३६३ से उद्धृत।

मीराबाई राजस्थानी ब्रजभाषा तथा गुजराती त्रिभाषी कृष्णभक्त एव कवि ह। इनका भक्ति वैशिष्ट है कि ये राधा की दासी या मजरी बनकर श्रीकृष्ण वरण करण हेतु अग्रसर नही अपितु स्वय अपने को राधा की प्रतिनिधि मानती हैं।[1]

कृष्ण के विरह में बिलखने वाला राधा का यह चित्र किसे मुग्ध नही करता–

सजणी कब मिडश्या पिव म्हारा।
चरण कवड गिरधर शुख देखयॉ राखयॉ नेरा णेरा।।
णिरंखॉ म्होरा चाव घणेरा मुखडा देख्या थारां।
व्याकुड प्राण धरयाणा धीरज बेग हरयाम्हा पीरा।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर थे विण तपण घणेरा।।[2]

मीरा को अपने प्रियतम से विछुडने की वेदना का निवेदन इतना मार्मिक है कि उसे सुनकर पत्थर का भी कलेजा पिघल उठता है। नरसी मेहता जी के पदो का विषय है–राधा तथा गोपियों का श्रीकृष्ण के साथ मिलन तथा विरह। इनका हृदय राधा–कृष्ण की भक्ति से नितान्त ओत–प्रोत था।

गुजराती राधा–कृष्ण काव्य में वात्सल्य तथा श्रृङ्गार का वर्णन सफलता पूर्वक हुआ है। राधा का विरह प्रकृति पर विशेष प्रभाव डालता है। राधा के स्वर को सुनकर पक्षी जाग उठते हैं यमुना डोलने लगती हैं सूर्य देवता प्रकाश करते है, कमल खिलते हैं, पदमिनी भयभीत हो जाती है[3]।

इस प्रकार गुजराती सहित्य राधा का लीला प्रसग, विस्तार के साथ वर्णित है जो मोहक, मधुर एवं मनोहर है। राधा का सुरत वर्णन भी मर्यादा के भीतर ही हुआ हैं।

रासपूर्णिमा को जन्म लेने बाली मीरा राधिका जी का अवतार मानी गयी हैं–

"रास पूणो जणमियॉ माई राधिका अवतार।"[4]

---

1. प० बलदेव उपाध्याय कृत 'भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा' पृष्ठ–३४६–५० (विहार राष्ट्रभाषा, पटना प्रथम सस्करण १६६२)।
2. मीरा कृत "मीरा स्मृति ग्रन्थ" पद स० ७१
3. नरसी मेहता कृत 'काव्यसग्रह' पृष्ठ ६० से उदधृत।
4. 'मीरा स्मृति ग्रन्थ' मे दिया गया पूरा पद, परिशिष्ट, पृष्ठ १६, पदसख्या–६७ (ख), प्रकाशन कलकत्ता वंगीय हिन्दी परिषद, स० २००६.

भागवत् की विख्यात् टीका श्रीधरी के आधार पर ब्रजभाषा गद्य मे अनेक स्कन्धा का कथासागर वर्णित है। ब्रजभाषा कवियो की अभिरूचि भागवत् जिसमें प्रमुखत: दशम स्कन्ध की ओर विशेष रही हैं।[1]

ब्रजभाषा की राधा सौन्दर्य तथा माधुर्य की प्रतिमा हैं। आह्लादिनी शक्ति के रूप चिन्तन में कवियों ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का यथाशक्ति उपयोग किया है। कवियो ने राधा–रूप को अभिव्यक्ति करने मे कोई भी पक्ष नहीं छोडा है। येन केन प्रकारेण उस अनुपम रूप की एक मधुर झॉकी प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य हैं।

बॅगला काव्य में राधा की महिमा अखण्डित तथा सर्वोपरि विराजमान है। राधा ही ब्रजनन्दन की एक मात्र सर्वाधिका प्राणोपमा प्रेयसी है। गोपियों तो राधा के इस सार्वभौम अधिकार के कारण मानो परिच्छिन्न तथा सर्वतः आवृत्त सी हो गयी हैं। परन्तु ब्रजभाषा के काव्यों में गोपियो की भी महत्ता है, राधा के व्यक्तित्व के चाकचिक्य मे वे कविदृष्टि से ओझल नहीं हैं। राधा का व्यक्तित्व विकसित है परन्तु इतना नहीं कि गोपियों की सत्ता का ही उन्मूलन कर बैठे।

बंगला के कवि जयदेव, विद्यापति, चन्डीदास द्वारा तथा चैतन्यमत में राधा परकीया रूप में चित्रित है परन्तु ब्रज साहित्य की कवियों की दृष्टि में राधा परम स्वकीया थी और इसी रूप में उनका चित्रण किया गया हैं।

(क) निम्बार्की कवियों की राधा

आचार्य निर्म्बाक युगल उपासना पद्वति के प्रथम वैष्णव आचार्य हैं, इन्होंने ने अपने दशश्लोकी मे सम्प्रदाय के लिए ध्येय तथा आराध्य राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप का

---

1. वही, पृष्ठ–३६५

भागवत् की विख्यात् टीका श्रीधरी के आधार पर ब्रजभाषा गद्य में अनेक स्कन्धो का कथासागर वर्णित है। ब्रजभाषा कवियो की अभिरूचि भागवत् जिसमें प्रमुखत दशम स्कन्ध की ओर विशेष रही है।[1]

ब्रजभाषा की राधा सौन्दर्य तथा माधुर्य की प्रतिमा है। आह्लादिनी शक्ति के रूप चिन्तन मे कवियो ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का यथाशक्ति उपयोग किया है। कवियों ने राधा–रूप को अभिव्यक्ति करने में कोई भी पक्ष नही छोडा है। येन केन प्रकारेण उस अनुपम रूप की एक मधुर झॉकी प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य है।

बॅगला काव्य मे राधा की महिमा अखण्डित तथा सर्वोपरि विराजमान हैं। राधा ही ब्रजनन्दन की एक मात्र सर्वाधिका प्राणोपमा प्रेयसी है। गोपियों तो राधा के इस सार्वभौम अधिकार के कारण मानो परिच्छिन्न तथा सर्वतः आवृत्त सी हो गयी है। परन्तु ब्रजभाषा के काव्यो मे गोपियो की भी महत्ता है, राधा के व्यक्तित्व के चाकचिक्य मे वे कविदृष्टि से ओझल नहीं है। राधा का व्यक्तित्व विकसित है परन्तु इतना नही कि गोपियों की सत्ता का ही उन्मूलन कर बैठे।

बगला के कवि जयदेव, विद्यापति, चन्डीदास द्वारा तथा चैतन्यमत में राधा परकीया रूप में चित्रित है परन्तु ब्रज साहित्य की कवियों की दृष्टि मे राधा परम स्वकीया थी और इसी रूप में उनका चित्रण किया गया हैं।

(क) निम्बार्की कवियों की राधा

आचार्य निम्बार्क युगल उपासना पद्वति के प्रथम वैष्णव आचार्य हैं, इन्होंने ने अपने दशश्लोकी में सम्प्रदाय के लिए ध्येय तथा आराध्य राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप का

---

1. वही, पृष्ठ–३६५.

जब तै निहारें इन ऑखिन सुजान प्यारे,

तब तै गही है डर आन देखिवे की आन।

रस भीजै बैननि कै रचै है तही

मधु मकरद सुधौ नावौ न सुनतकान।।[1]

घनानन्द ने अपने अनेक काव्यों[2] मे राधाजी के स्वरूप का, उनके अलौकिक प्रेम का, तथा ब्रजनन्दन में उनके तीव्रासक्ति का मधुर वर्णन उपस्थित किया है।

प्रियनन्दन का स्पर्श और रस राधा को ही प्राप्त हुए। वह अनुराग–मञ्जरी राधा के नख–शिख तक फलती–फूलती है। उनका मुख प्रिय रस के सुख का सदन है। वह आनन्द–घन राधा के आस पास घुमडता रहता है।[3]

इस प्रकार राधा के शास्त्रोल्लिखित समग्र गुणों[4] का उपन्यास घनानन्द ने बहुश: किया हैं।

(ख) राधा–बल्लभीय काव्य में राधा

ब्रजभाषा के राधावल्लभीय कवियो के सुर, लय अन्य साम्प्रदायिक कवियों के सुर से इतना विलक्षण है कि पद के श्रवणमात्र से आलोचक की हृत्तन्त्री निनादित हो उठती है। इन कवियों का सिद्वान्तपक्ष है–राधा–माधव की निकुंज लीला तथा नित्यविहार।

राधा वल्लभीय कवियों में तीन विशेष प्रख्यात हैं– हितहरिवंश, हरिराम व्यास, तथा ध्रुवदास। श्रीहित हरिवंश जी तो निःसन्देह ब्रजभाषा के प्रथम कोटि के कवि हैं।

श्री हितहरिवंश के द्वारा नित्य–विहार का वर्णन कितना आकर्षक है।– सुन्दर निकुंज में शारदीपूर्णिमा को राधा–कृष्ण का मिलन हुआ, शीतलमन्द सुगन्ध पवन वह रहा था, कोमल किसलय दलों से शय्या तैयार की गयी थी। मानवती राधिका उस पर बैठी थी।

---

1. घनानन्द, सुजानहित, कविन्त–१०१
2. घनानन्द, कृत 'प्रियाप्रसाद' ग्रन्थावली, पृष्ठ–२७७–२७६
3. घनानन्द; पदावली, पद–५३४
4. डा० मनोहर लाल गौड प्रणीत 'घनानन्द तथा स्वच्छन्द काव्यधारा पृष्ठ–४११–४१३ (प्रकाशन–नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत–२०१५)।

जब तै निहारे इन ऑखिन सुजान प्यारे,
तब तै गही है डर आन देखिबे की आन।
रस भीजै बैननि कै रचै है तही
मधु मकरद सुधौ नावौ न सुनतकान।।[1]

घनानन्द ने अपने अनेक काव्यों[2] में राधाजी के स्वरूप का, उनके अलौकिक प्रेम का, तथा ब्रजनन्दन मे उनके तीव्रासक्ति का मधुर वर्णन उपस्थित किया है।

प्रियनन्दन का स्पर्श और रस राधा को ही प्राप्त हुए। वह अनुराग–मञ्जरी राधा के नख–शिख तक फलती–फूलती है। उनका मुख प्रिय रस के सुख का सदन है। वह आनन्द–घन राधा के आस पास घुमडता रहता है।[3]

इस प्रकार राधा के शास्त्रोल्लिखित समग्र गुणों[4] का उपन्यास घनानन्द ने बहुश· किया है।

(ख) राधा–बल्लभीय काव्य में राधा

ब्रजभाषा के राधावल्लभीय कवियों के सुर, लय अन्य साम्प्रदायिक कवियो के सुर से इतना विलक्षण है कि पद के श्रवणभात्र से आलोचक की हृत्तन्त्री निनादित हो उठती है। इन कवियों का सिद्वान्तपक्ष है–राधा–माधव की निकुंज लीला तथा नित्यविहार।

राधा वल्लभीय कवियों में तीन विशेष प्रख्यात हैं– हितहरिवंश, हरिराम व्यास, तथा ध्रुवदास। श्रीहित हरिवश जी तो नि.सन्देह ब्रजभाषा के प्रथम कोटि के कवि है।

श्री हितहरिवश के द्वारा नित्य–विहार का वर्णन कितना आकर्षक है।– सुन्दर निकुंज में शारदीपूर्णिमा को राधा–कृष्ण का मिलन हुआ, शीतलमन्द सुगन्ध पवन वह रहा था, कोमल किसलय दलों से शय्या तैयार की गयी थी। मानवती राधिका उस पर बैठी थी।

---

1. घनानन्द, सुजानहित, कविन्त–१०१
2. घनानन्द, कृत 'प्रियाप्रसाद' ग्रन्थावली, पृष्ठ–२७७–२७६
3. घनानन्द, पदावली, पद–५३४
4. डा० मनोहर लाल गौड प्रणीत "घनानन्द तथा स्वच्छन्द काव्यधारा पृष्ठ–४११–४१३ (प्रकाशन–नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सवत–२०१५)।

(ग) अष्टछापी काव्य में राधा

अष्टछाप के कवियो ने युगल उपासना को भी अपने काव्यां म महत्व प्रदान किया है। एसा प्रतीत होता है कि युगल उपासना मे सिद्धान्त निम्वार्की कवियो का प्रभाव अष्टछापी कवियो पर पडा है।

रस ही राधा रानी का जीवन है। रस मे आकण्ठ मग्न रहने पर भी राधा को रसराज तथा रासेश्वर को छोडकर और कोई वस्तु अच्छी ही नही लगती। राधा के कमनीय कलेवर का तथा रूप लावव्य से मण्डित श्यामसुन्दर के श्रीविग्रह का एकत्र तादात्म्य हो गया है गाढ आलिगन मे। इसी प्रकार राधा और कृष्ण दो तत्व प्रतीत होते हैं। परन्तु वे है वस्तुत एक ही अभिन्न तत्त्व। अष्टछाप के कवियों की यही मौलिक धारणा है।[1]

नन्ददास का राधा तत्त्व

अष्टछापीय कवियों मे नन्ददास जी का राधा–कृष्ण के आध्यात्मिक रूप के वर्णन के प्रति विशेष अभिरूचि दृष्टिगोचर होती हैं। इसी आध्यत्मिक अभिरूचि की अभिव्यञ्जना में दो काव्य का निर्माण किये– (१) रासपञ्चाध्यायी जो भागवत के दशम् स्कन्ध, अध्याय २६–३३ तक ५ अध्यायों को भाव अनुवाद। (२) सिद्धान्तपञ्चाधायी– तो राधा–कृष्ण, रास, तथा ब्रज् के आध्यत्मिक स्वरूप के विवेचन से आद्यन्त ओत प्रोत हैं।

गोपियो को नन्ददास आध्यत्मिक दृष्टि से "भगवान की शक्तियॉ" मानते हैं। रास के समय ब्रज की सुन्दरियो से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण उसी प्रकार शोभित होते थे, जिस प्रकार परमात्मा अनेक शक्तियों से आवृत्त होकर उद्भासित होता है–

पुनि ब्रजसुन्दरि संग मिलि सौहे सुन्दर वर यौ

अनेक शक्ति करि आवृत्त सौहै परमात्म ज्यौ।[2]

---

1. प० बलदेव उपाध्याय कृत 'भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा', 'अष्टछापी काव्य मे राधा प्रकरण' पृष्ठ–४१३, ४१४ से उद्धृत (प्रकाशनं विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथमसस्करण–१६६२)।
2. नन्ददास, सिद्धान्तपञ्चाध्यायी, रौला–१०५

जिस प्रकार काई महान् उपासक ज्ञानादिको से सुशाभित होता हे उसी प्रकार रस से आत्लुत गोपी मनमोहन से मिलकर शोभित होती थीं।[1] गापियो का मार्ग विशुद्ध प्रम का मार्ग था– विधि निषेध से नितान्त विहीन तथा लोकाचार से एकान्त उदान्त।

नन्ददास ने ब्रज विरह को 'विरह मजरी' काव्य में चार प्रकारो म विभक्त किया हैं। वह इनकी मौलिकता का द्योतक है– प्रत्यक्ष, पलकान्तर, वनान्तर, तथा देशान्तर। इन विरह भेद का सम्बन्ध ब्रजलीला से ही है, साधारण मानव से इसका कोई सम्बन्ध नही है।[2] इस विरह में दिव्यता है, अलौकिकता है तथा विलक्षणता है। सामान्य दृष्टि से उन्माद कोटि मे आता है परन्तु वृन्दावन की छाया मे इनका पूर्ण साम्राज्य हैं। यह भक्तो के भावुक हृदय के द्वारा गम्य वस्तु है, एकान्त गोप्य तथा गोपनीय। नन्ददास की राधा परम स्वकीया है। राधा तथा कृष्ण के विवाह का बडा ही सजीला वर्णन पदावली में मिलता है।

परमानन्ददास की राधा

परमानन्ददास जी काव्य प्रतिभा के धनी थे। अष्टछाप के कवियो मे केलव सूरदास से उनका स्थान द्वितीय कोटि का माना जा सकता हैं, अर्थात् उनका स्थान सूरदास के बाद आता है। उनका परमानन्द सागर विषयक्रम की दृष्टि से सूरसागर का ही रूपान्तर है। इस पदावली में राधा–रानी अपनी रूपच्छटा तथा निर्मल प्रेम माधुरी के सग पूरे वैभव के साथ विराजती है। राधा के शोभा वर्णन मे कवि की प्रतिभा द्रष्टव्य है–

अँमृत निचोड़ कियौ इक ठौर

तेरौ बदन सँवारि सुधानिधि, ता दिन विधना रची न और।।

सुनि राधे का उपमा दीजै, श्याम मनोहर भये चकोर।

सादर पियत, मुदित तोहिदेखत, पतत काम उर नन्द किशोर।।[3]

आशय स्पष्ट है कि राधा के वदन चन्द्र की रचना कर ब्रह्मा न उस दिन किसी अन्य वस्तु का निर्माण ही नही किया। उन्होने अमृत को निचाडकर एक स्थान पर रख दिया और वही है राधा–रानी का वदनसुधाकर। इस उक्ति की सहज मिठास देखने योग्य है।

श्रीब्रज किशोर से प्रेम करने पर राधा की दशा ही विचित्र हो गयी है। उस दिन से उनकी ऑखो ने नीद का सुख नही उठाया, चित्त सदा चाक पर चढे के समान डोलता रहता है।

सूरदास की राधा

सूरदास ने श्रीराधिका के चित्रण मे भगवान् ब्रजनन्दन के प्रति उनके विमलस्नेह तथा उनके वियोग तथा विरह के वर्णन में अपनी निर्मल प्रतिभा का विलास दिखलाया है। सूर के सामने राधा–कृष्ण के लीला प्रसग का एक व्यापक क्षेत्र था जिसका कोना–कोना उन्होने अपने प्रतिभा चक्षुओ से निरीक्षण किया था। सूरदास ने राधा के मनोभावो का, स्नेह की विभिन्न भावना भूमि का जितना सुचारू, सरल तथा सुरस वर्णन उपास्थित किया उतना कही किसी भाषा–भाषी कृष्ण कवि द्वारा चित्रित नहीं किया गया।[1]

श्रीकृष्ण के साथ राधा का मिलन उनके जीवन की आकस्मिक घटना न होकर एक चिरपरिचित घटना है परन्तु उसमें नित–नूतनता है। जागते सोते कृष्ण ही राधा के सर्वस्व है। बाल्यकाल से आरम्भ कर जीवन के अन्तिम क्षण तक सूरदास ने राधा के भावों को अपने प्रतिभा नेत्रो से निरखा है और उन्हें अभिव्यक्त किया है।

सूरदास की राधा एक समग्र नारी हैं। जिसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है, वह वृन्दावन की कुन्जो मे विचरने वाली प्रेमरस से आप्लुत गोपिका है जिसका जीवन ब्रजनन्दन मे केन्द्रित है। इस प्रकार सूर की राधा लौकिकता तथा अलौकिकता की, प्रेम तथा सन्यास की, स्नेह के बैमल्य की तथा प्रीति के उच्छवास की एक निर्मल लीला स्थली है इसमे सन्देह की गुन्जाइश नहीं है।

---

1. प० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय बाङ्मय में श्री राधा" के सूरदास की राधा प्रकरण, –पृष्ठ–४२० से उदधृत।

सूरदास के राधाविरह मे इतनी स्वाभाविकता हे, कृत्रिमता की गन्ध भी नही है। गोपियो का भोलापन उनके वचनो मे इतनी रूचिरता अभिव्यक्त होता है कि उनके विरह की टीस सहृदयो के हृदय को बेधती हैं। गोपियां कृष्ण को नन्दबाबा के यहॉ पहुँनई के लिए बुलाती है जिसे उन्हे देखने की साध पूरी हो–

बारक जाइयौ मिलि माधौ।

को जानै तन छूटि जाइगौ सूल रहै जिय साधौ।

पहुनैहुँ नन्दबाबा के आवहु, देखि लेऊँ पल आधौ।

मिलैही मै विपरीत करी, विधि होत दरस को बाधौं।।

सो सुख सिव सनकादि न पावत, जो सुख गोपिन लाधौ।

सुरदास राधा विलपति है, हरि को रूप अगाधौ।।[1]

राधा अपनी सखी से कृष्ण के गॉव का नाम तथा संकेत पूछती है जिसके उत्तर मे वह भोलेपन से नामधाम का पता बताती हैं–

देखि सखी उत है वह गाऊँ
जहॉ बसत नन्दलाल हमारे, मोहन मथुरा नाऊँ।।[2]

राधा के विरह का प्रभाव प्रकृति को अछूता नहीं छोडता। वह कमनीय यमुना विरह के कारण काली पड़ गयी हैं।[3]

कृष्ण के वियोग में राधा की दीन दशा का बडा ही भव्य वर्णन है। भारतीय प्रेम पद्धति के समग्र प्रतीकों का उपयोग किया गया है।

"जब तैं बिछुरैं कुन्जबिहारी।"[4]

---

1. सूरदास, सूरसागर, पद सख्या–३८५०
2. प० बलदेव उपाध्याय कृत, भारतीय बाड्मय मे श्रीराधा (प्रकाशन–विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९६२) पृष्ठ–४२१ से उद्धृत।
3. वही
4. सूरदास, सूरसागर, पद सख्या–३८७५

सूरसागर मे सूर ने रुक्मिनी और राधा क भेंट का वर्णन इन सरस शब्दो म किया है–

रुक्मिनी राधा ऐसी भेटी।
जैसे बहुत दिनन की विछुरी एक बाप की बेटी।।
एक सुभाव एक वय दोऊ दोऊ हरि को प्यारी
एक प्रान मन एक दुहुनि को तन करि दीसतिन्यारी।।[1]

माधव के साथ राधा का मिलन बडा ही संयत, हृदयावर्जक, तथा मनमोहक है–

राधा माधव भेट भई।
राधा माधव, माधव राधा कीट भृगगति हैं जु गई।
माधव राधा के रग राचै, राधा माधव रग रई
माधव राधा प्रीति निरन्तर रसना करि सो कहि न गई।।[2]

मध्ययुगीन भक्ति साहित्य राधा–कृष्ण काव्य का महनीय स्रोत या आधार श्रीमद्भागवतपुराण तथा उसका दशम स्कन्ध। उसमे पवित्र प्रेम की पूर्णतम प्रतिभा का ही अभिधान (नाम) है–राधा। राधा एक आदर्श है राधा विमल प्रेम की प्रतिनिधि देवी हैं, वह आह्लादिनी शक्ति है जो कृष्ण को भी आह्लादिती करती है। वह निर्मल दर्पण है जिसमे प्रतिविम्वित अपने रूप को देखकर वह नन्दकिशोर अपने सौन्दर्य को समझने में समर्थ होता हैं। वह ऐसी विमल प्रेमिका है जिसे अपने प्रियतम से पृथग्भाव की भी कल्पना असम्भव है

श्वास का चलना ही प्राणी के जीवन की पहचान है। कृष्ण का चलना ही राधा के जीवन का सर्वस्व है[3]–

सखि हे चरतु यथेष्ट
वामो वा दक्षिणो वाऽस्तु।
श्वास इव प्रेयान मे
गतागतैर्जीवत्यैव।।

---

1. सूरदास, सूरसागर, पद संख्या–४६०६
2. सूरदास, सूरसागर, पद सख्या–४६१०
3. प० बलदेव उपाध्याय कृत, भारतीय बाङ्मय मे श्रीराधा, पृष्ठ– ४२७ से (प्रकाशन–विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, १९६२) उद्धृत।

दक्षिणाञ्चलीय साहित्य में राधा–तत्त्व

भारत वर्ष दक्षिण अञ्चल का साहित्य द्राविड साहित्य के नाम स विख्यात है। सीमित अर्थ मे द्राविड साहित्य तमिल का सूचक है परन्तु विस्तृत रूप से द्राविड साहित्य के अन्तर्गत चार विभिनन साहित्य अन्तर्भूत है–

(१)	तमिल साहित्य	–	तमिलनाडु प्रान्त
(२)	तेलगू साहित्य	–	आन्ध्रप्रदेशिय क्षेत्र
(३)	कन्नड साहित्य	–	कर्नाटक प्रान्त
(४)	मलयालम साहित्य	–	केरल प्रान्त।

(i) तमिल साहित्य–

तमिल साहित्य का प्राचीनतम् प्राप्त ग्रन्थ तोलकाप्पियम् है जो तृतीय सगम–चतुर्थ शती ई० पू० है इसके अतिरिक्त मधुर काव्य ग्रन्थ परिपाडल है। सम्पूर्ण तमिल सहित्य मे कण्णन एव नप्पिनै की प्रेम विषयक कथा विविध रूपो मे वर्णित है। नपिनै तथा कण्णन के पाणिग्रहण का प्रसग आलवार युग की नितान्त प्रख्यात घटना है।[1]

इस प्रकार सम्पूर्ण तमिल साहित्य में राधा का नाम नही मिलता। परन्तु नाप्पिनै को कण्णन (कृष्ण) की प्रेयसी होने से राधा का प्रतिनिधि माना जा सकता है। नाप्पिनै ही दक्षिणी राधा है ऐसा कहा जा सकता है।

(ii) कन्नड़ साहित्य में राधा

कन्नड साहित्य का उदय जैनमतावलखी ग्रन्थ प्रणयन से शुरू होता है। बाद में वीरकौवमत का उदय कन्नडसाहित्य में होता हैं। इसकी प्रतिक्रिया स्परूप मध्यवाचार्य को द्वैतवारी वैष्णवधर्म उदित हुआ। इसके अतिरिक्त कन्नडसाहित्य में वैष्णव भक्ति का दूसरा स्रोत है– पढरपुर के विट्ठल की उपासना।[2]

१५वी–१६वी शती में निर्मित कन्नड़ काव्यो में श्रीकृष्ण तथा गोपियों की वृन्दावन लीला अपने पूर्ण वैभव के साथ संक्षेप में चित्रित है लेकिन राधा का उल्लेख यत्र तत्र सामान्य रूप मे है कृष्ण की प्रेयसी रूप में नहीं।[3]

---

1. प० बलदेव उपाध्याय कृत "भारतीय वाड्मय मे श्रीराधा" पृष्ठ–३६३ (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना प्रथम सस्करण–१९६२) से उद्धृत।
2. आचार्य मोहन शर्मा हिन्दी को मराठी सन्तो की देन (विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५७) पृष्ठ–७०–७२ से उद्धृत।
3. क्यो गोपाल बुलाता है सखी री,
   सकेतो से बुलाता है मुझको
   ऑख मार बुलाता है सखी री,
   रूप लावण्य वर्णन कर अतिमेरा
   हार दिखा बुलाता है सखी री ।।–श्रीपुरन्दर दास के भजन– पृष्ट–८७ से उदृधृत।

शिवशरण नामक वीरशैवमत के भक्तो की कतिपय रचनाएँ माधुर्य भाव के स्पष्टत प्रकट करती है। अक्क महादेवी नामक महिला सन्त का वही स्थान कन्नड साहित्य मे हैं, जा हिन्दी साहित्य मे मीरॉबाई का है।

(iii) तेलगू साहित्य

आन्ध्रप्रदेशीय तेलगू साहित्य में राधा तथा कृष्ण की श्रृङ्गारी लीलाओ का वर्णन बहुत कम पाया जाता है। शिष्ट तेलगू साहित्य में राधा ने के बराबर है परन्तु जानपद गेय पदो मे तथा कीर्त्तनो मे राधा, गोपी, तथा कृष्ण के श्रृङ्गार का चित्रण पर्याप्त मात्रा मे तेलगू साहित्य मे मिलता ही है।

महाकवि पोताना रचित आन्ध्रभागवतम् श्रीमद्भागवत्पुराण का अनुरूप पद्यानुवाद है–

जयति तेऽधिक जन्मना ब्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासमस्ता विचिन्वते।।[1]

(iv) मलयालम साहित्य–

केरल प्रान्त की भाषा मलयालम हैं। इस भाषा में उपनिषद साहित्य कैरली साहित्य कहा जाता है। केरल दक्षिण भारत में श्रीकृष्ण भक्ति प्रचार–प्रसार का एक प्रधान स्थल है। कैरली साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्यो का प्राचुर्य तथा लोकप्रियता श्लाधनीय है ऐसे काव्य मे राधा के प्रेम विलास की चर्चा नैसर्गिक है।

चेरूश्शेरी ने गोपियो के विरह का वर्णन बडे ही भावोत्पादक शब्दो मे किया है– "हे कृष्ण, आपकी हमारे लोगों के प्रति सहानुभूति कहाँ गयी? जिस प्रकार चातक धनश्याम की प्रतिज्ञा करता रहता है, उसी प्रकार हम अपने दर्शन के लिए उत्कण्ठित है। जल से अलग होकर जिस प्रकार मछलियॉ छटपटाती रहती है, वैसे ही हम भी आपके बिना व्याकुल है। हम पर कृपा की वर्षा कीजिए। यदि हम से कोई कमी हो तो उसे आप बता सकते है। आप हमे क्यो इस प्रकार दुःख दे रहे हैं।[2]

---

1 श्रीमद्भागवत्, दशम स्कन्ध ३१वॉ अध्याय–रासपञ्चाश्यायी गोपी गीत का तेलगू अनुवाद आन्ध्र–भागवत्–गोपिकागीत से उद्धृत।

2. कार वर्ण्ण कण्ण कटल वणर्ण काणइओ
कारूव्य माण्डोरू कारवर्णने
एडडविलुल्लोस कारूणरू मिन्निपो
लेऽडानु पोयत रिञआपो नी– नेरूश्शेरी कृत कृष्णगाथा काव्य मूल मलयालम गीत से उद्धृत।

श्रीराधापञ्चशती में राधा का स्वरूप :–

भारतीय वाड्मय मे राधा के स्वरूप की ऐतिहासिक, धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से समीक्षा के फलस्वरूप श्रीराधापञ्चशती काव्य मे राधा का स्वरूप विवेचन अभीष्ट है। जो निम्न है –

भारतीय वाड्मय मे श्री राधा जी के स्वरूप विकास को ऐतिहासिक दृष्टि से तीन स्तर पर विभक्त किया गया है।

प्रथम स्तर पर तो राधा नाम रहित तथा विशेष इतिहास विहीन श्री कृष्ण की विशेष प्रेमपात्री गोपी रूप में वर्णित है। जो ईसा पूर्व दूसरी एवं तीसरी शदी का प्रतिनिधित्व करती है। **द्वितीय स्तर** पर राधा नाम से श्री कृष्ण की प्रिया के रूप में संस्कृत में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। जो प्रथम शती ईस्वी पूर्व से १३वीं – १४वीं शदी का प्रतिनिधित्व करती है। इस दीर्घकाल में प्राकृत तथा संस्कृत साहित्य राधा की कमनीय श्रृङ्गारिक लीलाओं से भलीभॉति परिचित है। यहॉ राधा कृष्णा की प्रियतमा है, प्रेम का आधार है, किन्तु आह्लादिनी शक्ति के रूप मे नही पहुँची।

बींसवी शदी की रचना श्रीराधापत्र्चशती तो राधा के विकास के **तृतीय स्तर** का प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ राधा के स्वरूप विकास का तृतीय स्तर तो १६वीं १७वीं से प्रारम्भ होकर वर्तमान समय तक का प्रतिनिधित्व करता है। तृतीय स्तर में तो श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। भगवती राधा ही श्रीकृष्ण को ह्लादिनी शक्ति हैं। राधा से ही श्रीकृष्ण आह्लाद के समुद्र में डूबे रहते हैं। राधा शक्ति है और श्री कृष्ण शक्तिमान है। शक्ति और शक्तिमान में अविनाभाव सम्बन्ध होता है। एक के बिना दूसरा विशिष्ट नहीं रहता। जैसे–अग्नि की शक्ति दाहकता है।–

यथा— अजासि राध ! त्वमनादिसिद्धा
ब्रह्मस्वरूपासि हरेरभिन्ना।
योगीश्वरास्त्वत् कृपया लभन्ते।
पद प्रपन्नाय विधेहि तन्मे।।[1]

हे राधा ! तुम अजा हो अर्थात् तुम्हारा कभी जन्म नही होता। तुम अनादिसिद्ध हो। इसलिए नित्य हो। तुम्हारा कभी विनाश नहीं है। तुम साक्षात् परब्रह्म हो, तुम श्रीकृष्ण से अभिन्न हो। श्री कृष्ण शक्तिमान है। तुम उसकी आह्लादिनी शक्ति हो। बडे—बडे योगीश्वर तुम्हारी कृपा से ही परम पद को प्राप्त करते है। मै भी तुम्हारी शरण मे हॅू। कृपा करके मुझे भी वह परम पद प्रदान करो।

पूरे श्री—राधापञ्चशती काल मे राधा की स्तुति श्री कृष्ण की शक्ति रूप में, अद्वय तत्व' अथवा अभेद दृष्टि से की गयी है।[2] यथा —

निष्यन्द प्रतिभाति मे श्रुति वचोदुग्धाम्बुधे· शीतलो
ब्रह्मास्त्रं निशित द्विषा निहननेऽविद्या दिरूपात्मनाम्।
गोविन्दस्य सदा जपस्य विषयः प्रेमाब्धिसंवर्धको
राधे ! मेऽभ्युदय तनोतु सततं त्वन्नामचिन्तामणिः।।[3]

श्री राधा भगवान् की महाभावस्वरूपिणी आह्लादिनी शक्ति है जो भगवान् श्रीकृष्ण को आह्लादित करती है। जिसके द्वारा भगवान् अपने भक्तों को नित्य आह्लाद प्रदान करते है। राधा की यह मीमासा निःसन्देह गौडीय गोस्वामियों प्रमुखतः रूपगोस्वामी तथा जीवगोस्वामी की दार्शनिक बुद्धि की दिव्य बिभूति हैं। तान्त्रिक शक्तिवाद के सिद्वान्त से प्रभावित तृतीय स्तर की इस राधा की व्याख्या इस युग से पहले मानने मे निर्णायक प्रमाणों का अभाव तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भयकर भूल होगी।

---

1. प्रो० रसिक बिहारी , श्री राधापञ्शती , श्लोक ३६४
2. प्रो० जोशी, श्रीराधापञ्चशती श्लोक ५६ से ७० तक, १३६, १३७, १३८, ३६५ से ३७४ तक
3. वही श्लोक – ३७१

फलत राधा तत्त्व का पूर्ण विकास या चरमोत्कर्ष चतैन्यमहाप्रभु के पार्षद, भक्त गास्वामी आचार्यो रुपगोस्वामी तथा जीवगोस्वामी के प्रखर पाण्डित्य का परिणतफल है। इसी राधा विषयक प्रगितशील मार्ग का अनुकरण करके प्रो० रसिक विहारी जोशी जी ने श्रीराधापत्र्चशती काव्य रूप मे राधा के विविध स्वरूपो एवं भावों का चूडान्त निदर्शन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मेरी दृष्टि से ऐसी मान्यता यर्थाथता से बहुत दूर नही होगी।

राधा श्रीकृष्ण की शक्ति होने से राधा की उपासना भक्ति स्तुति श्रीकृष्ण की उपासना आदि का सूचक है। इसलिए केवल राधा की भक्ति भी सार्थक मानी गयी है। पूरा का पूरा काव्य उपर्युक्त तथ्य का शत–प्रतिशत समर्थक है।

यथा –

यास्मिन्नास्ति कणः क्वाचिद् भगवति प्रेम्णो लधीयानपि
यस्मिन् केवलमस्ति शुद्धशरण ते पादयो राधिके!
तस्य त्वं शरणं भवस्यनुदिनं मादृक्षजीवस्य हे
राधे तादृशजीवमार्गणपरा लोके प्रसिद्धि गता।।[1]

अर्थात् जिस व्यक्ति में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम का छोटा सा कण भी नहीं है फिर भी जिसने राधा के चरणों में शुद्ध शरण ग्रहण की है ऐसे व्यक्ति की तुम सदैव रक्षक सिद्ध होती है। ऐसा संसार में प्रसिद्धि है।

"राधा जी में तो अनोखी कृपा की सरिता बहती रहती है जो अनन्त श्रीकृष्ण द्वारा दण्डित व्यक्ति पर भी अनुग्रह ही करती है। राधा की ऐसी कृपा सर्वथा पूज्य एवं उपास्य है क्योंकि श्री कृष्ण तो केवल शिष्टजनों को कृपारस से सींचते रहते हैं तथा दुष्टों को दण्ड देते रहते हैं।"[2]

राधा जी के चरण कमलों, नेत्रों, करुणा–कटाक्ष एव मन्दस्मित का माहात्म्य एवं प्रभाव अनन्त एवं असीम है। जो राधा के स्वरूप के तृतीय स्तर के चरमोत्कर्ष को प्रकट करता है।[3]

---

1 प्रो० जोशी श्री राधापञ्शती श्लोक – २६०

2 दुष्टाय दाति कठिनं भुवि दण्डदानं
शिष्टाय सित्र्चति कृपारसमप्यनन्त
राधे त्वयि प्रवहतीह कृपापगा सा
याऽनुग्रह प्रकुरुते हरिदण्डितेऽपि।। श्री राधापत्र्चशती – ३३४

3 प्रो० जोशी , श्री राधापत्र्चशती . श्लोक १ से १३, ३२ ११५, ११६, ११६, १२६, १६०, २४, २२८, २३५, २६५, ३४५, ३४७, ३८४, ४०६, ४२६, ४४१, ५०३।।

भारतीय वाड्मय मे धार्मिक दृष्टि स राधा के विविध स्वरूप का विवेचन किया जा चुका है। इसी दृष्टि से श्रीराधापञ्चशती काल मे राधा के विविध स्वरूप की समीक्षा अभीष्ट है। बींसवी शदी का राधाकृष्ण विषयक श्रीराधापञ्चशती काव्य मे ज्योतिष, योग, शिव, शक्ति तत्वो के राधां स्वरूप का तथा आलवार सम्प्रदाय, निम्र्बाक सम्प्रदाय, बल्लभ सम्प्रदाय, राधा वल्लभ, सम्प्रदाय, चैतन्य आदि सम्प्रदायो में वर्णित राधा का समन्वित स्वरूप स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

ज्योतिष तत्व में राधा के भाव को स्पष्ट किया गया। कृष्ण सूर्यः राधा तारा विशेष विशाखा एवं गोपियॉ तारा है जिनका पूर्णिमा को मिलन सहज एवं स्वाभाविक है। इसी मिलन को श्री राधापञ्चशती मे भी वर्णन है। यथा –

विमृश्य श्रीराधा जनविरहित नन्दनिलय

प्रक्ष्टिान्तर्दृष्ट्वा हरिमथ यथा चित्रलिखिता।

तदानी तन्नेत्रं विकसिततरं स्निधममलं

ह्रिया प्रेम्णा पूर्ण हरिनयनयारेव खचितम्।।[1]

यहॉ श्री राधा रानी नन्द बाबा के घर गयी तो अन्दर अकेले श्री कृष्ण को देखकर गुप्त मिलन के कारण सकुचाकर चित्रलिखित सी रह गयी। उसके नेत्र प्रसन्नता से निर्मल, स्निग्ध, लज्जा एवं प्रेम से आप्लावित हो गये। मानो राधा के नेत्र श्री कृष्ण के नेत्रो मे जड दिये गये हो।

योग तत्व में राधा की निकुञ्ज लीला का वर्णन चक्ररूपा है कमलों से के उपवन में जब श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं तब राधा भी वहाँ पहुॅचती हैं, दोनों का मिलाप होता है। यह कुण्डली स्वरूपा राधा सदैव अपने प्रियतम के मस्तिष्क के आस पास मॅडराती रहती है। राधापञ्चशती में भी अनेकश. निकुञ्ज लीला का ह्रदयावर्जक चित्रण द्रष्टव्य है।[2]

1. प्रो० जोशी श्रीराधापञ्चशती–श्लोक–१७३
2. प्रो० जोशी श्री राधापञ्चशती श्लोक – ७१, ७६, १६१, १६८, १७२, ३३७, ३३८, ३५६, ३६०ए ३६८.

यथा –

पुष्य चेतुमिवागता हरिसखी राधा निकुञ्जे तटं
कालिन्द्या अवलोक्य कन्दुकमिषाच्छुड्गार मूर्तिहरि ।
स्तध्वा तां सहसा स्खलद्रसनया कुत्रास्ति मे कन्दुक
प्रोच्योरोजमपि स्पशत् तरलिते नेत्रे प्रियायास्तदा।।[1]

श्रृगार की साक्षात् मूर्ति श्रीकृष्ण यमुना तट पर निकुञ्ज मे फूल तोडती प्रिय सखी को देखकर गेद चोरी के बहाने के आरोप से रोक लिया तथा कामेच्छा से हठपूर्वक पूछने का बहाना करके स्तनादि सम्भोगरत हो गये। ऐसे तरल राधा नेत्र हमारी रक्षा करने में समर्थ है।

इसी प्रकार शक्ति रूप में राधा का चित्रण विश्व की माता के रूप मे तथा कृष्ण पिता हैं। माता रूप अधिक शक्तिशाली माना जाता है। अतः श्रीराधापञ्चशती में भी राधा का रूप अधिक उज्ज्वल है। क्योंकि राधा को शक्ति की अधिष्ठात्री माना गया है।

आलवार सम्प्रदाय मे नीला देवी नामक विशिष्ट गोपी श्रीकृष्ण को अपने वश मे करके उनके साथ रमण मे प्रवृत्त होती है। ऐसा तिरूप्पावै के पद्यो में वर्णित है। इसी आदर्श को श्रीराधापञ्चशती के कतिपय स्थलो पर देखा जा सकता है।[2] आलवार मतो की भॉति यहॉ पर भी श्रीकृष्ण का राधा के साथ विधिवत् पाणिग्रहण हुआ था। फलत वह उनकी (कृष्ण की) स्वकीया थी तथा वह लक्ष्मी का अंश मानी गयी है।

यथा –

राधोद्वाहमहोत्सवे त्रिभुवने हर्षप्रमोदार्णवे
मग्ने, दुग्धमहाम्बुधिं रचयते, स्नाय पद्मासनः
यत्र प्रौढतरंग नर्तन कलादक्षां नटी नर्तयन्
झंझावातनट : करोत्यहरहो हल्लीसकं सन्ततम्।।[3]

---

1. प्रो० जोशी श्री राधापञ्चशती श्लोक – ७१
2. वही
3. प्रो० जोशी श्री राधापञ्चशती श्लोक – ४८५

वैष्णव सम्प्रदायों मे निम्बार्क सम्प्रदाय प्राचीनतम है। राधा का प्रथम धार्मिक आविर्भाव इसी सम्प्रदाय मे मानना उचित है। श्री राधापञ्चशती मे श्री राधा कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना, राधा को श्री कृष्ण की सहचरी उद्‌घोषित करना, राधा को श्रीकृष्ण की स्वकीया रूप मे मान्यता की प्राप्ति वर्णन निम्बार्क सम्प्रदाय मे आचार्य निम्बार्क, आचार्य श्री भट्‌ट जी, श्री आदुम्बराचार्य, एव हरिव्यास देवाचार्य की ऋणी है।

श्री राधा कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासाना का उदाहरण –

राधाकृष्ण पदाश्रयी बुधजनो भक्तयामृत संपिबे –

न्नून यत्न–फले सदैव महतां ध्यानेन लाभप्रदे।।[1]

अर्थात् राधा कृष्ण के चरणो का आश्रय लेने वाला समझदार व्यक्ति केवल भक्ति से ही अमृत पीता रहता है। वास्तव में महापुरूषो के ध्यान ही यत्न तथा फल लाभ प्रदान करते हैं। राधा का श्रीकृष्ण की स्वकीया रूप में वर्णन हुआ है.–

यथा –

कृष्णस्यास्ति गतौ मति परदिने श्रुत्वैव सख्या. क्वचित्

सास्त्रं, नेत्रयुगं वहत्यविरतं श्रीराधिका सर्वदा।

कुर्वाणानुनयं मुरारि चरणौ धृत्वा प्रियौ प्रेमत

कृष्ण वारयतीति साश्रुनयना मां पातु रागानुगा।।[2]

अर्थात् श्री कृष्ण कल ही जाने वाले हैं। यह बात सखी से सुनकर ही राधा की ऑखो में निरन्तर ऑसुओं की झड़ी लग जाती है। वह अनुनय करती है। श्रीकृष्ण के प्रिय चरणो को प्रेम से पकडकर उन्हे जाने से रोकती है। ऑसू भरे हुए नयनो वाली राधा मेरी रक्षा करें।

---

1. प्रो० जोशी श्री राधापञ्चशती श्लोक – ४०.
2. वही श्लोक – ४६

श्रीराधापञ्चशती मे श्री राधा का श्रीकृष्ण की सगिनी रूप मे, श्रीकृष्ण की आत्मा रूप मे, सखी रूप मे तथा माधुर्य भक्ति की अधिकारिणी रूप में वर्णन के लिए वल्लभ सम्प्रदाय विशेषकर विट्ठलनाथ जी का महत्वपूर्ण योगदान है।

श्रीकृष्ण की सगिनी या प्रियतमा रूप में राधा जी चित्रण का उदाहरण –

दिवाकरच्छटा कमल मण्डले राजते
हरिप्रियतमापदद्युतिकण· समाधौ सदा।
विकाशयति तत्प्रभा कमलमेव नान्तर्मन·
सदैव चरणद्युतिर्मम विमुक्तमन्तर्मनः।।[1]

उदीयमान सूर्य की किरणो की छटा कमल मण्डल से शोभित होती है। श्रीकृष्ण की प्रियतमा राधा की चरणकान्ति का कण समाधि में प्रकाशित होता है। सूर्य का प्रकाश केवल कमल को खिलाता है। अन्तर्मन को नही। राधा के चरण का प्रकाश मेरे उस विमुक्त अन्तर्मन को खिलाता है।

श्रीकृष्ण की प्रिय सखी रूप में राधा का चित्रण हुआ है। यथा –

कृष्ण प्रिये ! हरिसखि ! श्रुतिमूलकन्दं
पादारविन्दमिह तेऽमरमौलिवन्द्यम्।।[2]

यहाँ श्रीकृष्ण की प्रिय सखी श्री राधा के चरणकमल श्रुतियों के मूलकन्द हैं। समस्त देवता अपने मस्तक से इन चरणों की वन्दना करते रहते हैं।

राधा वल्लभ सम्प्रदाय प्रेम तत्व का उपासक रसमार्गी सम्प्रदाय है। स्वकीया तथा परकीया दोनो भाव अपूर्ण है। यहॉ राधा प्रेम सर्वोपरि है। श्रीराधापञ्चशती में राधा प्रेम की पराकष्ठा के चित्रण में प्रो० जोशी जी राधा वल्लभ सम्प्रदाय विशेषकर हितहरिवश जी प्रणीत हितचौरासी के ऋणी है। इसमे राधा प्रेम की पराकष्ठा का चित्रण हुआ है।

---

1. प्रो० जोशी : श्री राधापञ्चशती श्लोक – १३३
2. वही · श्लोक–६६

यथा –

राधाविलोकयितुमेव क्वचिन् मुरारि

र्बम्भ्रम्यते प्रतिदिन निलय वृषस्य।

आली प्रबोधयति तां कुरू माधव त

रागानुविद्व–हृदय तब दृष्टिपात्रम्।।[1]

यहॉ राधा जी की अन्तरंग सखी उनको समझाती है श्रीकृष्ण का हृदय राग से बिंध गया है। मुरारि–श्रीकृष्ण वृषभानुजी के घर के आस–पास प्रतिदिन चक्कर लगाते रहते हैं। शायद राधा जी की एक झलक को देखने के लिए।

श्रीराधापञ्चशती मे राधा प्रेम की पराकष्ठा का अन्य ज्वलन्त उदाहरण द्रष्टव्य है।[2] यथा – "अपने कुल की मर्यादा पालन करने के व्रती श्रीकृष्ण वृषभानुनन्दिनी राधा की मधुर छवि देखते ही तुरन्त उनका हृदय राग से भर गया और वे अपने कुल की मर्यादा को भूल गये फलस्वरूप राधा के नेत्र छटा से मोहित होकर पीछे–पीछे चक्कर लगाने लगे।[3]

प्रो० रसिक बिहारी जोशी जोशी कृत श्री राधापञ्चशती मे राधा का चित्रण प्रमुख स्वरूपाशक्ति – आह्लादिनी शक्ति के रूप में, तथा स्वकीया रूप किया है। जिसके लिए महाप्रभु चैतन्य एव उनके शिष्य रूपगोस्वामी एव जीवगोस्वामी के मतो एव विचारो के ऋणी हैं। आचार्य रूपगोस्वामी कृत श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वल्नीलमणि तथा जीवगोस्वामी कृत भगवत्सन्दर्भ या षडसन्दर्भ में वर्णित भक्ति रस एवं आह्लादिनी शक्ति स्वरूप राधा का सर्वाश प्रो० जोशी द्वारा श्रीराधापञ्चशती में अपनी कथ्यशैली मे प्रस्तुत किया है।

---

1. प्रो० जोशी श्री राधापञ्चशती श्लोक – १२३
2. वही श्लोक १४५, १४६, १४७
3. कुल व्रतारतोऽपि योहरिरतीव रागान्वितो
   बभूव बृषभानुजामधुरदर्शनेन क्षणात्।
   निवारिततरोऽपि सद्गुण विवेक बोधादिभि–
   र्हिया पदगत प्रियानयनमोहितो माधव।।
   – श्री राधापञ्चशती – १४५

साहित्यिक दृष्टि से समस्त भारतीय वाङ्मय मे राधा की समीक्षा के अनन्तर श्रीराधापञ्चशती में साहित्यिक दृष्टि से राधा के स्वरूप का विवेचन करना अभीष्ट है, जो निम्न है –

संस्कृत साहित्य मे कृष्ण गोपी लीलाओं मे अधिकाशत· श्रृङ्गारिकता का बोलबाला था। प्रारम्भिक वैदिक, पौराणिक साहित्य में तो राधा नाम रहित गोपी कृष्ण लीला का बाहुल्य था। गाथासप्तशती मे राधा नाम युक्त गोपी सम्भोग एव विप्रलम्भ दोनों पक्षों का चित्रण है सर्वप्रथम जयदेव कृत गीतगोविन्द मे राधा–कृष्ण का श्रृङ्गारिक भक्तियुक्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रो० रसिक विहारी जी जोशी जी ने श्री राधापञ्चशती में श्रृगार वर्णन प्रमुखत· दिव्य श्रृंगार के दोनों पक्षो तथा नायिकाभेद चित्रण में गीतगोविन्द काव्य के विशेष रूप से ऋणी है।

दिव्य श्रृगांर का श्रीराधापञ्चशती में अनकेश उल्लेख है।

यथा – . पायं पायं तन नव सुधां राधिके! स्तोत्र रूपां
गाय गाय रसभरवच प्रेमसिन्धौनिमग्ना
केचिद् धन्यां अमृतलहरी वाङ्मयी भावभङ्गो
व्यातन्वाना जगति सकलान् पुण्यभूमौ नयेयु.।।[1]

यहॉ राधा–कृष्ण विषयक श्रृंगार वर्णन मे दिव्यता तो इस स्तर तक है कि श्रृगार गौण होकर भक्ति रस की प्रधानता द्योतित होती है। एक अन्य उदाहरण में "राधाा के करतल एव कपोल पर अद्वितीय सुन्दर तिलशोभायमान है। इसके उत्पत्ति का मूल भगवान् श्री कृष्ण का विग्रह है।[2]

श्री राधापञ्चशती में तो राधा के नेत्र की सौन्दर्य की अलौकिकता इस स्तर तक वर्णित है कि चारो उपमान नीलकमल, कस्तूरी, खञ्जन पक्षी, एवं मछली की मलिनता तथा पर्थिव परमाणुओं के सम्मिश्रण के कारण उचित नहीं हैं।[3]

---

1. प्रो० जोशी श्री राधापञ्चशती श्लोक : २८१
2. श्री राधिकाकरतले मिले कपोले
   तस्मात् विभाति सुभग तिलमाद्वितीयम्।। श्रीराधापञ्चवशती श्लोक १२१
3. श्रीराधापञ्चशती श्लोक – ६६

मैथिली काल की राधा वर्णन म विद्यापति ने अपनी पदावली (गीति संग्रह) मे श्रृड्गारिक पक्ष का चरमोत्कर्ष प्रदर्शित किया हैं। इस पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। श्रीराधापत्र्चशती की राधा ता मानवीय श्रृगार से हटकर अलौकिक या दिव्य श्रगार की ओर उन्मुख दिखायी पडती है। जिससे प्रो० जोशी की राधा भक्ति भाव प्रधान दिव्य श्रृंगार की प्रतिमूर्ति मानी गयी है।

चैतन्यदेव के प्रभाव से बॅगला साहित्य वैष्णव भावो से मुखरित हो उठा। इस साहित्य में राधा विलास की मूर्ति न होकर भक्ति की मूर्ति है, भोलापन है, यौवनसुलभ केलियों का अभाव सा है, कृष्ण विषयक रति का अखण्ड सागर लहरें मार रहा है। इसी के प्रभाव से श्रीराधापञ्शती में राधा का भक्ति भाव वर्णन चरमोत्कर्ष पर पहुॅचा है।

यथा –

कर्णाकर्णिकया यदा श्रुतवती राधा हरेरागति

व्याजेनापि तदाऽभवत् पुलकिता म्लानापि नेत्रद्युतिः।

विस्फूर्तिश्च समागता नयनयोः कृष्णे च दृष्टि गते

तां दृष्टि मयि पातयेद् यदि तदा मोक्ष लभेय ध्रुवम्।।[1]

यहॉ श्री कृष्ण के लौटने की बात सुनकर राधा के मलिन नेत्र की कान्ति पुलकित हो गयी। जब उसने श्रीकृष्ण को देख लिया तो उनके नेत्रों में तत्काल अनोखी स्फूर्ति आ गयी। भगवती राधा की ऐसी दृष्टि मुझे मोक्ष प्रदान करें।

पूर्वाञ्चलीय सहित्य मे प्रमुख उत्कल एवं असमिया है। उत्कल पर बंगला का प्रभाव है। इसी उत्कल का प्रभाव श्रीराधापञ्चशती मे वर्णित राधा कृष्ण पर पडा। यहॉ राधा–कृष्ण युगल मूर्ति के प्रतीक है। राधापराशक्ति के रूप में वर्णित हैं, शक्ति रूपा है। असमिया में तो दास्य भाव की प्रधानता एव श्रीकृष्ण की प्रमुखता होने से श्री राधापञ्चशती पर नाममात्र प्रभाव पडा होगा।

---

1. प्रो० जोशी श्रीराधापञ्चशती श्लोक – ५२

उत्कल साहित्य का दृष्टिगत रखते हुए राधा का युगल मूर्ति एव पराशक्ति वर्णन द्रष्टव्य है।

यथा –

ततोदेवगहे गृहीता सनोऽय
स्थित पद्मवृत्याऽऽसनेनाम्बुजेन।
तदा ध्यातकृष्णो नमस्कृत्य कृष्णं
"नमो राधिकायै" सहस्र गृणीत।।[1]

अर्थात् पूजास्थल पर पद्मासन लगाकर, मन को पद्मवृत्ति से स्थिर कर ले, ध्यानस्थ भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार करके **"ॐ नमो राधिकायै"** इस मन्त्र द्वारा हजारों बार जाप करना चाहिए। इससे राधा जी की पराशक्ति द्योतित होती है।

पश्चिमाञ्चलीय – मराठी एव गुजराती साहित्य में १४ वीं १५ वीं शदी में राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा स्थापित हो चुकी थी जिसका प्रभाव प्रो० जोशी कृत श्री राधापञ्चशती की राधा पर पडना स्वाभाविक था। मराठी कवि नामदेव एवं जानाबाई का राधा का मर्यादित श्रृंगारी वर्णन अविरल गति के साथ श्रीराधापञ्चशती मे वर्णित है श्रीकृष्ण के विरह में तो राधा को समस्त संसार सावंला नजर आता है। १५ वीं से १७ वीं शदी के मध्य गुजराती काव्य में श्री राधा कृष्ण के वर्णन में मीराबाई, नरसी मेहता, प्रेमानन्द रचित काव्य, प्रो० जोशी के काव्य प्रणयन श्री राधापञ्चशती को प्रभावित किया। जिसका स्पष्ट प्रभाव राधा विरह वर्णन पर परिलक्षित होता है।[2]

दक्षिणाञ्चलीय–तमिल, तेलगू, कन्नड, मलयालम साहित्य में राधा का वर्णन अवश्य मिलता है। जिसका प्रभाव श्रीराधापञ्चशती पर कथावस्तु को लेकर थोडा बहुत पडा है। लेकिन कथ्यशैली पर कदपि नहीं।

---

1. प्रो० जोशी श्रीराधापञ्चशती श्लोक ३८८
2. प्रो० जोशी . श्रीराधपञ्चशती . श्लोक – ४६, १२४, १४८, १६२, २७०, ३६४ एव ३६६

मध्यामाञ्चलीय या व्रज भाषा/साहित्य की राधा सौन्दर्य तथा माधुर्य की प्रतिमा है। आह्लादिनी शक्ति के रूप चिन्तन मे कवियो ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का यथाशक्ति उपयोग किया है। इसका प्रभाव श्रीराधापञ्चशती पर स्पष्टत पडा है।[1] व्रज साहित्य में कवियो की परम स्वकीया राधा, श्रीराधापञ्चशती मे भी वर्णित है।[2] व्रज–भाषा के निम्बार्की कवियो मे निम्बार्काचार्य, बिहारी, घनानन्द की श्रृंगारी अपार्थिव प्रेम की द्योतक कविताओ मे राधाकृष्ण के युगल स्वरूपं का प्रभाव श्रीराधापञ्चशती की राधा पर अवश्यमेव परिलक्षित होता है। यथा–

विस्फूर्ति समागता नयनयों · कृष्णेच दृष्टिगतं

तां दृष्टि मयि पातयेद् यदि तदा मोक्ष लभेय ध्रुवम्।।[3]

व्रजभाषा के राधा वल्लभीय काव्य प्रमुखतः श्रीहितहरिवश कृत हित चौरासी मे वर्णित निकुञ्ज लीला का प्रभाव श्रीराधापञ्चशती पर दिखाई पडता है।[4]

अष्टछापी कवियो की युगल उपासना की मूर्ति राधा, विशेषकर नन्ददास की आध्यात्मिक दृष्टि से वर्णित गोपी–राधा, परमानन्द दास की निर्मल प्रेम माधुरी की वैभव सम्पन्न राधा सर्वाधिक विलक्षण सूरदास की राधा समग्र नारी रूप में चित्रित है जिसका प्रभाव २० वी शदी के कवि प्रो० जोशी की राधा पर कथावस्तु एव कथ्यशैली दोनो दृष्टियों से स्वाभाविक रूप से पडा।

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत श्री राधापञ्चशती की राधा समग्र भारतीय वाङ्मय में वर्णित राधा विषयक, कथावस्तु, कथ्यशैली, भावपक्ष, कलापक्ष आदि को लेकर समग्र रूपों में पूर्णता को प्राप्त है।

---

1. वही श्लोक ५३६, १३७, १३८, ३६४
2. वही श्लोक ४८५
3. श्रीराधापञ्चशती श्लोक – ५२
4. श्रीहितहरिवश कृत हितचौरासी श्लोक–११ के समान प्रो० जोशी श्रीराधापञ्चशती श्लोक–७१, ७६, १६१, १६८, १७२, ३३७, ३५६, ३६०, ३६८,

चतुर्थ अध्याय

भक्ति भाव या रस; श्रीराधापञ्चशती में भक्ति विवेचन

(i) भक्ति का स्वरूप एवं विकास

(ii) भक्ति का मूल रसत्व

(iii) श्रीराधापञ्चशती में भक्ति का स्वरूप–

भक्ति का उद्‌गम स्वरूप एवं विकास

भक्ति के उद्‌गम को लेकर कीथ जैसे पाश्चार्तय विचारको विद्वानो का आग्रह रहा है कि भक्ति का मूल स्रोत ईसाई धर्म है, जिसके प्रभाव से भारत वर्ष मे भक्तितत्त्व का विकास हुआ है इसके विरूद्ध ऋग्वेद समेत वैदिक वाङ्मय की प्राचीनता एवं भक्तिमूलकता निर्विवाद रूपेण सिद्ध होने. के कारण वैदिक सहिताओं मे भक्ति के बीज प्राप्त किये जा सकते हैं। भक्ति तत्त्व का मूल सर्वप्रथम ऋग्वेद मे विचारणीय है।

परवर्ती साहित्य मे साधन भक्ति के नव भेदों की परिकल्पना की गयी है। इस नवधा भक्ति को आचार्य रामानुज पराभक्ति के अन्तर्गत मानते है। ये समस्त भेद किसी न किसी रूप में ऋग्वेद मे उपलब्ध होते हैं।[1] ऋग्वेद मे वैदिक ऋषि विष्णु का स्मरण और कीर्तन करने वाले भक्तों के प्रति उनकी भक्तवत्सलता का वर्णन करते है।[2] ऋग्वेद के गायत्री मन्त्र नाम से प्रसिद्व मन्त्र मे सवितृदेव के ध्यान का विधान किया गया है।[3] इस प्रकार ऋग्वेद में कीर्तन[4], पादसेवन[5], वन्दना एवं अर्चना,[6] दास्य भक्ति,[7] सख्यभक्ति[8] एवं आत्म निवेदन[9] के बीज अनेक मन्त्रो मे प्राप्त होते हैं।

इस नवधाभक्ति मे आत्मनिवेदन भक्ति भावना का सार हैं। इसी को आचार्य रामानुज ने भक्ति के अङ्गभूत और स्वतन्त्रोपायरूप प्रपन्ति कहा है। विशिष्टाद्वैत वेदान्त मे आत्मनिवेदन रूप प्रपत्ति के छ. अग माने गये है। जिनमें प्रत्येक की सत्ता ऋग्वेद में विद्यमान है।

---

1. डा० राम किशोर शास्त्री, आचार्य रामानुज का भक्ति सिद्वान्त,
   अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि० इलाहाबाद, पृष्ठ–३ से उद्‌धृत।
2. विचक्रमे पृथिवीमेष एता
   क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्। ऋग्वेद–७/१००/४.
3. तत्सवितुर्वरेण्य, भर्गो देवस्य धीमहि. धियो यो न प्रचोदयात्।।– ऋग्वेद ३/६२/१०
4. ऋग्वेद–१/१५६/२
5. वही–१/१५४/४
6. वही–७/१००/१
7. वही–७/१००/३.
8. वही–१/१०१/५.
9. वही–१०/२१/४

ब्राह्मण ग्रन्थ संहिता भाग के मन्त्रो के विनिमय या व्याख्या भाग होने के कारण इन ग्रन्थो मे भक्ति के बीज विखर पडे है। इन ब्राह्मणग्रन्थो की भक्तिविषयक विशेषता है–जप का विधान। जप निश्चित रूप से परवर्ती भक्ति का अग है। जप के विधान द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थो में भक्ति के विकास की पुष्टि होती है।

आरण्यको मे बहिर्योग की अपेक्षा अन्तर्योग को अधिक महत्त्व दिया गया है। चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग का प्रचार–प्रचार इस युग में कानन, कन्दरावासी ऋषियों द्वारा पर्याप्त हुआ है। पौराणिक काल की भक्ति एक सर्वोच्च सत्ता विष्णु के प्रति ही विहित है। औपनिषद भक्ति भी एक सर्वोच्चसत्ता के विचार से अनुप्राणित है। परवर्तीकालीन एकेश्वरवादी प्रवृत्ति आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं अपितु वेदों में बीज रूप विद्यमान वृक्ष के विकास का फल है।[1] परवर्तीकालीन विष्णु की सर्वोच्चता का आधार वस्तुत संहिताओं मे वर्णित विष्णु की यही सर्वोच्चता है।

वैदिक वाङ्मय मे भक्ति की जो धारा शनैः–शनैः बह रही थी उसे उपनिषदो ने गति प्रदान किया। श्वेताश्वतरोपनिषद् मे तो भक्ति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।[2]

आचार्य रामानुज ने वेदन, उपासना, ध्यान और त्याग को भक्ति का पर्याय माना है। रामानुज की इस मान्यता के कारण उपनिषदो में भक्ति का क्षेत्र व्यापक बन जाता है। **भक्ति का मूल स्वर शरणागति है। इसी शरणागति को आचार्य रामानुज भक्ति का अंग और स्वतन्त्रोपाय दोनों मानते हैं।**

पुराणो–श्रीमद्भागवत् महापुराण, विष्णुपुराण, पद्मपुराण एवं शिवपुराण आदि मे भक्ति का विकसित स्वरूप हमे देखने को मिलता है। भक्ति की दृष्टि से तो श्रीमद्भागवत् महापुराण का अत्यन्त महत्वूपर्ण स्थान है। इसके अनुसार व्यक्ति के जीवन का परमकर्त्तब्य (धर्म) निर्हेतुकी, विक्षेप रहित भक्ति है।[3] भक्ति से बढकर प्राणी के लिए प्राप्य और कुछ नही है। किसी भी प्रकार से किसी भी भाव से ईश्वर में चित्त (मन) को लगाना ही भक्ति है। यहॉ साधको के स्वभावगत गुण वैभिन्य के आधार पर भक्ति के तीन भेद वर्णित है–

---

1. एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यम मातरिश्वानमाहु ।। –ऋग्वेद–१/१६४/४३
2. यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
   तस्येते कथित ह्यूर्था पकाशन्ते महात्मन ।।– श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/२३
3. स वै पुसा परो धर्म यतो भक्तिधीक्षेजे।
   अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्या सम्प्रसीदति ।।–श्रीमदभागवतपुराण–१/२/६.

प्रथम– समस्त कर्मो को ईश्वरार्पित करके निष्काम भाव से कर्त्तव्य वुद्धि के द्वारा भेद दृष्टि के अवलम्बन से की गयी भक्ति सात्त्विक भक्ति है।[1]

द्वितीय– ध्यानस्थ यश, ऐश्वर्य आदि के लिए भेद बुद्धि से की जाने वाली भक्ति राजस–भक्ति है।[2]

तृतीय– हिंसा, दम्भ, ईर्ष्यादि के वशीभूत भेद वुद्धि से की जाने वाली भक्ति तामस भक्ति है।[3] .

पद्मपुराण में भक्ति के अनेक भेद किये गये हैं। सर्वप्रथम भक्ति के मानसी वाचिकी, और कायिकी भेद वर्णित है।[4] शिवपुराण भी भक्ति को मुक्ति का साधन मानता है।[5]

पुराणों के अनन्तर रामायण, महाभारत उल्लेखनीय है। यद्यपि रामायण में भक्ति का प्रत्यक्षतः व्याख्यान नहीं है परन्तु भक्ति के अवयवों–शरणागति आदि की चर्चा है। महाभारत के अंगभूत श्रीमद्भगवत्गीता तो भक्ति जगत् मे भक्तिशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठापित है। इसमें भक्ति को एकमात्र ईश्वर प्राप्ति का साधन कहा गया है।[6]

रामानुज एवं उनके आनुयायी ने श्रीभाष्य में पाच रात्र आगम को स्वतः प्रमाण माना है।[7] इस प्रकार पांचरात्र आगमों मे भक्ति के बीज पाये जाते है। आचार्य रामानुज से पूर्व साहित्य में भक्ति अस्तित्व के विचारणीय प्रश्न पर नारद भक्ति सूत्र एवं शाण्ड़िल्य भक्ति सूत्र प्रतिपाद्य भक्ति विषयक चर्चा महत्वपूर्ण है। यहां पूर्व पर की अपेक्षा अर्वाचीन है। शड्कराचार्य के गीता एवं उपनिषद भाष्य में भी भक्ति का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। इसी भक्ति चर्चा क्रम में अलंकार साहित्य, नाथमुनि तथा यमुनाचार्य का नाम आता है।

---

1. श्रीमद्भागवतपुराण–३/२६/१०.
2. वही–३/२६/६
3. वही–३/२६/८.
4. पद्मपुराण ५/८५/४
5. अन्ते भक्ति परा मुक्ति वै प्राप्नुयान्तर ।।– शिवपुराण–१/७८/५८
6. श्रीमद्भगवत्गीता–११/५४.
7. श्रीभाष्य–२/२/४२

भक्ति के विषय म आचार्य रामानुज ने विशुद्ध एव अति सूक्ष्म विवेचन किया है। उनके मतानुसार प्रत्यक्षता की कोटि को प्राप्त होने वाली ध्रुवानुस्मृति ही भक्ति शब्द का अर्थ है। जिसका स्वरूप तैलधारा के समान अविच्छिन्न हो ऐसी स्मृति ही ध्रुवानुस्मृति है। प्रत्येक स्मृति ध्रुवानुस्मृति नही है प्रत्युत नैरन्तर्य एव स्थिरत्व से विशिष्ट स्मृति ही ध्रुवानुस्मृति कही जा सकती है। आचार्य ने स्मृति को यथार्थ ज्ञान माना है। रामानुज की दृष्टि में उपासना व्यापक शब्द है भक्ति व्याप्य है अर्थात् सभी प्रकार की भक्तियॉ उपासना के अन्तर्गत है किन्तु सभी उपासनाए भक्ति नहीं है। कारण अर्थ में उपासना की निष्पत्ति "उप समीपे आस्यते यया" इति अर्थात् जिस साधन द्वारा पर देवता के समीप पहुँचा जाय वही उपासना है। और भाव अर्थ मे– "उप समीपे आसनमिति उपासना" अर्थात् पर दवेता के समीप पहुंचता ही उपासना है। इस प्रकार उपासना विशेष ही भक्ति है। इन्होंने श्रुति स्मृति विहित वेदन, ध्यान, उपासना और सेवा को भक्ति का पर्याय माना है।

उपासक की प्रंकृति के अनुसार ही उपास्य ब्रह्म के ज्ञानाश्रित तथा भावाश्रित दो भेद होते हैं। उनका ज्ञानाश्रित रूप–निर्गुण, निराकार, अव्यय, और अनिर्वचनीय होता है। भावाश्रित रूप में वह उपासक के मधुर भाव बन्धन में बॅध जाता है। उपासक की भावना के अनुसार उपास्य स्वामी, सखा, अथवा कान्त आदि विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है। उपासना का परमप्रयोजन भगवत्सान्निध्य को प्राप्त करना है। ज्ञान कर्म से ब्रह्म का चिन्तन होता है। उपासना के द्वारा परम प्रियत्व अथवा सान्निध्य की प्राप्ति होती है। प्रेमपात्रता साधक या उपासक को तभी प्राप्त होती है जब वह भावुक हो जाता हैं और भावुकता की प्राप्ति भक्ति से ही होती हैं। अतएव परमात्मा न तो काष्ठ में, न पाषाण में, अथवा न ही

मृत्तिका मे रहता है। साधक के भाव मे ही परमात्मा अवस्थित रहता है, अत उसकी प्राप्ति का उपाय केवल भाव ही है।[1] भगवद्भक्ति के अभाव मे कर्म, विवेक, मोक्ष अथवा ज्ञान की सिद्वि कदापि नही होती।[2] अतएवं भाव साधना ही सबका मुख्य आधार है। उपास्य और उपासक का भावात्मक सम्बन्ध विशेष ही भाव है। उपास्य के प्रति उपासक का यह अनुराग अथवा भाव लौकिक अनुराग की भॉति मलिन न होकर प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होता हुआ परम निर्मलता को प्राप्त करता है।

अनुग्रह, प्रेम और श्रद्धा भक्ति के ये तीन रूप भक्ति शास्त्रो मे प्रदर्शित किये गये है। पुत्र अथवा शिष्य के प्रति स्नेह–अनुग्रह भार्यादि के प्रति स्नेह प्रेम, गुरूजन अथवा देवादि के प्रति स्नेह श्रद्वा कहलाता है।[3] भगवत्प्राप्ति के चार मार्गो– ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति है। इनमें भक्ति को हो परम सुलभ तथा सर्वश्रेष्ठ मार्ग प्रतिपादित किया गया है, ऐसा नारद भक्तिसूत्र मे समुपलब्ध होता है। विश्व कल्याण का मूलाधार भक्ति ही है, ऐसा भागवत्पुराण का उद्घोष है। सासारिक बन्धन से मुक्ति प्रदान करने वाली भक्ति ही हैं। निर्गुण उपासक मधुसूदन सरस्वती प्रभृति तथा सगुणोपासक श्रीरूपगोस्वामी प्रभृति आचार्यो द्वारा भी भक्ति के अभाव में जप, तप संयम तथा ब्रतादि की निरर्थकता का प्रतिपादन किया गया है। कृष्णदास कविराज के मत में ज्ञान और कर्म सभी भक्ति मुखपेक्षी है। अन्त में सभी का अन्तर्भाव भक्ति मे ही होता है।[4] साधक–शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने भी जप, तप, सयम, ब्रत, नियम, योग, ज्ञान, कर्म तथा धर्मादि सभी का सुन्दर फल भक्ति ही कहा है।[5]

---

1. न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
   देवा हि विद्यते भावे तस्माद् भावो हि कारणम्।।"–भक्तिरस विमर्श से उद्धृत।
2. हरिभक्ति बिना कर्म न स्याद् धी शुद्वि कारणम्।
   न वा सिद्ध्येत् विवेकादि न ज्ञान नाथि मुक्तकता।।– डा० कपिल देव ब्रह्मचारी।
3. भक्ति रस एकशास्त्रीय अध्ययन डा० शशिधर द्विवेदी, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध इ० वि० वि०, पृष्ठ ३ से उद्धृत।
4. चैतन्य चरितामृत–माध्यम परिच्छेद–२२, पृष्ठ २७६
5. श्रीरामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास,–अरण्यकाण्ड दोहा–४५,

इसी के प्रभाव से भगवान भक्त के अधीन होता है।[1] साधक का चित्त जब कामना रहित विकार तथा सासारिक विषयो के प्रति आसक्ति से रहित हो जाता है, तभी उसके स्वच्छ हृदय मे भक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

शब्द शास्त्र की दृष्टि से– "भजन" रसन भक्ति, भज्यतेऽनया भक्ति, "भजन्त्यनयेति भक्ति", इस रीति से 'भाव' अथवा 'करण' अर्थ मे **भज् सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर भक्ति शब्द निष्पन्न होता है।** भक्ति शास्त्र के अनुसार भक्तों द्वारा भगवत्प्रीति के अनुकूल व्यापार का होना ही भक्ति है। यद्यपि शास्त्रों में भक्ति शब्द सेवा, आराधना, उपासना, उपचार, अवयव तथा श्रद्धा आदि अनेक अर्थो में प्रयुक्त होता है, किन्तु भक्ति शास्त्र में भगवान् के प्रति अनुकूल व्यापार परक अर्थ ही ग्राह्य हैं।[2]

आचार्य मधुसूदन सरस्वती में भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार प्रदर्शित की है।

"भजनम् अन्तः करणस्य भगवदाकाररूप भक्तिरिति भावव्युत्पत्या भक्तिशब्देन फलभिधीयते।"[3]

'भगवद्गुणश्रवणेन वक्ष्यभाण कामक्रोधाद्युद्दीपन द्वारा द्रवावस्थां प्राप्तस्य चित्तस्य धारावाहिकी या सर्वेशविषयावृत्तिः। भगवदाकारतेत्यर्थः तदाकारतेव हि सर्वत्र वृत्तिशब्दार्थोस्माकं दर्शने। सा भक्तिरित्याभिधीयते।[4]

"भज्यते सेव्यते भगवदाकार अन्तकरण क्रियतेऽनया इति करण–व्युत्पत्या भक्तिशब्देन श्रवणकीर्तनादि साधनमभिधीयते।"

भगवद्गुणश्रवणादि से द्रवीभूतचित्त की सर्वेश्वर भगवान् के विषय में धारावाहिकता को प्राप्त हुई (तेलधारा वत्[1] अविच्छिन्न रूप से भगवदाकार हुई) वृत्ति ही भक्ति कहीं जाती है। नारदपाञ्चरात्र मे हृषीकेश सेवन को ही भक्ति कहा गया है।[5]

---

1. चैतन्य चरितामृत–मध्यम परिच्छेद–१७, पृष्ठ ८२।
2. (क) वाचस्पत्यम्–पृष्ठ भाग, ४६१८ से उद्धृत।
   (ख) शब्दकल्पद्रुप–तृतीय भाग, पृष्ठ ४६३।
   (ग) सर्वासिद्धान्तपदार्थ लक्षण सग्रह, पृष्ठ १४६,
3. आचार्य मधुसूदन सरस्वती कृत, 'भगवद्भक्ति रसायनम् पृष्ट १६
4 वही–१/३ वृत्ति भाग से उद्धूत।
5. सर्वोपायि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
   हृषीकेण हृषीकेशसेवनम् भक्तिरुच्यते।।–'नारदपाञ्चरात्र'।

भक्ति क स्वरूप के विषय मे भक्ति सम्प्रदायो में भी पर्याप्त मत वैभिन्न है। साम्य होने पर भी आशिक भेद दृष्टिगोचर होता है। भक्तिशास्त्र के अनुशीलन से जिस प्रकार पतिव्रता नारी अनन्यभाव से अपने अन्त करण से पति का ध्यान करती है उसी प्रकार भक्त भी स्नेह के वशीभूत होकर जो भगवत्प्रीति के अनुकूल व्यापार करता है वही भक्ति कहलाती है।[1] इस प्रकार साधक की प्रगाढ स्नेह युक्त जो भगवत्सेवा होती है वही वास्तविक भक्ति पद वाच्य होती है।[2]

भक्ति का शास्त्रीय विवेचन सर्वप्रथम शाण्डिल्य भक्तिसूत्र तथा नारदभक्ति सूत्र में प्राप्त होता है। अखिल ब्रह्मण्ड के नायक परमात्मा में सर्वोत्कृष्ट अनुरक्ति ही शाण्डिल्य मत में भक्ति है।[3] नारदीय सूत्रो की व्याख्या के प्रसङ्ग मे शाण्डिल्य ने अपने अनुकूल विषय में स्नेहाधिक्य को ही भक्ति कहा है।[4] इस प्रकार आचार्य शाण्डिल्य ने तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेम से संसिक्त परमेश्वर मे निष्काम चित्तवृत्ति को ही भक्ति कहा है।[5]

सब प्रकार की कामनाओं से रहित, सर्वथा भगवत्परायण, प्रसन्नचित्त से भगवान् की प्रीति के अनुकूल सेवन ही भक्ति है। मोक्ष साधक मार्गो में भक्ति ही प्रधान साधन है।[6] मलिन हृदय की शुद्वता के लिए भक्ति की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है।[7]

जिस भक्ति के द्वारा शुक, सनकादि संसार बन्धन से मुक्त हो गये वही भक्ति मोक्ष की अद्वितीय साधिका है।[8] विशिष्टाद्वैत के अनुसार उपासनादि शब्दों से वाच्य ज्ञान विशेष ही

---

1. भज्यातोस्तु सेवार्थ प्रेमाक्तिन् प्रत्यय च
   स्नेहेन भगवत्सेवा भक्तिरित्युच्यते बुधै ।।–'सतसगजीवन'।
2. गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते।– 'वासुदेव माहात्म्य'।
3. "सा परानुरक्तिरीश्वरे————— ।–" शाण्डिल्य भक्तिसूत्र–२।
4. "आत्मरत्यविरोधेनेति—————शाण्डिल्य–नारदीय भक्ति सूत्र–१८।
5. सर्वात्मना निमिन्तैव स्नेहधारानुकारिणी।
   वृत्ति प्रेम परिष्कृता भक्तिर्माहात्म्यबोधजा ।।– 'शाण्डिल्य सहिता"।
6. मोक्षकारणसमग्रया भक्तिरेव गरीयसी।– 'विवेकचूडामणि।
7. शुद्वयति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजमृते।
   वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेत ।।– 'प्रबोधसुधाकर'।
8. यस्म प्रसादेन विभुक्तडगा शुकादय ससृतिबन्धमुक्ता ।
   तस्य प्रसादो बहुजन्मलभ्यो भक्तैकगम्यो भवभुक्तिहेतु ।।–'सर्ववेदान्त सिद्वान्तसग्रह'।

भक्ति है।[1] वोपदेव के अनुसार–"उपायपूर्वक बिना लिङ्ग निर्देश के परमात्मा मे मन का स्थिरीकरण ही भक्ति है।[2]" वही भक्ति रस विशेष रूप से परिवर्तित होती है।[3] इसी भक्ति को वोपदेव ने १८ प्रकार का बताया है।[4] विष्णुपुराण के टीकाकार श्री नारायण तीर्थ के मत मे भगवान के प्रति अनुकूल व्यापार ही भक्ति है। पराकाष्ठा को प्राप्त प्रीति ही भक्ति कहलाती है।[5] इनके मत मे प्रीति और भक्ति मे अभेद है। भक्ति मीसासा सूत्र के अनुसार मन का विशिष्ट आनन्द ही भक्ति है।[6] श्रीनारायण स्वामी के अनुसार परमसुख की प्राप्ति के साधन को ही भक्ति कहते है।[7] दार्शनिक श्री हरिशरण स्वामी के अनुसार निष्काम भक्ति ही कलियुग मे मोक्ष प्रदान करने वाली है।[8]

उपास्य, उपासक, सम्प्रदाय आदि अनेक प्रकार से भक्ति के विभेद किये गये है। श्रीमद् भागवत्गीता में गौणी और मुख्य भेद से भक्ति के दो प्रकार बताये गये है। गौणी भेद के अन्तर्गत आर्तिभक्ति, जिज्ञासु भक्ति, अर्थार्थि–भक्ति है। जिसका प्रतिपादन गीता मे सात्विक, राजस् तथा तामस् इन तीन रूपों में किया गया है। मुख्य भेद के अन्तर्गत ज्ञान भक्ति का परिगणन किया गया है। ज्ञान, भक्ति को ही गीता मे अहेतुकी भक्ति की संज्ञा दी गयी है। उसी अहेतुकी भक्ति के पराभक्ति, मुख्याभक्ति, ज्ञान भक्ति अथवा निर्गुण भक्ति आदि पर्याय है।

भक्ति–शास्त्र के प्रवर्तक शाण्डिल्य तथा नारदादि के अनुसार मुख्या और गौणी भेद से भक्ति दो प्रकार की है। इसके अतिरिक्त नारद ने एकादशविध भक्ति का भी निर्देश किया है।[9] श्रीमद्भागवत्पुराण में भक्त प्रहलाद ने भक्ति के ६ भेद बताये है। इस नवधा

---

1. न्या० सि०–पृष्ठ–२६८; वेदार्थ सग्रह, सर्वसिद्वान्तसग्रह–पृष्ठ२३७,
2. "मुक्ताफल, 'बोपदेवकृत, पृष्ठ–१६७।
3. 'मुक्ताफल', हेमाद्रिकृत कैबल्यदीपिका पृष्ठ १६७ से उदधृत।
4. मुक्ताफल' – पञ्चम अध्याय।
5. "प्रीतिभक्त्योरभेद एव गम्यते, प्रीतिरेव रति· पराकाष्ठा गता प्रेम इत्युच्यते।"–नारायणतीर्थ कृत–टीका
6. भक्ति मीमासासूत्र–१/१/२।
7. भक्ति रसार्णव,–पृष्ठ–३१,
8. भविष्य–पुराण,–श्लोक–१, पृष्ठ–५,
9. नारदीय भक्ति सूत्र–८२।

भक्ति के आधार पर भक्तिशास्त्र न ६ प्रकार के प्रसिद्ध साधको अथवा भक्तो का दृष्टारान्त दिया गया है[1] –परमात्मा के चरित्र श्रवण मे–परीक्षित, गुण कीर्तन–मे श्रीशुकदेव, स्मरण मे–प्रह्लाद, पादसेवन मे– लक्ष्मी जी, अर्चन मे–पृथु, वन्दन मे अक्रूर जी, दास्य मे–हनुमान जी, सख्य भाव मे–अर्जुन तथा आत्मनिवेदन मे बलि। इस प्रकार नवधा भक्ति के आधार पर विभुक्त इस नवधा भक्त भगवान् को समान रूप से प्रिय होते है।

भक्ति 'भाव' अथवा 'रस'

भक्ति भाव कोटि मे आती है अथवा रस कोटिं में? भक्ति के स्वरूप एवं विकास विवेचन से स्पश्ट होता है कि भक्ति की सत्ता अतिप्राचीन काल वैदिक वाङ्मय से लेकर आज तक विविध स्वरूपो से विद्यमान रही है। प्राचीन काल से ही आचार्यो ने भक्ति के रसत्व का प्रबल विरोध किया है, इस बात से यह प्रमाणित होता है कि भक्ति तत्त्व की सत्ता अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि जिसकी प्रबल सत्ता होती है प्रायः उसी का प्रबल विरोध भी दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन आचार्यो का कथन है कि दाम्पत्येतर रति अर्थात् देवादिविषयक रति रस रूप न होकर भाव मात्र हैं।

भक्ति तत्त्व तो मूल वेदो से लेकर पुराणों में श्रीमद्भागवत्पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, संहिता के अन्तर्गत शिव संहिता, शाण्डिल्य संहिता तथा शाण्डिल्य भक्तिसूत्र तथा नारदीय भक्तिसूत्र, रामायण, महाभारत आदि मे प्रतिष्ठित रहा है।

नाट्य शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत ने केवल आठ (८) रसों की मान्यता दी।[2] दूसरे अतिरिक्त भक्ति को भाव कोटि में रखा। यद्यपि आचार्य भरत से पूर्व भी पुराणादि मे भक्ति तत्व था, तब भी रसत्व रूप में विवेचित नही किया गया। भरत के पश्चात् भामह ने

---

1. श्रवणं कीर्तन विष्णों स्मरणम् पादसेवनम्।
   अर्चन वन्दन दास्य साख्यमात्मानिवेदनम्।।
   इतिपुसार्पिता विष्णो· भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
   क्रियते भगवत्यद्वा तन्मये वीतमुत्मम्।। –श्रीमद्भागवत्पुराण–७/५/२३, २४।
2. श्रृङ्गारहास्य करूण रौद्रवीर भयानका ।
   वीभत्साददभुतसञ्ज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा स्मृता।। "नाट्यशास्त्र–६/१६", काव्यप्रकाश ४/४४ से उदधृत।

सस्कृत काव्यविदो द्वारा प्रतिपादित प्रेयस–भक्ति, वात्सल्यादि रसो की गणना रस रूप नही की। भामह के अन्तर आचार्य दण्डी ने परमात्माविषयक प्रीति को भक्ति की सज्ञा दी। किन्तु इन्होने भी भक्ति को रस रूप मे नही माना बल्कि उसका भावत्व स्वीकार किया तथा उसे प्रेयोलङ्कार रूप मे ही स्थापित किया। दण्डी के पश्चात् आचार्य रूद्रट ने अतिरिक्त रस के रूप मे 'प्रेय' की गणना की। इसका स्थायीभाव स्नेह बताया। संस्कृत काव्यशास्त्र मे आचार्य भरत द्वारा प्रतिपादित आठ रसो की परम्परा से हटकर सर्वप्रथम रूद्रट ने पृथक् रूप मे प्रेयोरस की कल्पना की। इस प्रकार नामान्तर से आचार्य रूद्रट ने भी भक्ति रस की सत्ता स्वीकार की परन्तु प्रधान रूप से भक्ति का भावत्व ही विवेचित किया है। इस प्रकार आचार्य उद्भट्ट ने भी प्रेय रूप मे ही भक्ति की कल्पना की। आचार्य मम्मट के अनुसार देवादिविषयक रतिभाव रूप ही होती है।[1] इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने भी भक्ति रस का भावत्व ही स्वीकार किया है।[2] आचार्य जयदेव ने भी देवादिविषयक रति को भावरूप ही माना है। आचार्य हेमचन्द्र के मत मे हीन की उत्तम के प्रति की गयी रति ही भक्ति है इसका आस्वाद भावरूप मे ही किया जाना चाहिए न कि रस रूप में। रस संख्या मे वृद्धि के पक्षपाती आचार्य भोजराज ने यद्यपि द्वादश (१२) रसों की कल्पना की है, परन्तु भक्ति के विषय में उन्होंने कुछ नहीं कहा। भानुदत्त ने भी वात्सल्य आदि के साथ भक्ति की उद्भावना की है, परन्तु इनका भावत्व ही स्वीकार किया हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य शास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य भक्ति को स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकार नही करते हैं। यदि किसी ने स्वीकार भी किया तो केवल नामान्तर से ही।

इन प्राचीन आचार्यो से हटकर भक्ति को स्वतन्त्र रूप से रस की मान्यता प्रदान करने वाले भक्तप्रवण वैष्णवाचार्यो की कीर्ति महनीय है। उन्होंने वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय दोनों दृष्टि से भक्ति रस को न केवल नौ रसो के अन्तर्गत रखा अपितु सभी में भक्ति रस का श्रेष्ठत्व भी प्रतिपादित किया है। भक्ति रस के संस्थापक आचार्यों में सर्वप्रथम १३वीं शदीं के आचार्य बोपदेव का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'मुक्ताफल' मे भक्ति का रसत्व विवेचित किया।

---

1. "रतिर्देवादिविषया व्यामिचारी तथाऽञ्जित, भावो प्रोक्त ।।"–काव्यप्रकाश–४/३५।
2. "सञ्चारिण प्रधानानि देवादिविषया रति ।"–साहित्यदर्पण–३/२६०।

सर्वप्रथम भक्ति रस के काव्य शास्त्रीय स्परूप प्रतिपादक आचार्य रूपगोस्वामी एव उनका ग्रन्थ ''हरिभक्तिरसामृत सिन्धु' एव उज्ज्वल नीलमणि है। इसके अतिरिक्त श्री सनातन गोस्वामी, श्री जीवगोस्वामी, श्रीनारायण भट्ट, श्रीकविकर्णपूर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वलदेव विद्याभूषण तथा अन्य साम्प्रदायिक आचार्य मधुसूदन सरस्वती एव नारायणतीर्थ आदि ने भक्ति रस का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार भक्ति तत्व के उद्‌भव से लेकर विकास की श्रृखला का अवलोकन तथा प्राचीन साहित्याचार्यो के मत एव आधुनिक रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी, प्रो० रसिक विहारी जोशी के मतों से स्पष्ट होता है कि भक्ति भाव के साथ रस रूप भी है। भक्ति रस की मूल रसता प्रतिपादित होने पर भक्ति को रस कोटि में रखना सर्वदा सर्वथा समीचीन होगा।

भक्ति रस का मूल रसत्व

'रसों वै सः' इत्यादि श्रुति के स्वारस्य से तथा भरतादि आचार्य द्वारा निर्मित काव्यशास्त्र सरणि के समन्वय से भक्तिरसाचार्यों (रूपगोस्वामी प्रभृति आचार्य) के मत में भक्ति का ही मूल रसत्व सिद्व होता है क्योंकि श्रुति आदि के द्वारा प्रतिपादित परमरस स्वरूप परमात्मा ही है। अतः तद्‌गत रत्यादि सभी भाव रसत्व को प्राप्त होते हैं। और इसी प्रकार परमात्मा से सम्बन्धित होने के कारण भक्ति ही मूल रस है। और इसी भक्ति के सम्बन्ध से श्रृड्‌गारादि मुख्य और गौण भेद से १२ प्रकार का होता है किन्तु सभी का मूल भक्ति ही होती है और वह भक्ति रसाचार्यो द्वारा रसराज कहा गया है।[1] भक्तिहीन श्रृड्‌गरादि रस खद्योत की भॉति भक्तिरस रूपी सूर्य की प्रभा के समक्ष तुच्छता को प्राप्त होते हैं।[2] वास्तविक रस भक्ति रस ही है क्योंकि वही पूर्ण आनन्दमय है। भारतीय वाड्‌मय में भक्ति काव्य का पूर्णविकास हो जाने पर वैष्णव आचार्यो ने केवल भक्ति रस को प्रतिष्ठित किया बल्कि उसे मूल रस भी घोषित किया।

---

1. मुख्यरसेषु पुरा य सक्षेपणोदिते रहस्यत्वात्।
   पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तेरणोच्यते मधुर ।।–उज्ज्वल नीलमण–कारिका–२।
2. परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रति.।
   खद्योतेभ्य' इवादित्यप्रभेव वलवत्तरा।।–भगवद् भक्ति रसायन–२/७७।

भक्ति रस का मूल स्थायी भाव भगवद विषयारति होती है। मुख्य एव गाण भेद से १२ प्रकार स भक्ति रस का प्रामाणित विवेचन रूपगास्वमी सम्मत राधापञ्चशती ने दृष्टि गोचर होता है। इस प्रकार भक्ति को रस कोटि मे मानना सर्वदा, सर्वथा समीचीन होगा।

श्रीराधापञ्चशती में भक्ति का स्वरूप–

आचार्य रूपगोस्वामी भक्ति रस का काव्यशास्त्रीय प्रामाणित स्वरूप प्रतिपादित करने वाले प्रथम आचार्य है। इन्होने अपने गुरू चैतन्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सिद्वान्त का शास्त्रीय विवेचन करते हुए अपने सम्पूर्ण "हरभिक्तिरसामृतसिन्धु" को चार लहरियो मे विभक्त किया है।

चैतन्यमत समर्थक रूपगोस्वमी सम्मत भक्ति सिद्वान्त के प्रखर अनुयामी प्रो० रसिक विहारी जोशी ने स्वकाव्य श्रीराधापञ्चशती मे 'हरिभक्तिरसामृत–सिन्धु' सम्मत भक्तिभेद एव रस रूपता का भलीभॉति विवेचन किया है।

"हरिभक्ति रसामृत सिन्धु' सम्मत श्रीराधापञ्चशती वर्णित भक्ति प्रभेद[1]
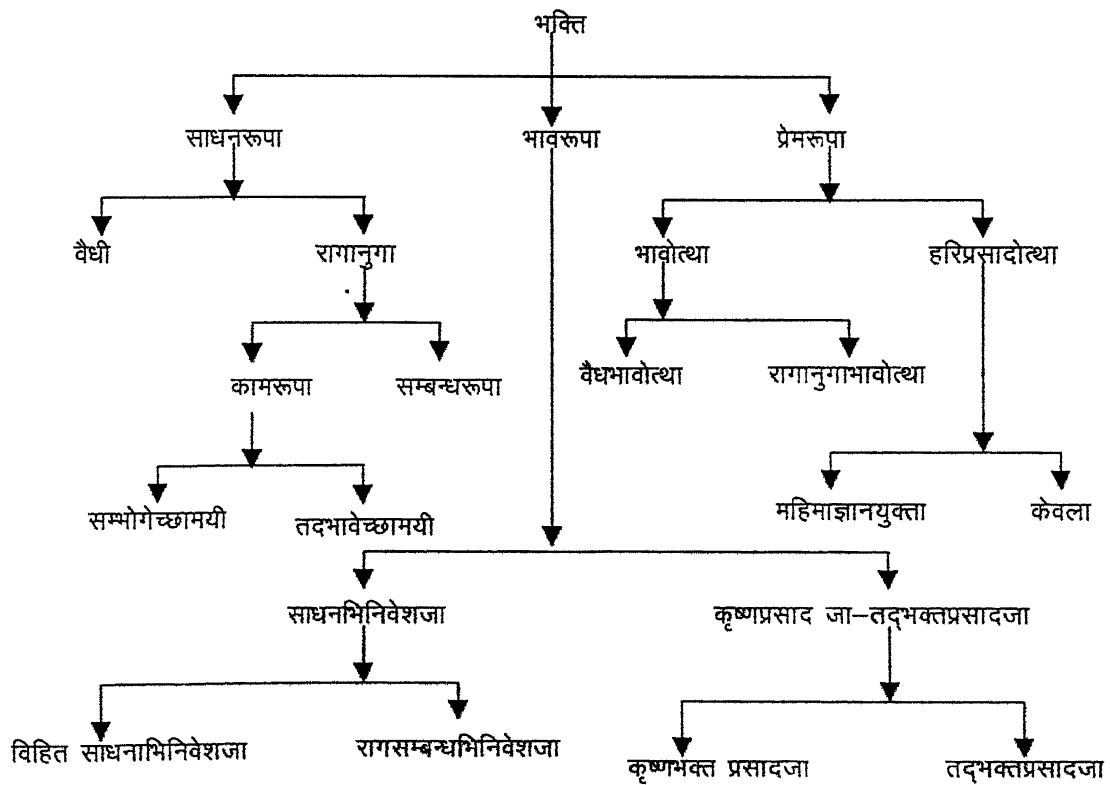
1. आचार्य रूपगोस्वामी, हरिभक्तिरसाभृतसिन्धु–१/२/४ से उद्धृत।

उत्तमा भक्ति

किसी प्रकार की कामना से रहित केवल भगवत्प्रीत्यर्थ श्रुति एव समृत्यादि मे वर्णित यज्ञादि रूपो के ज्ञान एव कर्म तथा अन्य साख्ययोगादि मे वर्णित विविध विधानो से सर्वथा असस्पृष्ट, अनुकूल भाव से कृष्ण राधा आदि समस्त देवो का मनसा, वाचा, कर्मणा अनुशीलन अर्थात् सेवन ही उत्तमा भक्ति है।[1] अर्थात् भगवत्प्रीत्यर्थ प्रभु के निमित्त ही शारीरिक, वाचिक मानसिक क्रियाओ का करना ही भक्ति है। निष्काम भाव से किये गये केवल प्रभुप्रिय व्यापार ही उत्तमा भक्ति की सीमा मे आते है।

यथा– परिहाय विनाशकरं सकल
सुतदारसुह्रत्यरिवारगणम्।
वृषभानुसुतापदपद्रति
कलयाम्यधुनाननु धामगतिम्।।[2]

यहाँ भक्त राधा के चरणारविन्द में अनन्तप्रेम की प्रधानता मनसा, वाचा, कर्मणा मान लिया हैं। उत्तमाभक्ति के तीनभेद है। (१) साधनभक्ति (२) भावभक्ति और (३) प्रेमभक्ति।[3] इन तीनों में क्रमशः दो–दो गुणो की अतिरिक्त स्थिति मानी गयी है।

(क) साधन भक्ति–इसमे क्लेशघनत्व एव शुभदत्तव गुण की स्थिति आवश्यक मानी गयी है। जो साधक.भक्त के व्यापार से सिद्ध हो, सकने वाली है और जिसके द्वारा भावरूपा भक्ति की सिद्दि हो सके, वह साधन भक्ति कहलाती हैं[4] साधन रूपा भक्ति भागवत्पुराण में भी वर्णित है।[5] वैध और रागानुगा भेद से साधन रूपा भक्ति दो प्रकार की होती है।[6]

---

1. अन्याभिलाषिताशून्य ज्ञानकर्माद्यनावृत्तम
   आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरूत्तमा।।– हरिभक्तिरसामृत सिन्धु–१/१/११
2.(i) श्रीराधापञ्चशती. श्लोक–४४१, (ii) श्लोक ४२६ द्रष्टव्य है।
3. सा भक्ति साधन भाव, प्रेमा, चेति त्रिथोदिता।।" हरिभक्ति रसामृतसिन्धु–१/२/१
4. कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।–वही
5. तस्यात्केनाप्युपायेन मन. कृष्णे निवेशयेदिति।–श्रीमदभागवत् पुराण 'सप्तम' स्कन्ध।
6. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा–हरिभक्तिरसामृतसिन्धु–१/२/३।

इस प्रकार साधन भक्ति क रूप म पूरा श्रीराधापञ्पशती भरा हुआ है। सर्वत्र राधा को भक्ति का आश्रय माना गया ह।

(i) वैधी भक्तिः–

जिसमें स्वत राग न हो, केवल शास्त्रीय विधि वाक्यो या निर्देशों के आधार पर मनष्य प्रवृत्त हो इसका नाम वैधी भक्ति है।[1] इसकी उपादेयता रागानुगा को उदित करने तक ही हैं।

(ii) रागानुगा भक्तिः–

ब्रजवासी गोपिका आदि मे स्पष्ट रूप से विराजमान रागात्मिका भक्ति का अनुकरण करने वाली जो साधन रूपा भक्ति है वह रागानुगा भक्ति होती है।[2] रागात्मिका भक्ति के दो भेद होने के कारण उसी के ऊपर आश्रित रहने वाली इस रागानुगा भक्ति के भी कामरूपा तथा सम्बन्धरूपा दो भेद होते है।[3] श्रीराधापञ्पशती मे रागानुगा भक्ति विशेषकर सम्बन्धानुगा भक्ति का पूर्ण परिपाक मिलता है।

रागानुगा भक्ति के अधिकारी के सम्बन्ध मे कहा गया है कि चूँकि यह भक्ति रागात्मिका भक्ति का अनुसरण करने वाली होती है। अतएवं जो अधिकारी रागात्मिका के होते हैं वही रागानुगा में भी हो सकते है।[4] रागात्मिका भक्ति के आश्रयभूत ब्रजवासियो मे जो कृष्ण के प्रति प्रेम पाया जाता है, उसके प्राप्त करने का लोभ जिसमें हो वह रागानुगा भक्ति का अधिकारी बताया गया है।

---

1. यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृन्तिरूपजायते।
   शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्ति रूच्यते।।–हरिभक्तिरसामृतसिन्धु.–१/२/४।
2. विदावन्तीमभिव्यक्त ब्रजवासिजनादिषु
   रागात्मिकानुसृता या सा रागानुगोच्यते।। हारिभक्तिसामृतसिन्धु १/२/७६।
3. रागात्मिकाया वैविध्यात् द्विधा रागानुगा चसा
   कामानुगा च सम्बन्धनुगा चेति निगद्यते।। हारिभक्तिरसामृतासिन्धु–१/२/६३।
4. रागात्मिकेकनिष्ठा ये ब्रजवासिजनादय
   तेषा भावाप्तये लुब्धो भवेदाधिकारिवान्।। वही–१/२६४।

(अ) कामरूपा या कामानुगा

कामरूपा साध्य भक्ति का अनुगमन करने वाली तृष्णा कामानुगा साधन भक्ति कहलाती है। यह भी सम्भोगेच्छामयी और तद्भावेच्छात्मिका भेद से दो प्रकार की होती हैं। सम्भोगेच्छामयी का तात्पर्य मुख्य रूप से केलिक्रीडा मे होता है और तद्भावेच्छा इन ब्रजगोपियो के प्रेम के माधुर्य को प्राप्त करने की इच्छा वाली होती है।

शुद्ध साधन भक्ति के रूप मे राधापञ्चशती में उदाहरण द्रष्टव्य है–

त्वां पूर्णचन्द्रकिरणैर्मसृणैः प्रसूतां
राधां पयोधवलिते जलधौ सलीलाम्।
साकारमूर्तिमिव दिव्यकृपारसस्य
भक्तास्तु साधनाधिया हृदि भावयन्ते।।[1]

भक्तगण साधन की दृष्टि से राधा की दिव्य कृपा रस की साकार मूर्ति है ऐसा हृदय से धारण करते है।

रागानुगा भक्ति का पूर्ण परिपाक देखने योग्य है–

कुलव्रतोरतोपि यो हरिरतीव रागान्वितों
वभूव वृषभानुजामधुरदर्शनेन क्षणात्।
निवारिततरोऽपि सद्गुण–विवेक बोधादिभि–
र्हिया पदगतः प्रियानयनमोहितो माधवः।।[2]

यह रागानुगा के अन्तर्गत कामानुगा–सम्भोगेच्छभक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण हैं क्योंकि कुलमर्यादा पालनव्रती श्रीकृष्ण राधा की मधुर छवि देखकर हृदय से रागानुविद्ध पीछे–पीछे चक्कर लगाने लगें।

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ११३।
2. वही श्लोक १४५।

तद्भावच्छाभक्ति का उदाहरण–

यदाभक्ति दूरगा नयनयो प्रियाया हरि·

प्रियानयनवल्लरी विरहमानुदग्धा तदा।

यदाम्बुधरभासुरो मुररिपु प्रियाया पुर

प्रमोदनवपल्लवा रसभरप्रसूनान्विता।।[1]

यहाँ श्रीकृष्ण के वियोग मे राधा की नयनलता का दग्ध होना तथा श्रीकृष्ण के सयोग से राधा की नयनलता का सागर पल्लवान्वित होना तद्भावेच्छा भक्ति का उदाहरण है।

(ब) सम्बन्धरूपा या सम्बन्धानुगा भक्तिः

स्वयं रूपगोस्वामी के गुरू चैतन्यमहाप्रभु की भक्ति राधाभाव की है। रूपगोस्वामी ने भी भक्ति का चरमपरिपाक राधा की महाभाव दशा मे ही माना है। अपने में भगवान् के पिता, सखा आदि के आरोपण–रूपा जो भक्ति होती है उसको सम्बन्धनुगा भक्ति कहते है।[2]

सम्बन्धानुगा और कामानुगा दोनो भक्तियो मे मर्यादा का पालन आवश्यक है, उसका उल्लधंन अपराध गिना जाता है। सम्पूर्ण श्री राधापञ्चशती में रागानुगाभक्ति के दोनो भेदों का उदाहरण द्रष्ट्व्य है।

यथा– सम्बन्धानुगा भक्ति–

कालिन्दीतनयातटाद् धृतसुगन्धपुष्पों हरिः

प्रयातिवृषभानुजामनुदिन प्रसन्नं प्रगे।

ब्रवीति मधुरा सखी किमिति तन्त्रयोगः कृत–

स्त्वया नयनकोणतो न हि हरिः प्रयतीतराम्।।[3]

---

1. वही श्लोक १५१।
2. सा सम्बन्धानुगा भक्ति प्रोच्यते सद्भिरात्मनि।
   या पितृत्वादि सम्बन्धमारोपणात्मिका।।–हरिभक्तिरसामृतसिन्धु –१/२/१०५।
3. श्रीराधापञ्चशती श्लोक– १५२।

यहाँ श्रीकृष्ण का राधा के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होन क कारण प्रतिदिन यमुना तट स सुगन्धित पुष्पगुच्छो को लेकर प्रसन्नमन से राधा जी से मिलने जाना, ऐसा लगा रहा है मानो राधा के नेत्रकटाक्ष अपने तन्त्र मन्त्र से बॉध लिये हो क्योकि अन्य किसी सखी पर रञ्चमात्र भी ध्यान नही दे रहे है।

साधन भक्ति के अतिरिक्त शेष दो भक्ति–भावरूप भक्ति एव प्रेम रूप भक्ति साध्यभक्ति की कोटि मे आते हैं।

(ख) भावभक्तिः–

भावभक्ति मे साधन के दो गुणों क्लेशघ्नत्व एव शुभदत्त्व के अतिरक्ति दो और गुण–मोक्षलघुताकृतत्त्व एवं सुदुर्लभत्व पाये जाते हैं।

मन की विशुद्ध सत्वप्रधान अवस्था का नाम भाव है। सूर्य की किरणो के साथ उसकी उपमा दी गयी है। इस अवस्था के उत्पन्न होने पर चित्त की विशेष प्रकार की आर्द्रता उत्पन्न होती है। प्रेम तथा सूर्य की किरणों के समान अपनी कान्तियो के द्वारा चिन्त के द्रवीभाव को उत्पन्न करने वाला, शुद्ध सत्त्व विशेष अर्थात् चित्त की विशुद्ध सत्त्वावस्था रूप वह भाव नाम से कहा जाता है।[1]

(ग) प्रेमभक्तिः–

प्रबल एवं प्रगाढ भाव का नाम प्रेम है। भावभक्ति प्रारम्भिक श्रेणी हो और प्रेम भक्ति उसकी ऊँची अवस्था का नाम है। भक्ति का मूल मानस भाव प्रेम होता है। रूपगोस्वामी ने दोनो मे मात्राकृत भेद करके भाव को साध्यभक्ति की प्रारम्भिक अवस्था मानी है एव प्रेम को उसकी परिनिष्ठित दशा। उस प्रकार दोनो मे कोई विशेष अन्तर नहीं है क्योकि दोनों साध्य भक्ति के अन्तर्गत आती है।

---

1. शुद्ध सत्वविशेषात्मा प्रेमसूर्याशु साम्यभाक्
   रूचिमिश्चत्त्मासृण्यकृदसौ "भाव" उच्यते।।–हरिभक्तिरसाभृतसिन्धु –१/३/१।

अत करण का अत्यन्त द्रवीभूत करा दन वाला आर अत्यधिक ममता से युक्त सान्द्रभाव का ही प्रम नाम से अभिहित किया गया ह।[1] पाञ्चरात्र मे प्रह्लाद, उद्धव तथा नारदादि ने प्रेमभक्ति मे सम्पूर्ण ममता को विष्णु सगत ही बताया। अन्यो के प्रति ममत्व रहित कवल विष्णु सगत ममता ही प्रेमभक्ति होती है। यह प्रम दो प्रकार का बताया गया है–[2] (१) भावोत्था (२) प्रसादोत्थ।

प्रसादोत्थ– प्रेमभक्ति का उदाहरण–

इन्द्र सदैव रमते विभवोत्त्मेन

यक्षेश्वरोऽयमतुलेन धनेन युक्त ।

ब्रह्माभवत्यनुपमो जगतां विधाता

राधे तवैव करूणापथमापातन्त.।।[3]

यहाँ इन्द्र का उत्तमोत्तम वैभव में रमण करना, यक्षराज कुबेर का अतुलनीय धन से युक्त होना, प्रजापति ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना मे प्रवृत्त होना यह सिद्ध करता है कि तीनो राधा की करूणादृष्टि के विषय बने है।

श्रीराधापञ्चशती काव्य मे वर्णित भक्ति के प्रमुख भेदों का विवेचन रूपगोस्वामी सम्मत भक्ति भेदो के आधार पर किया गया। यही भक्ति इस रूप में काव्य शास्त्रीय ढंग से वर्णित है। रूपगोस्वामी प्रभृति आचार्यो मे भक्ति रस के मुख्य भेद से तथा गौण भेद से कुल द्वादश भेदो में वर्णित किया है। इस प्रकार भक्ति रस को मूल रस सिद्ध किया है। **मुख्य रति से अभिव्यक्त रस–शान्त भक्ति, प्रीति, प्रेय, वात्सल्य तथा मधुर भक्ति रस पांच प्रकार** का होता है तथा गौणी रति से अभिव्यक्त **भक्ति रस–हास्य, अद्‌भुत, वीर, करूण, रौद्र, भयानक, वीभत्स,–७ प्रकार का होता है** इन द्वादश भक्ति रस का विवेचन प्रो० रसिक विहारी जोशी ने श्रीराधापञ्चशती मे किया है जो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के काव्यगत सौन्दर्य के रस योजना में द्रष्टव्य है।

इस प्रकार भक्ति के स्वरूप एवं विकास के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि भक्ति नि सन्देह सहृदयजनसबेद्य रस कोटि के अन्तर्गत मानी जानी चाहिए जिसका और भी सर्वोत्तम पुष्टिकरण प्रो० जोशी के श्रीराधापञ्चशती मे भक्ति स्वरूप के अवलोकन से हो जाता है।

---

1. सम्यङ्मसृणितस्यान्तो ममत्वातिशयाङ्कित ।
   भाव स एव सान्द्रत्मा बुधै प्रेम निगद्यते।।–हरिभक्तिसाभृतासिन्धु –१/४/१।
2. भावोत्थोऽतिप्रसादोत्थ श्रीहरिरति सद्विधा।–वही–१/४/१।
3. श्रीराधापञ्चशती श्लोक–४३१।

पञ्चम अध्याय

श्रीराधापञ्चशती—काव्यगत सौन्दर्यः—

(i) छन्द योजना

(ii) अलंकार योजना

(iii) रस योजना

(iv) गुण एवं रीति विवेचन

(v) भाषा एवं शैली

छन्द योजना

छन्द की गणना षडवेदागो के अन्तर्गत होती है। इसे वेद का चरण बताया गया है– छन्द, पादौ तु वेदस्य।[1] जैसे– चरणविहीन व्यक्ति चलफिर नही सकता उसी प्रकार छन्द के बिना वेद या कोई काव्यशास्त्र गतिशील नहीं हो पाता है। "चदि आह्लादने"[2] (भ्वादिगण) से छन्द शब्द निष्पन्न माना जाता है। "चन्दयति आहलादयति इति छन्दः", अर्थात् जो पाठको को आह्लादित करे, वह छन्द है। चन्द शब्द मे "चदेरादेश्च छः" इस उणदि सूत्र से च का छः हो गया तथा 'असुन्' प्रत्यय लगकर" "छन्द" शब्द बना। दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार यास्क ने छन्दस् का निवर्चन छद् (ढकना) धातु से दिया है" छन्दांसि छादनात्[3] अर्थात् आच्छादन अथवा नियमन के कारण छन्द को छन्द कहते है। यह आच्छादन होता है– भाव अथवा रस का,। कविता (पद्य) के चारों चरण काव्य रस की सीमा रेखा होते हैं। अर्थात् छंन्द भावों को आच्छादित करके समष्टि रूप प्रदान करते है। कात्यायन के अनुसार संख्या विशेष में वर्णो की सत्ता छन्द है।[4]

प्राचीन काव्य शास्त्री आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के १८वें अध्याय में छन्द के विषय में बताया है नियताक्षर–बन्ध ऐसी काव्य रचना है जिसमें अक्षर नियत हो, सुनिश्चित हो–नियतानि निश्चितानि अक्षराणि यास्मिन सः बन्धः' नियताक्षरबन्धः। इस प्रकार के छन्द विधान से काव्य में संगीतात्मकता, लयवाहिता, सहजप्रवाह आदि विशेषताएं उत्पन्न होती हैं। फलत: रस पिपासु पाठक की पद्य के प्रति एक नैसर्गिक अभिरूचि बन जाती है। **पद्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– "पदम् चरणम् अर्हतीति पद्यम्।" (पद् + यत = पद्यम्)** अर्थात् चरणों में व्यवस्थित को पद्य कहते हैं।

---

1. छन्द पदौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
   ज्योतिषामयन चशुर्निरूक्तं श्रोत्रभुच्यते।।
   शिक्षा घाण तुवेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम्।
   तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलाके महियते।।–पाणिनीय शिक्षा',
   –श्लोक–४१ एव ४२।
2. 'चदि' भ्वादिगण धातु–७०
3. यास्क, निरूक्त–७/१६
4. "यदक्षरपरिणाम तच्छन्द ।"–कात्यायन, सर्वानुक्रमणी–छन्दलक्षण।

इस प्रकार नियताक्षरबन्ध श्लोक रचना हेतु छन्द शस्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। समीक्ष्य काव्य श्रीराधापञ्चशती के रचयिता प्रो० जोशी जी छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ ज्ञाता सिद्ध होते हैं। इनकी भाव भाषा छन्दानुकूल है। इनकी रचनाओ में वर्णिक छन्द या वृत्त चातुर्यपूर्ण ढंग से वर्णनं है। इन वार्णिक छन्दो मे समवृत्त[1] विशेष प्रसिद्ध है। समवृत्त में एक अक्षर वाले पाद से लेकर एक–एक अक्षर बढाये गये २६ अक्षरों वाले पाद एक पृथक्–पृथक् समवृत्त छन्द होते है।[2]

श्रीराधापञ्चशती में प्रयुक्त छन्दविधान

प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती के कुल ५११ श्लोकों में कवि ने समवृत्त छन्द के अन्तर्गत भिन्न–भिन्न तेरह (१३) प्रमुख छन्दो का, भाव, भाषा, रस एव वर्ण्यविषायानुसार प्रयोग किया है। प्रयुक्त श्लोक संख्या के अवरोही क्रमानुसार छन्दों का वर्णनक्रम निम्न है– शार्दूलविक्रीडित १८७, वसन्ततिलका–१२१, द्रुतविलाम्बित–४३, शिखरिणी–३६, पृथ्वी–३१, भुजगप्रायात–२८, स्रग्धरा–१६, उपेन्द्रबज्रा–१८, मालिनी–१०, मन्दाक्रान्ता–६, त्रोटक–४, शालिनी–१, हरिणी–१।

इस प्रकार श्री राधापञ्चशती में इन सभी छन्दों का अन्य गुणों की भांति साभिप्राय प्रयोग किया गया है।

शार्दूलविक्रीडित–

यह प्रो० रसिक बिहारी जोशी का सर्वप्रिय छन्द है पूरे राधापञ्चशती में इसका प्रयोग सर्वाधिक–१८७ श्लोको मे किया गया है।

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा एक गुरू वर्ण आये, इसे शार्दूलविक्रीडित कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होता है जिसमें सूर्य (१२) तथा अश्व (७) सख्यक अक्षरों पर यति हों।"[3] यथा–

---

1. भट्ट केदार, वृत्तरत्नाकर–११४ "जिसके चारो चरण एक जैसे हो, समान लक्षण वाले हो, समवृत्त है।"
2. आरभ्यैकाक्षरात्पादादेकैकाक्षर वर्धितै ।
   पृथक्छन्दो भवेत्पादैर्यावत् षडविशति गतम्।।–वृत्तरत्नाकर–१/१७।

3.(क) "सूर्याश्वैर्मसजस्तता सगुरव शार्दूलविक्रीडितम्" भट्ट केदार वृत्तरन्ताकर–३/१००।
  (ख) सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्"।–गगादास, छन्दोमञ्जरी।

राधे! ते नयन विनोदनगरी कन्दर्पचूडामणे·
सौन्दर्येण सदा ददाति परमानन्द हरेश्चक्षुषे।
मह्म तन्नयन दुतं प्रकुरूतां दिव्येक्षणं ज्ञानदं
सिद्धि सर्वमनोस्थस्य च पुन. प्रीतिं परां प्राययत्।।[1]

अर्थात् हे राधा! तुम्हारे नेत्र तो कन्दर्पचूडामणि श्रीकृष्ण की विनोद नगरी है अपने अनोखे सौन्दर्य से ये श्रीकृष्ण के नेत्रो को हमेशा परमानन्द प्रदान करते हैं। मुझे भी ये नेत्र ज्ञान प्रदान करने वाली दिव्य दृष्टि प्रदान करे और परमप्रीति को उत्पन्न करते हुए समस्त मनोरथो की सिद्धि को प्राप्त करायें। इस प्रकार इसमें शार्दूलविक्रीडित[2] छन्द भरा है।

२. बसन्ततिलका–

प्रो० जोशी का यह प्रिय छन्द १२१ श्लोकों में वर्णित है "बसन्ततिलका" छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण मे क्रमशः क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरू वर्ण आये।[3] आचार्य काश्यप इसे सिहोन्नता तथा आचार्य सैतव उद्वर्षिणी कहते है। प्रथम, द्वितीय पाद के अन्तिम वर्णो से पूर्व वर्ण यदि आकार स्वर से युक्त हो और ओजगुण व्यञ्जक वर्णो का विन्यास किया गया हो तो बसन्ततिलका छन्द की शोभा अधिक बढ जाती है।[4]

यथा– तं नन्दनन्दनमहं कलयामि राधे!
कारूण्यनन्दनवने त्वयि संगतं तम्।
य सेवते मुनिगणः सकलं बिहाय
गोपगना अपि विहाय गृहाणि नक्तम्।।[5]

---

1. श्री राधापञ्चशती–श्लोक–५७।
2. इस प्रकार श्री राधापञ्चशती के श्लोक–१ से १४ तक, १६ से ८१ तक, २३६ से २७६ तक, ३४७ से ३४६ तक, ३६५ से ३६६ तक, ३७१, ४४५ से ४८६ तक, ४६६ से ५०२ तक, ५०४ से ५११ तक, (कुल १८७ श्लोकों में) शाईल विक्रीडित प्रयुक्त हैं।
3.(क) उक्ता बसन्ततिलका तभजा जगौ ग"।।–भट्टकेदार, वृत्तरत्नाकर ३/७।
(ख) अभिज्ञात तभजजैरन्तासक्तगुरूद्वयम्।
चतुर्दशाक्षर वृत्त बसन्ततिलक बिन्दुः।।–क्षेमेन्द्र, सुवृन्ततिलक–१/२६,
(ग) ज्ञेयं बसन्ततिलक तभजाजगौग"–गंगादास, छन्दोमञ्जरी
4. बसन्ततिलकस्याग्रे साकारे प्रथमाक्षरे।
ओजसा जायसे कान्ति सविकासबिलासिनी।।–क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलक–२/२०
5. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक सं० ८३।

हे राधा, तुम्हारे साथ करूणा के नन्दन वन मे बिहार करने वाले उस श्रीकृष्ण का सदा ध्यान करता हूँ जिस श्रीकृष्ण को मुनियो के झुण्ड के झुण्ड सब कुछ त्यागकर भजते हैं और गोपागनाए रात को घर छोडकर जिस की सेवा में चली जाती है।

इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती मे बसन्ततिलका छन्द का प्रयोग शार्दूलाविक्रीडित के बाद दूसरे स्थान पर है।[1]

३. द्रुतविलम्बित–

प्रो० जोशी जी ने श्रीराधापञ्चशती के ४३ श्लोकों में इसका प्रयोग किया है। "जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश' नगण, भगण, भगण, तथा रगण आये, उसे द्रुतविलम्बित छन्द कहा जाता हैं।"[2]

"पादो के प्रारम्भ में द्रुत एवं अन्त में विलम्बित गति के प्रयोग से तथा सभी पादों के रूचिर सन्निवेश से द्रुतबिलम्बित छन्द अधिक निखार पाता है।"[3]

यथा– तव कटाक्षलवं कलयाम्यहं

धनविहीनजनाय धनप्रदम्।

पतितबन्धुमनश्वरभूतिदं

त्रिविधतापहरं भवभुक्तिदम्।।[4]

जिस राधा के कटाक्ष के एक कण में ही पांच विशेषताएं है–

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–८२ से १३१ तक, २८८ से ३४६ तक, ३६७, ४२६ से ४३६ तक, बसन्ततिलका छन्द है।

2.(क) "द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।"–भट्टकेदार–, बृत्तरत्नाकर ३/४६

(ख) अभिव्यक्त नभभैरक्षरै द्वाम्दशक्षरम्।
वदन्ति वृत्त जातिज्ञा वृत्त द्रुतबिलम्बितम्।।
–क्षेमेन्द्र: सुवृत्त तिलक–२/१८।

3. प्रारम्भे द्रुतविन्यास पर्यन्तेषु विलम्बितम्।
विच्छित्या सर्वपादाना भांति द्रुतबिलम्बितम्।।–सुवृत्ततिलक–२

4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक १६७।

१ यह निर्धन को धनी बना देता है। २ यह पतित जनों को बन्धु के समान रक्षा करता है। ३ यह अक्षय विभूति प्रदान करने वाला है। ४ यह सांसारिक विविध ताप हर लेता है ५ भवसागर से मुक्त करा देता है। ऐसे कटाक्ष लव की जय हो।

इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती द्रुतविलाम्बित[1] छन्दो से सरल, सहज, भावगम्य है।

४. शिखरिणी–

यह मनोहारी, गेय, संगीतात्मक, छन्द श्रीराधापञ्चशती के ३६ श्लोको मे प्रयुक्त है। "जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, एक लघु तथा एक गुरू होता है साथ ही साथ (१७) अक्षर वाले प्रत्येक पाद में रस (६) और रूद्र (११) संख्यक अक्षरों के बाद यति होती है। उसे शिखरिणी कहते है।[2]. .... किसी विषय की सीमा निर्धारण करते समय शिखरिणी छन्द का प्रयोग करना चाहिए।[3]

यथा– यथा रात्रिः सर्वं क्षपयति दिनजयोतिरचिरं
धनाशा प्रज्ञानां ग्लपयति महाबोधजलाधिम्।
कुरूष्व श्रीराधे! त्वयि निहितवाचां भवजुषा
कृपापांगैः श्रेय. परमविमलं मोक्षकुसुमम्।।[4]

राधाभक्ति का माहात्म्य प्रदर्शित करते है–हे राधा! जिस प्रकार रात्रि दिन के समस्त प्रकाश को तत्काल नष्ट कर देती है इसी प्रकार धन की लालसा विद्वानों के ज्ञानसागर को सुखा देती है भवसागर में फंसे हुए जो व्यक्ति तुमसे अपनी वाणी स्थापित कर देते हैं, तुम अपने कृपा कटाक्ष से उनसे परमनिर्मल मोक्षपुष्प रूपी कल्याण प्रदान कर देती हो।

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१६७ से २३८ तक, एवं ३७२, कुल ४३ मे द्रुतविलम्बित छन्द।
2. (क) "रसै रूदैश्छिन्ना यमनसमलाग शिखरिणी।।"–
–भट्टकेदार, वृत्तरत्नाकर–३/६३
(ख) "यमनसभलैर्गेन युक्तासप्तदशाक्षरा।
षडेकादशविच्छेदवती शिखरिणीमता।।"–क्षेमेन्द्र; सुवृत्ततिलक–१/३४।
3. "उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता।" सुवृत्ततिलक–३/२०।
4. प्रो० रसिक बिहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती; श्लोक–१६३।

इसी प्रकार श्रीराधापञ्चशती के ३६ श्लाका मे शिखरिणी[1] छन्द का प्रयोग अर्थान्तरन्यास आदि अलकारो को पुष्ट करता है।

५. पृथ्वी–

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे क्रमश· जगण, सगण, जगण, सगण, यगण एक लघु वर्ण तथा एक गुरू वर्ण हो, उसे पृथ्वी छन्द कहते है। इसमे १७ अक्षरों वाले प्रत्येक पाद मे वसु (८) तथा ग्रह (६) संख्यक अक्षरो के बाद यति होती है।[2] .. ..

"असमस्त और अलग–२ पदो के प्रयोग से पृथ्वी छन्द विस्तृत एवं विशाल प्रतीत होता है। अतः इस प्रकार का प्रयोग उसके सौन्दर्य को और भी अधिक निखार देता है।"[3]

यथा– दिवाकरकरच्छटा कमलमण्डले राजते
हरिप्रियतमा पदधुतिकण· समाधौ सदा।
विकाशयति तत्प्रभा कमलमेव नान्तर्मनः
सदैव चरणद्युतिर्मम विभुक्तमन्तर्मनः।।[4]

अर्थात् उदीयमान भगवान् भास्कर की किरणो की छटा कमलमण्डल से शोभित होती है। श्रीकृष्ण की प्रियतमा राधा की चरणकान्ति का कण समाधि में प्रकाशित होता हैं। सूर्य का प्रकाश केवल कमल को खिलाता है अन्तर्मन को नहीं। राधा के चरणो का प्रकाश मेरे उस अन्तर्मन को खिलाता है जो मुक्त हो चुका है।

इसी प्रकार श्रीराधापञ्चशती के कुल ३१ श्लोकों में पृथ्वी छन्द का मनोहारी वर्णन द्रष्टव्य है।[5]

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक सख्या–१६० से १६६ तक, तथा ३६६ ३७०।

2.(क) "जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरू।"
—भट्टकेदार, वृत्तरत्नाकर–३/६४।

(ख) जसङ्गै सयलैर्गेन युताष्टनसवह्वति
दशसप्ताक्षरा पृथ्वी कथिता वृन्तकोविदै ।। क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलक–१/८२।

3. "असमासै पदैर्भाति पृथ्वी पृथक्–पृथक् स्थितै।"–सुवृत्त तिलक।

4. प्रो० रसिक बिहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती; श्लोक–१३३।

5. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१३२ से १५६ तक तथा ४६०, ४६१, ४६२ मे पृथ्वी है।

६. भुजङ्गप्रयात–

इस छन्द का श्रीराधापञ्चशती में सम्यक प्रयोग २८ श्लोकों में दृष्टिगोचर होता है। "जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे चार यगण तथा बारह अक्षो पर पदान्त यति हो उसे भुजङ्गप्रयात कहते है।"[1]

यथा– यथा दर्पणे पकिले चन्द्रबिम्वं

सफुटं न प्रकाश प्रयात्येव लोके।

तथा पापमालिन्मयुक्ते तु चित्ते।

कुतो राधिकाया· कृपाया प्रकाशः।।[2]

इसी प्रकार अन्य प्रसंग मे द्रष्टव्य है– बिना भक्तियोग के तुम्हारी कृपा कहाँ, और बिना तुम्हारी कृपा के भक्तियोग कहा प्राप्त होता है। सामान्य रूप से एक के अभाव में दूसरे का न होना तथा एक का दूसरे पर आश्रित होना अन्योन्यश्रय दोष माना जाता है। किन्तु राधा के आश्रय से यह अन्योन्याश्रय दोष, दोष न होकर गुण हो जाता है। यह गुण परस्पर कृपा तथा भक्ति पर आश्रित होता है।[3]

इस प्रकार राधापञ्चशती मे अन्य कई स्थलों पर भुजङ्गप्रयात द्रष्टव्य है।[4]

७. स्रग्धरा–

"जिसके प्रत्येक चरण मे मगण, रगण, भगण, नगण, तथा तीन यगणों से युक्त इक्कीश अक्षर हो तथा जिसकी तीन बार मुनि (७) संख्यक अक्षरों पर यति हो वह छन्द रचना स्रग्धरा कहीं जाती है।[5] "पादो के आदि मे और अन्त में आकार या कोई अन्य गुरू

1.(क) "भुजङगप्रयात भवेद्यैश्चतुर्भि·।"–भट्टकेदार–वृत्तरत्नाकर ३/५५।
(ख) "भुजडगप्रयात चतुर्भिर्यकारै।।" गङ्गदास, छन्दोभञ्जरी २/५।
2. प्रो० जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–३७८।
3. वही, श्लेक–३७६।
4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक सख्या–३७६ से लेकर ४०३ तक
5.(क) "म्रभ्नैर्याना त्रमेण त्रिभुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।" –भट्टकेदार वृत्तरत्नाकर–३/१०४।
(ख) युक्त मरभनैयैश्च त्रिभिः सप्ताक्षरैस्त्रिभि
वेदैश्च स्रग्धरा वृत्तमेकविंशाक्षर विदु·।।–क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलक, –१/३७।

वर्ण रहे तथा पादान्त मे विसर्ग रहे और यदि विराम का प्रयोग न किया जाये तो स्रग्धरा छन्द अत्यन्त सुशोभित होता है।[1]

यथा– श्रीराधा नर्तयन्ती श्रुतिकलितवच सुन्दरी नर्तकीं ता

शास्त्रार्थ व्याजस्यां सकलरसमयी भक्तिजिह्वग्रभागे।

काश्मीरी केशवार्यो निखिलनिगमभृद्भाष्यमाह प्रपन्नों

गीताया योगिवर्या अमृतरसमयी पान्ति शास्त्रार्थबिन्दुम्।।[2]

तात्पर्य है कि वेदवाणी ही एक परमसुन्दरी नर्तकी है जो सकल रसो से परिपूर्ण है। राधा इस नर्तकी की भक्तों की जिह्वा के अग्रभाग पर शास्त्रार्थ के बहाने से नचाती रहती है। इस विषय मे दिग्विजयी शास्त्रमहारथी आचार्य केशव काश्मीरी यह प्रमाण है जिन्होंने राधा जी की शरण में आकर श्रीमदभगवद्गीता पर समस्त वेदों को धारण करने वाले भाष्य की रचना की। बडे–बडे योगी अमृतरसमयी उस शास्त्रार्थ की बूंद को चख–चख कर प्रसन्न होते हैं।

इस प्रकार राधापञ्चशती के १६ श्लोकों में स्रग्धरा छन्द प्रयुक्त है।[3]

८. उपेन्द्रबज्रा–

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे क्रमशः जगण, तगण, जगण और उसके बाद दो गुरू वर्ण आये तथा ११ अक्षरों पर चरणान्त यति हो उसे उपेन्द्रबज्रा कहते हैं[4]।"

---

1. आकारगुरूयुक्तादि पर्यन्तान्तविसर्गिणी।
   असंस्यूत विरामा च स्रग्धरा राजतेतराम्।।–सुवृत्ततिलक–२/४१
2. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४१५।
3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४१३ से लेकर ४२८, तथा ४६३, ४६४, ४६५।
4.(क) उपेन्द्रबज्रा जतजास्ततो गौ।।"–भट्टकेदार,–वृत्तरत्नाकर–३/२६।
  (ख) "उपेन्द्रबज्रा प्रथमे लघौ सा।।"–गडगदास–, छन्दोमञ्जरी–२२
  (ग) जतजैर्गुरूयुग्मेन संसक्तैरुपलक्षितम्
   वदन्त्युपेन्द्रवज्राख्य वृत्तमेकादशाक्षर।।–क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलक,–१/१६।

यथा— कटाक्षमेघोऽमृतवर्षणेन

श्रीकृष्णभक्तिव्रततिं तनोति।

अहो! प्रसूनानि विलोक्य तस्याः

कृती प्रयाति प्रयतो विभुक्तिम्।।–[1]

तात्पर्य यह है कि राधा का कटाक्ष ही वह अनोखा मेघ है जो अमृत की वर्षा करके श्रीकृष्णभक्ति की लता को पल्लवित कर देता है। जो जितेन्द्रिय पुण्यात्मा व्यक्ति इस भक्तिलता के पुष्पों को देख लेता है वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार श्रीराधापञ्पशती के कुल १८ श्लोकों में उपेन्द्रबज्रा का प्रयोग हुआ है।[2]

६— मालिनी—

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण आये तथा साथ ही पन्द्रह (१५) अक्षर वाले प्रत्येक चरण मे भोगी अर्थात् नाग (८) तथा लोक (७) सख्यक अक्षरों पर यति होती है उसे मालिनी कहते है।[3]

यथा— जयतु जयतु राधे। नामभन्त्रस्त्वदीयः
प्रथयति फलममरं, शाश्वतञ्चाद्वितीयम्।
गणयति मम चित्तं स्वल्पकालप्रभावी—
तरसुरवरमन्त्राणमुदक नगण्यम्।।[4]

अर्थात् है राधा! तुम्हारे नाममंत्र की जय हो, जय हो। जो शाश्वत, अद्वितीय, मोक्ष रूपी अमर फल प्रदान करता है। मेरा चिन्त अन्यान्य देवताओ की आराधना के स्वल्पकाल तक प्रभावित करने वाले उत्तरफल को नगण्य समझता है।

---

1. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक—३५४,
2. राधापञ्चशती, श्लोक—३५० से ३६४, तथा ३७३ ३७४, ३७५,
3. "ननमयथयुतेय मालिनी भोगिलोकै।"—भट्टकेदार, वृत्तरत्नाकर, ३/८७।
4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक—४०४

इस प्रकार प्रो० जोशी के श्रीराधापञ्चशती के कुल (१०) दस श्लोको मे मालिनी छन्द का सम्यक् प्रयोग हुआ है।[1]

१०. मन्दाक्रान्ता–

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे क्रमश. मगण, भगण, नगण, तगण, तथा दो गुरू वर्ग आये तथा सत्रह (१७) अक्षरो वाले इस चरण मे जलधि (४) षट् (६) एंव अग या कुलपर्वत (७) सख्यक वर्णो पर यति हो उसे मन्दाक्रान्ता कहते है।"[2] "ध्यातव्य है कि कालिदास विरचित मेघदूत आद्यन्त इसी छन्द में निबद्व है।"

"प्रत्येक पाद के आदिम चार वर्णो की गति मन्द रह तथा उसके बाद के छ. वर्ण अत्यत्त तरल रहे तो मन्दाक्रान्ता छन्द की शोभा द्विगुणित हो उठती है।[3]

इस प्रकार प्रो० जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती मे कुल नव (६) श्लोकों में मन्द्राक्रान्ता का सुन्दर प्रयोग हुआ है।[4]

यथा– राधेः केचिन्छ्रुतिविधिरता यान्ति संसारपारं
केचित् तीर्थभ्रमणनिरता एवं धन्या भवान्ति।
केचिन्नित्यं तव चरणयोर्ध्यानयोगेन मुक्ताः
केचिन्मूर्खाः सकलविमुखाः संसृतौ विभ्रमन्ति।।[5]

अर्थात् हे राधा! कोई बेदविद्या के पारगत वैदिक कर्मकाण्ड मे लगकर ही इस ससार के पार चले जाते हैं। कोई तीर्थो का भ्रमण कर ही धन्य हो जाते है। कोई नित्य तुम्हारे चरणों के ध्यान के योग से मुक्त हो जाते हैं। कुछ मूर्ख इन सबसे विमुख रहकर इस ससार में भटकते रहते हैं।

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४०४, से ४१२, तथा ५०३।
2.(क) मन्दाक्रान्ता जलविधषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेतृ"।।– भट्टकेदार, वृत्तरत्नाकर–३/६७।
(ख) मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मकम्"।। गंड़गादास, छन्दोमञ्जरी।
(ग) चतु षट सत्तविरति वृन्त संप्तदशाक्षरम्।
मन्दाक्रान्ता भनतैस्तगमैश्चाभिधीयते।।–क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलकम्–१/३५।
3. मन्दाक्रान्ता विश्रब्धैश्चतुर्भि प्रथमाक्षरै ।।
मध्यषटकेमन्दाक्रान्ता विराजते।।–सुवृत्ततिलकम्–२/३४।
4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१५, तथा २८० से २८७।
5. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२८६।

११. तोटक–

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे अम्बुधि अर्थात् समुद्र (४) सख्या वाले सगण हो तथा चरणान्त मे यति हो। दूसरे शब्दों मे जिसमे प्रत्येक चरण में चार सगण तथा चरणान्तयति हो उसे तोटक कहते हैं।[1]

यथा– परिहाय विनाशकरं सकल

सुतदारसुहृतपरिवारगणम्।

वृषभानुसुतापदपद्मरतिं

कलयाम्यधुना ननु धामगतिम्।।[2]

अर्थात् मैने विनाशकारक समस्त पुत्र, कलत्र मित्र तथा परिवार के जनों को छोड दिया है। वृषभानुनन्दिनी राधा के चरणाविन्द में अनन्तप्रेम को ही प्रधान मान लिया है। मै जान गया हूँ कि परमधाम की गति का मार्ग क्या है?

इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती के कुल ४ श्लोको में तोटक का सुन्दर प्रयोग हुआ हैं।[3]

१२. शालिनी–

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश मगण, तगण, तगण, तथा दो गुरू तर्ण आये उसे शालिनी कहते है। इस ११ अक्षर वाले प्रत्येक चरण मे अब्धि (४) तथा लोक (७) संख्यक अक्षरों पर यति होती है।"[4] इस छन्द का प्रयोग श्रीराधापञ्चशती में केवल एक श्लोक में है।

1.(क) "इह तोटक मम्बुधिसै प्रथितम्।" भट्टकेदार, वृत्तरत्नाकर–३/४८
(ख) "वद तोटकमब्धिसकारयुतम्।।"–गङ्गादास, छन्दोमञ्जरी–२/६
2. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४४१
3. श्रीराधापञ्चशती: श्लोक–४४१, ४४२, ४४३ तथा ४४४
4.(क) "शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकै।। –भट्टकेदार वृत्तरत्नाकर–३ ३४
(ख) पूर्वाक्षरचतुष्कान्तविरतिर्मततान्वितां।
गुरुद्वितययुक्ता च शालिन्येकादशाक्षरा।" क्षेमेन्द्र सुवृत्ततिलक–१/२२

यथा– सम्पत्ति सा नास्ति यावद् विपत्ति–
विंद्या नास्ते यावदज्ञानमूलम्।
सम्पत्ति सा यत्र भक्ति प्रफुल्ला
वल्लीवास्ते राधिके! मुक्ति पुष्पा।।[1]

अर्थात् हे राधा! यह सम्पत्ति, सम्पत्ति नही है जिसमे विपत्ति मिली रहती है। वह विद्या विद्या नहीं है जहां अंज्ञान का बीज मिला रहता है। वास्तव में वही सम्पत्ति है जहां भक्ति की प्रफुल्लित लता लहलहाती है और जिस लता पर मुक्ति रूपी सुन्दर पुष्प खिल जाते है।

१३. हरिणी–

"जिस छन्द के प्रत्येक चरण मे क्रमश: नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु तथा एक गुरू वर्ण आये। साथ ही इस (१७) सत्रह अक्षर वाले प्रत्येक चरण में क्रमश: रस (६), युग (४) तथा हय अर्थात सूर्य के रथ के घोड (७) संख्यक अक्षरों पर यति होती है। उसे हरिणी कहते हैं।[2] यह छन्द श्रीराधापञ्चशती के केवल एक श्लोक मे प्रयुक्त है।

यथा– क्वचिदथ शरज्ज्योत्स्नालोके प्रफुल्लितमल्लिका–
कुवलदलेष्वाशाकोणो सुगन्धाविसर्पिषु।
मधुरलहरीपूरे वंशीनिनादमहोदधौ।
मिहिरतनयाकूले राधा जुहाव रसप्रिय:।।[3]

अर्थात् एक बार जब शरत्पूर्णिमा को पूर्णचन्द्र की चॉदनी का प्रकाश चारों तरफ फैल गया। दिशाओं के कोणे–कोणे में प्रफुल्लित मल्लिका तथा नीलकमलों की वनी दिव्य सुगन्ध फैलाने लगी। रस प्रिय श्रीकृष्ण वंशी बजाने लगे। बंशी के नाद का महासागर हिलोरे लेने लगा। मधुर ध्वनि की लहरे यमुना के किनारे पर लहराने लगी। तब श्रीकृष्ण ने राधा को वहां पुकार लिया।

---

1. प्रो० रसिक विहारी जोशी; श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४४०.
2. "रसयुगहयैन्सौं म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा।"–भट्टकेदार. वृत्तरत्नाकर ३/६६.
3. प्रो० रसिक विहारी जोशी; श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–३६८.

अलंकार योजना

भारतीय वाड्मय मे अलङ्कार की महिमा बडी विशाल है। मानव ही नही प्रत्युत् प्रकृति भी अपने अङ्गो को अलडकृत करने मे कथमपि पराङ्गमुख नही होती। कवि भी प्रकृति से शिक्षा का ग्रहण करने वाला एक भावुक व्यक्ति होता है। वह अपनी रचनाओं को अलङ्कारों से सजाने का प्रेमी तथा अभ्यासी होता है। अलङ्कार का अलङ्कारत्व तभी हो जब वह चमत्कार या वैचित्य से मुक्त हो– वैचित्र्यम् अलङ्कारः। प्राचीनतम् वाङ्गमय ऋग्वेद में उपमादिअलङ्कार का प्रयोग देखा जा सकता है।[1] इसी क्रम में रामायण, महाभारत से प्राप्त उदाहरण, भरत भामह, दण्डी, भोज, मम्मट, विश्वनाथ, आचार्य जगन्नाथ एव अप्पय दीक्षित आदि को योगदान महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं।

अलंङ्कार शब्द का तात्पर्यः—

(क) "अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः अर्थात् जिसके द्वारा शब्द एव अर्थ का अलङ्कार किया जाय वही अलङ्कार है प्रस्तुत व्याख्या में– "अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्" नियम से, करण अर्थ में घञ् प्रत्यम होता है (अलम् + कृञ् + घञ् = अलङ्कार)।

(ख) अलङ्करणम् अलङ्कार. अथवा अलङ्कृतिः' अलङ्कारः अर्थात् अलङ्करण ही अलङ्कार है। यहॉ पाणिनीय सूत्र– "भावे" (३.३.१८) से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है– (अलम् + कृञ् + घञ्)।

काव्य में अलङ्कार का स्वरूप लक्षण क्या हैं? प्रमुख अलङ्कारशास्त्रज्ञो का मत द्रष्टव्य है–

आचार्य भामह का मत है कि काव्य अलङ्कार के कारण उपादेय होता है[2] और उसमें सौन्दर्य ही अलङ्कार है।[3] आचार्य दण्डी ने गुणो तथा अलङ्कारों में कोई भेद नहीं

---

1. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचो, गर्तारूगिव सनये धनानाम्।
   जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रेव निरिणीते अप्तु।।–ऋग्वेद उषम् सूक्त (१/१२४/७)।
2. "काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्" भामह काव्यालङ्कार (१/१/१
3. "सौन्दर्यमलङ्कारः"– भामह काव्यालङ्कार, (१/१/२)।

माना वल्कि काव्य शोभा के जितने भी निष्पादक धर्म है सब अलङ्कार ह।[1] आचार्य बामन अलङ्कार शब्द को अलङ्कार्य वस्तु तथा अलङ्कारक उपामादि दोनां ही अर्थो मे ग्रहण करते है।[2] ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने अलङ्कार को काव्य के चारूत्व का हेतु माना है– अलङ्कारो हि चारूत्वहेतु प्रसिद्ध·। आचार्य कुन्तक के अनुसार कवि की प्रतिभा से उल्लसित वैचित्र्य ही अलङ्कार है "वैचित्र्यमलङ्कारः।...... कविप्रतिभोस्थित विच्छितविशेषः अलङ्कार। आचार्य मम्मट के अनुसार शरीर शोभवर्धक हार, कटककुण्डलादि के समान अनुप्रासोपमादि के शोभावर्धक अस्थिर धर्म हैं। अस्थिर का अभिप्राय है कि काव्य में अलङ्कार की स्थिति आवश्यक नहीं रहती। वे रह भी सकते हैं और नहीं भी।[3] इसी परम्परा के समर्थक आचार्य विश्वनाथ अलङ्कार को शब्दार्थ के शोभावर्धक अस्थिर धर्म तथा रसादि का अङ्ग रूप में उपकार करने वाला धर्म मानते हैं।[4]

आचार्य भरत द्वारा वर्णित चार अलङ्कार विकसित होते हुए १७वीं शती ई० में अप्पयदीक्षित द्वारा १२५ अलङ्कारों का वर्णन किया गया है। वीसवी शती के कवि प्रो० रसिक विहारी जोशी ने "श्रीराधापञ्चशती" में शब्दालङ्कारो[5] एवं अर्थालङ्कारों[6] के अन्तर्गत अलकृत शैली में श्रीराधा एव कृष्ण की कथावस्तु प्रस्तुत की है।

शब्दालङ्कार

श्रीराधापञ्चशती में शब्दालङ्कार के अन्तर्गत अनुप्रास एव यमक उल्लेखनीय हैं, जिसमें प्रथम स्थान अनुप्रास का है, द्वितीय यमक का।

---

1. "काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कार प्रचक्षते।" दण्डी· काव्यार्दश।
2 "अलङ्क्रियतेऽनेन, अलङ्कतिरलङ्कारः।
करणव्युत्पत्या पुनरलङ्कारशब्दोऽयम् उपमादिषु वर्तते।।" '–वामन काव्यालङ्कासूत्र
3. उपकुर्वन्ति त सन्त येङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारदिवदलङ्कारास्तेनुप्रासोपमादयः।।–आचार्य मम्मट; काव्यप्रकाश ८/२।
4. शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिन·।
रसादीनुपकुर्वन्तोडलङ्कारास्तेङ्गादिवत्।।–आचार्यविश्वनाथ, साहित्यदर्पण–१०/१।
5. "शब्दपरिवृत्यसहत्त्व शब्दालङ्कार", –काव्यप्रकाश।
6. "शब्दपरिवृत्तिसहत्त्वमर्थालङ्कारः कथ्यतें–।। वही।

(१) अनुप्रास–

वर्णो तथा व्यञ्जनो का जो सादृश्य हं उसे अनुप्रास कहते है। वर्णसाम्य का अभिप्राय है स्वरो का असमान अथवा विसदृश होने पर भी व्यञ्जन सादृश्य का होना।[1] क्योकि अनुप्रास व्यञ्जनो की ऐसी आवृत्ति है जिसमे व्यवधान न हो और जो रस, भावादि के अनुकूल हो।

श्रीराधापञ्चशती में जो अनुप्रास के अनेकश. उदाहरण द्रष्ट्व्य है। यथा–

हे राधे! तव–चारूतां नयनयोदृष्टैव सर्वे सुरा
आश्चर्येण निमेषशूनयनयनाः सद्यों वभूवुःपुरा।।[2]

अर्थात् हे राधा प्राचीन काल में जब देवताओ ने तुम्हारे नेत्रो की अनुपम सुन्दरता को देखा तो वे सब आश्चर्य से चकित हो गये और तभी से हमेशा के लिए देवताओं के नेत्र निमेषशून्य हो गये यहॉ अन्त्य वर्ण सुरा एव पुरा का साम्य होने से अन्त्यनुप्रास का उदाहरण है। इस प्रकार समग्र राधापञ्चशती में अनुप्रास के अन्तर्गत छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, एवं अन्त्यानुप्रास के उदाहरण दृष्टिगोचर होते है।[3]

(२) यमक–

"भिन्न–भिन्न अर्थो वाले सार्थक स्वर व्यञ्जन समुदाय की इसी क्रम में आवृत्ति को यमक अलङ्कार कहते हैं अर्थात् जिस स्वरव्यञ्जन समुदाय की आवृत्ति हो, उसका कोई एक अश अथवा समूचा अंश यदि निरर्थक हो तो कोई बात नहीं, परन्तु यदि सार्थक अश की आवृत्ति हो तो वह भिन्न अर्थ वाला होना चाहिए। समानार्थक शब्दों की आवृत्ति को यमक नहीं माना जाता है।[4]

श्रीराधापञ्चशती काव्य में यमक का प्रयोग कम स्थानों पर हुआ है– उदाहरणार्थ–

1.(क) "वर्णसाम्यमनुप्रास·" आचार्यमम्मट, काव्यप्रकाश–१०४, नवम् उल्लास
(ख) "अनुप्रास· शब्दसाम्य वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।" –आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण–१०/३
2. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–८१।
3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२, ३, ६, ३७, १०२, १०३, १०७, १११, ११४, ३५१, ५०६।
4.(क) अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुन. श्रुति., यमकम्।।–काव्यप्रकाश–११७, नवम् उल्लास।
(ख) सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसहतेः
क्रमेण तेनैवावृत्तियमकं विनिगद्यते।।– साहित्यदर्पण–१०/८।

"हे राधा! सुवर्ण (अच्छे–अच्छं अक्षरो वाला नाम हो) सुवर्ण (अच्छी कांत्ति वाला चमकता हुआ) सोना हैं। ऐसा विद्वान् ज्ञानी जनो का कहना है। सुकृत (पुण्य) कर्म सम्पादन करने मे पारङ्गत कोई विरला ही पुण्यात्मा पुरुष इस सुर्वण को नाममन्त्र को धारण करता है। कोई पुरुषार्थचतुष्टय् का सम्पादन करने वाला इस सुवर्ण का भोग करता है।[1] यहॉ सुवर्ण शब्द की आवृत्ति भिन्नार्थक है। अतएव यमक है।

अर्थालङ्कार

अर्थालङ्कार पद का अभिप्राय है काव्य में वर्णनीय विषय का सजाया जाना। तात्पर्य यह है कि कवि सामाजिक, श्रोताओं, और पाठकों को आनन्दरूप रस की अनुभूति कराने के लिए अर्थप्रधान अलङ्कारो का प्रयोग करता है। आचार्य रूद्रट के अनुसार अर्थालङ्कारों के मूलाधार चार हैं– वास्तव, औपम्य, अतिशय एवं श्लेष। सभी अलङ्कार इन्हीं के विशेष रूप हैं।

श्रीराधापञ्चशती मे वर्णित अर्थालङ्कारो मे, प्रयुक्त अवरोही संख्या क्रम में निम्न उल्लेखनीय है(१) उदात्त, (२) दृष्टान्त, (३) उपमा, (४) उत्प्रेक्षा, (५) रूपक, (६) काव्यलिङ्ग, (७) अर्थान्तरन्यास, (८) संसृष्टि, (९) विभावना, (१०) निदर्शना (११) व्यतिरेक (१२) दीपक, (१३)प्रतिवस्तूपमा, (१४) अतिशयोक्ति, (१५) विशेषोक्ति, (१६) सन्देह आदि।

(१) उदात्त अलङ्कार–

श्रीराधापञ्चशती काव्य उदात्त अलङ्कार के प्रयोग भरा पडा हैं प्रयुक्त सभी अलङ्कारों में उदात्त अलङ्कार श्लोक सख्या की दृष्टि से सर्वाधिक है "लोकोत्तर सम्पति का वर्णन उदात्त अलङ्कार होता है, और वर्णनीय वस्तु में यदि महापुरुषों का चरित्र अङ्गभूत हो तब भी उदात्त अलङ्कार होता है"।[2]

---

1. सुवर्णमेवास्ति सुवर्णनाम
   त्वदीयमित्येव वदन्ति विज्ञा।
   दधाति कश्चित् सुकृतौ नदीष्णो
   भुनक्ति कश्चित् प्रकृतौ प्रवीण ।।–श्रीराधापञ्चशती'–श्लोक–३५१।

2.(क) "लोकातिशय सम्पन्तिवर्णनोदान्तमुच्यते।"– साहित्यदर्पण–१०/६४।
  (ख) "उदान्त वस्तुन सम्पत, महता चोपलक्षणम्।" काव्यप्रकाश–१७६, दशम उल्लास.

यथा– हे राधे! वृषभानुदेवतनये! हे कृष्णहज्जीवके।
प्रागल्भ्यं मम ते स्तुतौ कृतमते क्षन्तव्यमेवत्वया।
लीलाम्भोजविसर्पिनीलमधुलिट् झङ्कारशङ्काकरी
वाणी में सहसोन्मिमेष कमलध्यानेन काव्यङ्करी।।[1]

यहाँ राधा की वृषभानु जी की लाडलीपुत्री, श्रीकृष्ण को सदा प्राण देने वाली होने से अंगभूतचरित्र वर्णन तथा राधा के हाथ मे घूमते हुए लीलाकमल के प्रभाव से काव्यप्रणयन की शक्ति लोकोत्तर सम्पत्ति के रूप मे वर्णित है। अतएव उदात्त का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इस प्रकार राधा एव कृष्ण का भक्तिप्रधान प्रशंसनीय चरित्र लोकोन्तरसम्पति पोषक वर्णन श्रीराधापञ्चशती मे उदात्त अलङ्कारो के रूप में द्रष्ट्व्य है।[2]

(२) दृष्टान्त–

दृष्टान्त का व्युत्पत्तिकृत अर्थ है– "दृष्टोऽन्तः निश्चयों यत्र," अर्थात् जहाँ दृष्टान्तिक वाक्यो के द्वारा दार्ष्टान्तिक वाक्य के अर्थ का निश्चय देखा जाता है अथवा जहाँ साधारण धर्म आदि का बिम्बप्रतिविम्बभाव होने से दो वाक्यों का औपम्य प्रतीत होता है वहा दृष्टान्त अलङ्कार है।[3]

यथा– शब्दार्थौ न विलक्षणौ न च चमत्कारेण पूर्णौ क्वचित्।
काव्ये में हरिनामयोगकरणात् ग्राहयौ भवेतां वुधैः।
निर्गन्धं कटुचूर्णकं ननु महानिम्बस्य कर्पूरयुक्
दिव्यं सौरभमातनोति सुधिया सम्पर्कजन्यं यशः।।[4]

---

1. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४६८,
2. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१ से ६, ११ से २०, १०४, १२०, १३२, ४२४, ४६५, ४८४, ४५२ से ४६२, ४६३, ४६५, ४६८.
3.(क) "दृष्टान्त पुनरेतेषा सर्वेषा प्रतिबिम्बिनम्।।"–काव्यप्रकाश, १५५, दशमोल्लास।
(ख) "दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुत प्रतिबिम्बनम्"।। साहित्यदर्पण–१०/५०।
4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक संख्या–२३.

कवि का काव्य न तो शब्दार्थ से विलक्षण है और न चमत्कारपूर्ण, फिर भी श्रीकृष्ण नाम संयोग से विद्वानों द्वारा ग्राह्य होता है नीम का निर्गन्ध तथा कटुचूर्ण भी कर्पूर के सयोग से सौरभ फैला देता है। इस प्रकार दृष्टान्त का सर्वोत्तम उदाहरण हो

इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती काव्य राधा के भक्तिप्रधान श्रृङ्गारिक वर्णन अलङ्कृत दृष्टान्तो से भरा है जो अनेकश दृष्टान्त अलङ्कार के रूप में द्रष्ट्व्य है।[1]

(३) उपमा–

"प्रायः एक ही वाक्य में उपमान तया उपमेय का भेद होने पर दोनों के गुण, क्रिया आदि धर्म की समानता का वर्णन उपमालङ्कार है। अर्थात् दो पदार्थो के वैधर्म्य रहित तथा वाच्य सादृश्य को उपमा कहते है।[2] मुख्यत. उपमा के दो भेद हैं– (१) पूर्णोपमा (२) लुप्तोपमा।

यथा– राधे! ते कुरुते कटाक्षलहरी नीलोत्पल व्याकुल

विम्बोष्ठं रमणीय–विद्रुम–लतारूण्य–प्रकर्षनतम्।

आस्यं लज्जयतीव चन्द्रकिरण–ज्योत्स्ना–चयं निर्मल

चक्षुः शंबर–शावकस्य मधुरा नेत्रच्छटा चञ्चलाम।।[3]

यहाँ राधा के लाल बिम्बफल जैसे अधर रमणीय विद्रुमलता की अरूणता को नमो देते है। अतएव पूर्णोपमा का उदाहरण है। इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती काव्य में उपमा की छटा अनेकश. दर्शनीय है।[4]

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक– ६, १०, १६, २३, ४०, ६१, २०२, २४३ ३२२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७८, ४६६, ४८८, ४८६, ४६२

2.(क) "साधर्म्यमुपमा भेदे।" काव्यप्रकाश–१२५, दशमोल्लास.।

(ख) "साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।।"– साहित्यदर्पण–१०/१४

3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–५,

4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक– ५, ८, १८, १६३, २३१, ३२४, ३२७, ३५६, ३६१, ४६५, ५०५.

(४) उत्प्रेक्षा

किसी प्रकृत अर्थात् प्रस्तुत या उपमय की अप्रस्तुत वस्तु या उपमान के रूप मे सम्भावना करना ही उत्प्रेक्षा है।[1] सम्भावना कहते है– "उत्कटकोटिक सन्देह सम्भावना" अर्थात् जिसमें एक कोटि उत्कृष्ट हो, उस सशयज्ञान को सम्भावना कहते है।

यथा– राधे! ते श्रुतिलम्बिनीलकमले चञ्चदद्विरेफा मुदा
श्रीकृष्णस्ययशः प्रकीर्तनपरा. कर्णेषु गुञ्जन्ति किम्।
किं वा कृष्णगुणानुवादरसिकाः श्रुत्यन्तसिद्वान्तभृद्
वाचा कर्णतटे सुधारस जल वर्षन्ति योगीश्वरा.।।[2]

यहॉ राधा के कानों में लटकते हुए नीलकमल चंचल भौरे मानों श्रीकृष्ण की कीर्ति का कीर्तन करते हुए कानों मे गुजार करते रहते हैं अथवा श्रीकृष्ण के गुणानुवाद के रसिक योगीश्वर वेदान्त के सिद्वान्तों से ओतप्रोत वाणी से कानों में सुधा की वर्षा करते हैं। इस प्रकार उत्प्रेक्षा का सर्वोत्तम उदाहरण है।

प्रस्तुत उदाहरण के अतिरिक्त श्रृङ्गारानुगत भक्तिप्रधान काव्य "श्रीराधापञ्चशती" मे उत्प्रेक्षा के अनेक स्थल दृष्टिगोचर होते हैं।[3]

(५) रूपक

"रूपयति एकतां नयतीति रूपकम्।" जहॉ उपमान तथा उपमेय का अभेद आरोपित या कल्पित है वह रूपक अलङ्कार कहलाता है। अर्थात् जिन उपमान तथा उपमेय का भेद या वैधर्म्य प्रकट या अनपह्नुत है, उनमे अत्यन्त साम्य के कारण अभेद का आरोप करना रूपक है।[4] प्रमुख रूप से रूपक के तीन प्रकार हैं– (१) साङ्ग, (२) निरङ्ग, (३) परम्परित रूपक।

1.(क) "भवेत् सम्भावनोत्प्रक्षा प्रकृतस्य परात्मना।।"– साहित्यदर्पण–१०/४०,
(ख) "सम्भावनथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।" काव्यप्रकाश दशमोल्लास–१३७,
2. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२७।
3. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती श्लोक–५, १४ २७,२८ ६०, १०३, १२६, १६१, २६७, ४०५, ४०८।।
4.(क) "तद्रूपकमभेदों य उपमानोपमेययों।"–काव्यप्रकाश १३६,– दशमोल्लास,।
(ख) "रूपकः रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।"–साहित्यदर्पण–१०/२८।

यथा– पापा निशाचरनिभा मदवारणेन्द्रा
राधामुख समुदितो नवधूमकेतु ।
ससारसागर भुवि प्रथमे विनाश
कुर्वन्ति, सर्वोविधाविध्नविनाशमन्य ।।[1]

यहॉ राधामुख नवोदित धूमकेतु है। यह राधामुख धूमकेतु सब प्रकार के विध्नो को नष्ट कर देता है। इस प्रकार धूमकेतु (उपमान) पर राधामुख (उपमेय) का अभेदारोप होने से रूपक अलङ्कार है।

इस प्रकार अनेक ऐसे स्थल प्राप्त होते है जहॉ रूपक की छटा दर्शनीय है।[2]

(६) काव्यलिङ्ग

"काव्याभिमतं लिङ्गम् काव्यालिङ्गम्।" जहॉ वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप मे किसी अनुपनन्न अर्थ का उपपादक हेतु कहा जाता है। इस प्रकार कवि कल्पित अर्थ के उपपादन के लिए हेतु कथन ही काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।[3] इसे हेत्वलङ्कार काव्यलिङ्ग या काव्यहेतु कहा जाता है।

राधा विषयक वाक्यार्थ या राधा पदार्थ रूप में भक्ति के हेतु रूप वर्णन से काव्य भरा हैं–

यथा– विन्दुं कः पयसो मरूस्थलतले यत्नेऽपि संप्राप्नुयात्।
को वा दिव्यसुधां सुधाशु वलयादास्वाद्यमानां सुरैः।
कः प्राप्नोति भवाटवीषु कणिकामानन्दसंदायिनीं
भक्ति यच्छ ततो हरिप्रियतमे! राधे! विभुक्तिप्रदाम्।।[4]

यहॉ श्रीकृष्ण की प्रियतमा राधा कवि कल्पित असम्भव कार्य, रेगिस्तान मे दूध की एक बूँद की प्राप्ति, देवताओं द्वारा आस्वाद्यमान चन्द्रमण्डल से दिव्य सुधा की प्राप्ति,

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–३२७,
2. प्रो० जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–३४, ६५, ८२, ३२७,३२८ ३५३, ४६५।।
3.(क) "काव्यलिङ्ग हेतोर्वाक्यपदार्थता।"–काव्यप्रकाश–१७४; दशमोल्लास।
(ख) हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यालिङ्ग निगद्यते"–साहित्यदर्पण–१०/६३।
4. प्रो० जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१६।

ससार जगल से आनन्द का एक कण की प्राप्ति आदि क लिए हेतु हे अतएव काव्यलिड्ग का उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त राधापञ्चशती काव्य मे काव्यालिड्ग अलड्कार प्रयुक्त अनेकश. श्लोक द्रष्टव्य हैं।[1]

(७) अर्थान्तरन्यास

जहॉ साधर्म्य या वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न विशेष या सामान्य के द्वारा समर्थन किया जाता है अर्थान्तरन्यास होता है, अर्थात् जहॉ किसी संभाव्यमान अर्थ के उपपादन या सिद्धि हेतु उससे भिन्न किसी दूसरे अर्थ की स्थापना की जाती हैं।[2]

यथा– यदि भवेद् वृषभानुसुतापदे
परमभक्तिरभीतिरतो यमात्।
उपगते ननु दृष्टिपथे रवौ
घनतमिस्रचितेरपि का कथा।।[3]

वृषभानुनन्दिनी राधा के चरणो मे पराभक्ति उत्पन्न हो जाय तो फिर यमराज से लेशमात्र भी भय नहीं लगता। जब नेत्रों के सामने भगवान् सूर्य का प्रकाश फैल जाय, तब घनी अन्धकार राशि कहॉ टिक सकती है। यहॉ विशेष का सामान्य से समर्थन किया गया है अतएव अर्थान्तरन्यास का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इसी प्रकार श्रीराधापञ्चशती में अर्थान्तरन्यास के अन्य अनेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[4]

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक– ७, १६, २१, ३१, ५६, ६४, १३५, ३४० ३७७ ५०३, ५०७।।
2.(क) सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यन्तु सोऽर्थान्तरन्यास· साधर्म्येणेतरेण वा।।–काव्यप्रकाश–१६५,– दशामोल्लास ।
(ख) सामान्य वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणर्थानतरन्यासोऽष्टधा ततः।।–साहित्यदर्पण–१०/६१, ६२
3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२०५,
4 श्रीराधापञ्चशती; श्लोक–२८, ११५, २०१, २०५, ३७०, ३७८,

(८) ससृष्टि–

परस्पर निरपेक्षभाव से (तिलतण्डुलवत्) दो या अधिक अलङ्कारों की एकत्र अवस्थिति ही ससृष्टि है।[1] श्रीराधापञ्चशती के अनेक श्लोको मे दो या अधिक अलङ्कार की निरपेक्ष भाव से एकत्र स्थिति प्राप्त है।

यथा– राधे! ते कुरुते कटाक्षलहरी नीलोत्पलं व्याकुल

बिम्बोष्ठ रमणीय–विद्रुम–लताऽरूण्य प्रकर्षनतम्।

आस्य लज्जयतीव चन्द्र किरण ज्योत्स्ना– चयनिर्मलम्

चक्षुः शंवर–शावकस्य मधुरा नेत्रच्छटा चञ्चलाम्।।[2]

इसके उपमा एव उत्प्रेक्षा की ससृष्टि दर्शनीय है। इसी प्रकार अनेक श्लोकों मे संसृष्टि देखी जा सकती है।[3]

(६) विभावना–

जहॉ कारण के अभाव मे भी कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाता है तो उसे विभावना अलङ्कार कहते है।[4] यह उक्त एव अनुक्त भेद से दो प्रकार का होता है।

यथा– लोके के चिन्निगडितमनोवृत्तयों योगिवर्या–

स्त्यक्त्वा रागं विषमविषये कुर्वते ते समाधिम्।

भङ्क्त्वा पाशान् जगति सकलांस्तान् विकल्पस्वरूपान्

श्रीराधे! ते चरणकमलं यामि वेदान्तकन्दम्।।[5]

1.(क) "सेष्टा ससृष्टिरेतेषा भेदेन यदिह स्थिति ।।"–काव्यप्रकाश–२०७–दशमोल्लास ।
(ख) "मिथोऽनपेक्ष्यैतेषा स्थित. ससृष्टिरुच्यते।।" साहित्यदप्रण–१०/६८।

2. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–५,

3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–५, १८, ५८, ७, १०, १६८,

4.(क) "क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।।"–काव्यप्रकाश–१६२; –दशमोल्लासः।
(ख) विभावना विना हेतु कार्योत्पन्तिर्यदुच्यते।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता।।–साहित्यदर्पण १०/६६।

5. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२८७,

कुछ योगी ससार मे मनोवृत्तियो को बॉध लेते है और विषम विषया म लम्पटता का त्याग करके समाधि लगा लेते है। इस प्रकार इन समस्त कार्मो के कारण का अभाव होने से विभावता अलङ्कार है।

इसी प्रकार श्रीराधापञ्चशती काव्य मे अनेक स्थानो पर विभावना अलङ्कार की छटा दर्शनीय है।[1]

(१०) निदर्शना

"जहॉ वस्तुओ का परस्पर सम्बन्ध सम्भव या अवाधित अथवा असम्भव (बाधित) होता हुआ उनके विम्बप्रतिबिम्ब भाव का बोधन करे वहॉ निदर्शता होता है।[2]

यथा– मन्त्रैर्यो वशमानिनीषति मुधा श्रीराधिकायाः कृपां

सोऽय छिद्रवता प्लवेन जलधिं क्षुब्ध तितीर्षेद् वृथा।

कि वा छुद्रकरैः सुधांशुवदनं संस्प्रष्टुमुत्कठितः

कि वा भास्कर बिम्बभक्षणमनाः पाणी समुन्तालयेत्।।[3]

अर्थात् जो मन्त्र प्रयोग से राधा कृपा को वशं मे लाना चाहता है वह व्यर्थ ही छिद्रो वाली छोटी नाम से किसी तूफानी समुद्र को तैरने की इच्छा करता है अथवा वह छोटे–छोटे हाथो से चन्द्रबिम्ब को स्पर्श करने की उत्कठा करता है अथवा सूर्य के प्रकाशमान गोले को खाने की इच्छा से अपने छोटे–छोटे हाथों को ऊपर की तरफ फैलाता है।

इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण निर्दशना के प्राप्त होते है।[4]

---

1. श्रीराधापञ्चशती श्लोक–५६, १६७, २८५, २८७, ३४०, ४१३।।
2.(क) "अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पक.।"– काव्यप्रकाश–१४६– दशमोल्लास।
 (ख) सभवन्वस्तुसम्बन्धोऽसभवन्वापि कुत्रचित्र।
 यत्र बिम्बानुबिम्बत्व बोधयेत सा निदर्शना।।–साहित्यदर्पण १०/५१।
3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–२४२,
4. श्रीराधापञ्चशती, प्रमुख श्लोक–१३, १११, २४२।।

(११) व्यतिरेकः

''उपमान'' की अपेक्षा उपमेय की अधिकता अथवा न्यूनता का वर्णन ही व्यतिरेक अलङ्कार है। ''काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट तो उपमान से उपमेय के व्यतिरेक (आधिक्य) मात्र को ही व्यतिरेकालङ्कार माना है।[1]''

श्रृङ्गारानुगत भक्तिप्रधान राधा के सभी अग या श्रृङ्गार जनित भक्तिप्रवण चेष्टाये अपने विश्वप्रसिद्ध उपमानों से बढकर या अधिक्य सूचक है। इस पूरे राधापञ्चशती मे व्यतिरेक के अनेक उदाहरण प्राप्त है।[2]

यथा— मन्ये वेतस–वल्लरीमिव मुधा सामान्य–देवार्चना–
माशा–पक्ष निपातनैकचतुरा यच्छक्तिरूज्जृम्भतें।
वन्दे चन्दन–शाखि–शीतलतरा राधा–कृपा–बल्लरीं
यामाश्रित्य बिलेशया इव खला अप्यासते निर्भयाः।।[3]

यहॉ राधा की कृपालता अपने उपमान चन्दन वृक्ष की शीतलता से बढकर वर्णित है। अतएवं व्यतिरेक का सर्वोत्तम उदाहरण है।

(१२) दीपकः

''जहॉ अप्रस्तुत (अप्रकृत अथवा उपमान) तथा प्रस्तुत (प्रकृत अथवा उपमेय) पदार्थो मे एक ही धर्म का सम्बन्ध हो, अथवा जहॉ, अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो, वही दीपक अलङ्कार होता है।[4]''

श्रीराधापञ्चशती काव्य में वर्णित राधा–कृष्ण कथावस्तु, दीपक अलङ्कार प्रमुख अनेक श्लोकों द्वारा रोचकता को प्राप्त होती है।[5]

1.(क) ''उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेक· स एव स।''—काव्यप्रकाश—१५६, दशमोल्लास।
(ख) ''अधिक्यमुपमेयस्योपमानान्यूनताथवा व्यतिरके।''—साहित्यदर्पण—१०/५२।
2. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक—१४, ३७, ५८, ६६, १३०, १३३, १७५, ४६७।।
3. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक—१४,
4.(क) ''अप्रस्तुप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्।।—साहित्यदर्पण—१०/४६।
(ख) सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्तेतिदीपकम्।।— काव्यप्रकाश—१५६, दशमोल्लास।
5. श्रीराधापञ्चशती; प्रमुख श्लोक— ८, १६७, २८६, ३५४, ५००, ५०१, ५०२,

यथा— तव कटाक्षलव कलयाम्यह

धनविहीनजनाय धनप्रदम्

पतितबन्धुमनश्वरभूतिद

त्रिविधतापहर भवभुक्तिदम्।।[1]

यहॉ राधा के कटाक्ष के एक ही कण मे पाच विशेषताएं है—

१ निर्धन व्यक्ति को धनी बनाना। २. पतित जनो की बन्धु के समान रक्षा करना। ३ अक्षय विभूति प्रदान करने वाला। ४ सासारिक त्रिविध तापहर्त्ता, तथा ५ भवसागर से मुक्ति दाता। इस प्रकार दीपक का सर्वोत्तम उदाहरण है।

(१३) प्रतिवस्तूपमा—

"जहाँ प्रतीयमान साम्य वाले दो वाक्यों मे एक ही साधारण धर्म पृथक्–पृथक् शब्दों से कह दिया जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा होती है अर्थात् प्रतिवस्तूपमा में दोनो वाक्य निरपेक्ष तथा साधर्म्य गम्य या व्यङ्गय होता है"[2]

श्रीराधापञ्चशती काव्य मे वर्णित कथावस्तु मे कवि ने प्रतिवस्तूपमा के अनेक उदाहरण दिये हैं।[3]

यथा— राधाया नयन विभाति चतुरा काचिन्नटी सुन्दरी
या धत्ते विविधान् त्रिलोक सुभगान् भावान् प्रमोदान्वितान्।
लोके लोकनटी करोति वशगान् नाट्येन नाट्यप्रियान्
राधांनेत्रनटी मुरारिहृदयं भ्रूभङ्गंमात्रेण वै।।[4]

---

1. प्रो० रसिक विहारी जोशी' श्रीराधापञ्चशती, श्लोक—१६७।
2.(क) प्रतिवस्तूपमा तु सा।
सामान्यस्प द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थिति ।।—काव्यप्रकाश—१५४, दशमोल्लासः।
(ख) प्रतिवस्तूपमा सा स्थाद्वाक्ययोर्गम्यसाम्ययो ।
एकोऽपि धर्म· सामान्यों यत्र निर्दिश्यते पृथक्।।—साहित्यदर्पण—१०/५०।
3. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक—३५, ४२, ५८, १०१, ४६६।।
4. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक—४२,

यहाँ राधा के सुन्दर नेत्र तो सुन्दर नटी प्रतीत होते है जो त्रिभुवन मे मनोहर प्रमोद से युक्त भिन्न–२ भावो को धारण करती है। ससार की नाट्य नटी केवल नाट्यरसिकों को वश मे करती लेकिन राधानेत्रनटी तो केवल भ्रूभग मात्र से ही श्रीकृष्ण के हृदय को वशीभूत करती है। अतएवं यहा सर्वोत्तम प्रतिवस्तूपमा है।

(१४) अतिशयोक्ति–

"अध्यवसाय के सिद्व होने पर अतिशयोक्ति अलड्कार है। अर्थात् विषयी (उपमान) के द्वारा विषय (उपमेय) का निगरण (न्यग्भाव अथवा अध:करण) करके दोनो के पारस्परिक अभेदज्ञान को ही अध्यवसाय कहते हैं, इसी अध्यवसाय के सिद्व अर्थात् निश्चित होने पर ही अतिशयोक्ति होती है।[1]"

श्रीराधापञ्चशती काव्य मे अतिशयोक्ति का प्रकरण बहुत थोडे ही श्लोकों में प्राप्त होता है[2] । इसी के अधिक निकट उत्प्रेक्षा एवं रूपक का प्रकरण कथावस्तु में सर्वाधिक होने से अतिशयोक्ति का प्रकरण कम आया है–

उदाहरणार्थ– श्रीराधाकावदनचन्द्रमसं मनोज्ञ–
मेणाक्षिसुन्दरदृशाधिकमञ्जुल तम्
दृष्ट्वा ततोऽधिकतरां द्युतिमादिविधित्सु–
श्चन्द्रं विधिः प्रकुरूते मृगलाञ्छन तम्।।[3]

यहा ब्रह्माजी ने राधा के मनोहर मुखचन्द्र की मञ्जुलता हरिणनेत्र से बढकर है ऐसा देखकर राधामुखचन्द्र की अपेक्षा अधिक कान्ति उत्पन्न करने की इच्छा से चन्द्रमा में मृगलाञ्छन बना दिया है। "यह अतिशयोक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

1.(क) "सिद्वत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।" साहित्यदर्पण–१०/४६.
(ख) निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेणयत्।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्यय
विज्ञेयाऽतिशयोक्ति' सा।।– काव्यप्रकाश–१५३, दशमोल्लास।

2. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–७२, १२२, ४८८।

3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१२२,

(१५) विशेषोक्तिः

"प्रसिद्व हेतु अथवा कारण के हांत हुए भी फलाभिव्यक्ति अथवा कार्य न होने पर विशेषोक्ति अलड्कार होता है।[1] मुख्यत दो प्रकार का है– उक्तनिमित्ता एव अनुक्तनिमित्ता।

प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती काव्य की समग्र कथावस्तु भक्तिप्रधान है जिसका कारण वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी लोकविश्रुत है, मोक्ष, कृपा आदि फलाभिव्यक्ति वर्णित है अतएवं सकाम भक्ति, वर्णित होने से विशेषोक्ति का प्रकरण बहुत ही कम प्राप्त हैं।

उदाहरणार्थ– राधे! त्व कृतपापपुञ्जमपि ते पादाश्रित मां कथं
पातु नोत्सहसे दयाजलनिधे! गड्गाम्बुसङ्कल्पिते!
नो पश्यामि बिना त्वयाऽन्यशरणं लोकत्रये साम्प्रतं
दीनादीनसुपालनप्रणयिनी त्वां सभजेयं सदा।।[2]

यहॉ राधा दयासागर, गड्गा के समान, तीनो लोको मे सर्वश्रेष्ठ होने से प्रसिद्ध कारण है फिर भी चरणाश्रित भक्त की रक्षा नही हो रही है। अतएव विशेषोक्ति है।

(१६) सन्देहः

"प्रकृत (उपमेय) में अन्य अर्थात् उपमान के चमत्कारोत्पादक सशय को सन्देह अलड्कार कहते हैं।[3] सन्देह में सशंय अन्त तक बना रहता है जबकि इसी आधार पर भ्रन्तिमान में अन्त में विपरीत कोटिक ज्ञान (असत्य) का निश्चय हो जाता है। यहीं सन्देह का मूलभूत अन्तर है।

1.(क) "विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच।"–काव्यप्रकाश–१६३, दशमोल्लास।।
(ख) "सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।।"–साहित्यदर्पण–१०/६७,
2. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–१८।
3.(क) सन्देह प्रकृतेऽन्यस्य संशय प्रतिभोत्थित
शुद्वो निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त इति त्रिधा।।– साहित्य दर्पण–१०/३५।
(ख) "ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च सशयः।"–काव्यप्रकाश–१३८, दशमोल्लास.।

श्रीराधापञ्चशती काव्य मे वर्णित कथावस्तु श्रृङ्गारानुगत भक्ति–प्रधान होने से सन्देह का प्रकरण अत्यल्प है।

उदाहरणार्थ– श्रीकृष्णाय विलक्षणऽक्षतसुधा कि ब्रह्मणा निर्मिता

किं वा कामकृता मुखरिमनसो मोहाय दिव्या तनु:।

किं वा यौवनकान्तिसिक्तलतिका त्रैलोक्य–संमोहिनी

रूपेणाऽप्रतिमा धुनी रसमयी राधा हरिप्रेयसी।।[1]

यहॉ ब्रह्मा निर्मित हरिप्रिया राधा को देखकर कवि को सशय हो रहा है–क्या वह श्रीकृष्ण के लिए बनायी गयी अक्षत सुधा हैं? अथवा श्रीकृष्ण का मनमोहित करने के लिए कामदेव रचित दिव्य शरीर है क्या? अथवा यौवनकान्तिजल से सीची हुई कोई त्रैलोक्य संमोहिनी लता है क्या? अथवा रूप से अतुलनीय कोई रसमयी नदी है क्या? इस प्रकार यहॉ कवि जन्म चमत्कारोत्पादक सशय होने से सन्देह का सर्वोत्तम उदाहरण है।

---

1. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक– १७।।

रस योजना

"**रस्यते इति रसः**" इस रूप मे काव्यशास्त्र में रस का विवेचन किया गया है। रस आनन्दरूप और सुखात्मक है। अखिल विश्व मे व्यापक ब्रह्म को लक्ष्य कर तैत्तिरीय श्रुति कहती है– "**रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दीभवति।**" प्राचीन आचार्य भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र मे आठ रसो का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त शान्त नामक नवॉ रस अभिनवगुप्त, वात्सल्य नामक दसवॉ रस आचार्य विश्वनाथ, तथा भक्ति नामक ग्यारहवॉ रस गौडीय वैष्णव आचार्य रूपगोस्वामी ने काव्यशास्त्रीय रूप प्रदान कियें।

भरतभुनि ने रसोत्पत्ति की सबसे पहली प्रतिष्ठा अपने नाट्य शास्त्र में की है इस विषय में इनका प्रसिद्ध सूत्र है–

"विभावानुभाव–व्यभिचारि, संयोगाद् रस निष्पत्तिः।"

रस स्वरूप के विषय मे ध्वनिवादी आचार्य मम्मट का मत है कि उन विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के द्वारा अथवा उनके सहित हृदय जनो के हृदय में व्यञ्जना द्वारा व्यक्त हुआ वह (रति, हास, शोक क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शम, वात्सल्य, तथा श्रीकृष्ण या राधा विषयक रति, आदि) स्थायी भाव (क्रमशः श्रृङ्गार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत, शान्त, वात्सल्य तथा भक्ति आदि) रस कहलाता है।[1]

इस रस का आनन्द अलौकिक, अपरिमित होता है। इसका आस्वाद प्रपाणकरस के समान होता हैं प्रपाणक (शरबत) मे एला, लवंग, मिर्च, मिश्री, आदि के मिश्रण से प्रत्येक से भिन्न एक अभिनव स्वाद की सृष्टि होती है। रस के अलौकिकत्व का यही रहस्य है, जो वस्तु संसार मे भय, शोक, घृणा, क्रोध का कारण बनती है वही वस्तु काव्य में विभावादि द्वारा रस रूप आनन्द उत्पन्न करती है। इसी लिए इसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। अभिनव गुप्त का यही रस अलौकिकता का सिद्वान्त है।

समीक्ष्य काव्य श्रीराधापञ्चशती में प्रमुख रूप से श्रृङ्गार एव भक्ति रस का उल्लेख हुआ है। शतक काव्य परम्परा का महनीय गीति काव्य के प्रतिनिधि ग्रन्थ श्रीराधापञ्चशती में श्रृङ्गार के दोनों पक्षों सम्भोग एवं विप्रलम्भ का तथा उच्चकोटिक भक्तिरस का सर्वोत्तम निदर्शन उचित ही है।

श्रृङ्गार रस

श्रृङ्गार शब्द के प्रमुखतः दो अर्थ हैं– प्रसाधन एवं कामोद्रेक। काव्य शास्त्र मे श्रृङ्गार का अर्थ है–कामोद्रेक। भानुदत्त के अनुसार "कामोद्रेक ऋच्छति इति श्रृङ्गार :" अर्थात् इसमें काम प्रकर्ष को प्राप्त करता है इसलिए इसे श्रृङ्गार कहते हैं।[2] अमरकोष में श्रृङ्गार को " श्रृङ्गारः शुचिरूज्ज्वलः" पवित्र एव उज्जवल स्वरूप प्रदान किया गया है।

---

1. "व्यक्त. स तौर्विभावाद्यै. स्थायी भावो रसः स्मृत ।" काव्यप्रकाश, –चतुर्थ उल्लासः–२८वीं कारिका
2. रसमञ्जरी, पृष्ठ–१७६।

श्रृङ्गार भृङ्गारौ उणादि सूत्र से शृ (हिंसायाम्) धातु से आरम्, नुम् गुक तथा ह्रस्व का निपातन करने पर "श्रृङ्गार" शब्द सिद्व होता है। शृ हिसायाम् अर्थात् शृ धातु का अर्थ होता है मारना, हिंसा करना, प्राणलेना। मेदिनीकोश मे शृङ्ग का अर्थ है नपुंसक लिङ्ग मे श्रृङ्गार, प्रभुत्व, शिखर, चिन्ह, क्रीड़ा, अम्बुयन्त्र, सींग, उत्कर्ष आदि।

श्रृङ्गार की परिभाषा

रति प्राण श्रृङ्गार का विवेचन शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियो से अलङ्कारिको, रसिकाचार्य भक्तों तथा प्रेम के पथिकों सभी ने अपने–अपने ढंग से किया है लक्षण ग्रन्थों में श्रृङ्गार के लोकव्यापी रूप की अलौकिक धरातल पर अवतारणा की गयी हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने श्रृङ्गार रस का लक्षण दिया हैं। "कामदेव के उद्‌भेद (अंकुरित होने) को श्रृङ्ग कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृङ्गार कहलाता है। परस्त्री तथा अनुरागशून्य वेश्या को छोड़कर अन्य नायिकाएं तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के 'आलम्बन' विभाव माने जाते हैं। चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। उग्रता, मरण, आलस्य ओर जुगुप्सा को छोडकर अन्य निर्वेदादि इसके संचारीभाव हैं। इसका स्थायीभाव रति है और वर्ण श्याम है एवं देवता विष्णु भगवान् हैं।"[1] यथा–

कृष्णास्ताम्बूलरागं नयन युगपुटेऽधीधपद राधिकायाः

प्रातस्तद्दर्शनाद्वै निकटतरसखी प्राह राधां सहासम्।।[2]

---

1. श्रृंङ्गं हि मन्यथोद्‌भेदस्तदागमनहे तुकः।
उत्तम प्रकृतिप्रायो रसः श्रृङ्गार इष्यते।।
परोढा वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलम्बन नायिकाः स्युर्दाक्षिणाद्याश्च नायकाः।।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरूताद्युद्दीपनं मतम्।
भ्रूविक्षेप कटाक्षादि रनुभाव प्रकीर्तित।।
त्यक्त्वौग्रयमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः।
स्थायीभावो रतिः श्याम वर्णोऽयं विष्णुदैवतः।। –आचार्य विश्वनाथ सम्मत।
2. प्रो० रसिक विहारी जोशी; श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–४२२.।

इसमे कृष्ण तथा राधा आलम्बन विभाव, रात का समय उद्दीपन विभाव हे। चुम्बन अनुभाव है। लज्जा और हास सचारी है। इन सबसे अभिव्यक्त होकर रतिभाव श्रृङ्गार रस के रूप में परिणत होता है।

श्रृङ्गार वर्णन के दो पक्ष हैं– (१) मानवीय श्रृङ्गार तथा (२) दिव्य श्रृङ्गार। श्रृङ्गार के दूसरे पक्ष को पार्थिव न कहकर अपर्थिव कहना ही उपयुक्त होगा जो रसिकाचार्य भक्तों की रचनाओं में प्राप्त होता है। यथा– श्रीराधापञ्चशती। इन भक्त कवियों ने श्रृङ्गार तथा प्रेम को ही अपना विषय बनाया। इन्होंने श्रृङ्गार एवं प्रेम के स्थूल पार्थिव प्रतीकों के माध्यम से प्रेम का जो अत्यन्त उज्ज्वल, दिव्य, अपार्थिव रूप प्रस्तुत किया, वह श्रृङ्गार रस के क्षेत्र में उनकी अमूल्य देन हैं इस कडी में महत्वपूर्ण योगदान प्रो० रसिक विहारी जोशी एवं उनकी अमूल्य कृति श्रीराधापञ्चशती का है।

दिव्य श्रृङ्गार वर्णन के अतिरिक्त मानवीय श्रृङ्गार या पार्थिव प्रेम के कुछ दीवानों ने प्रेंम एवं उसकी उद्भूति के शास्त्रीय पचड़े में न पडकर नारी सौन्दर्य तथा नारीप्रेंम का आलम्बन लेकर श्रृङ्गार रस के प्रवाह की जो धारा अविरल रूप में प्रवाहित किया वह मनोरम तथा यथार्थ है। यथा–हाल की गाथा सप्त शती, अमरूक का अमरूक शतक, गोवर्धनाचार्य का आर्यासप्तशती, जिन्हें ग्राम्य जीवन के उन्मुक्त, सरल स्वाभाविक प्रेम एवं यौवनोन्माद की मुख्य चित्रशाला कहा जा सकता है, सर्वविदित है।

इस व्यापक क्षेत्र वाले मानवीय श्रृङ्गार की परिभाषा करना सामान्य बात नहीं है। अतः आचार्यो ने इसकी भिन्न–भिन्न परिभाषाऐं की हैं जो इसके बाह्य स्वरूप को भले न व्यक्त कर सके परन्तु उसमें आन्तरिक तत्त्वों का समावेश पाया जाता है। यथा–नाट्यशास्त्र प्रणेता भरतमुनि[1], भानुदत्तमिश्र[2], आचार्य धनञ्जय, आचार्य रूद्रट[3] तथा आचार्य रूद्र भट्ट।

---

1. सुख प्रायेष्ट–सम्पन्न ऋतुमाल्यादि सेवितः
   पुरुष प्रमदायुक्त श्रृङ्गार इति संज्ञित।–नाट्यशास्त्र–६/४६
2. "यूनोः परस्परं परिपूर्ण. प्रमोदः सम्यक् सम्पूर्ण रतिभावो वा श्रृङ्गार।"
   –आचार्य भानुदत्तमिश्र, रसतरङ्गिणी–षष्ठतरग,
3. व्यवहारः पुन्नार्योरन्योन्यरक्तयो रति प्रकृतिः। श्रृङ्गार...... ...।
   –आचार्य रूद्रट; काव्यालङ्गार–१२/५;

श्रृङ्गार वर्णन के दो पक्ष–

संस्कृत वाड्मय में प्राप्त साहित्य का सिंहावलोकन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें श्रृङ्गार वर्णन के दो पक्ष हैं– (१) मानवीय या लौकिक श्रृङ्गार तथा (२) दिव्य या अलौकिक श्रृङ्गार। श्रृङ्गार का स्वरूप तथा क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें देवता से लेकर वनस्पति जगत् का समावेश हो जाता है। इसका प्रधान कारण सबसे अन्दर व्याप्त रतिभाव तथा उसके मूल में स्थित काम भाव हैं। श्रृङ्गार के इन्हीं दोनों पक्षो का उल्लेख हमें लौकिक तथा अलौकिक रूप में भी प्राप्त होता है। दोनों में रस निष्पत्ति का स्वरूप समान है, अन्तर केवल इतना ही है कि एक में सब कुछ (विभावानुभाव संचारीभाव) मानवीय है। अर्थात् इसके आश्रय, आलम्बनं, उद्दीपन आदि सभी अवयव मानवीय जगत् के हैं, जबकि दूसरे में सब कुछ मानवेतर हैं।

मानवीय श्रृङ्गार–

मानवीय श्रृङ्गार में पार्थिक नर नारियों की प्रणय लीलाओं का चित्रण पाया जाता है जो अत्यन्त ही सहज एवं संवेद्य है। मानवप्राणी अन्य जीवधारियों की तुलना में श्रेष्ठ है, काम भावना के सम्बन्ध में भी मनुष्य की अपनी विशिष्टता है वह किसी भी समय सम्भोग के लिए सन्नद्व हो जाता है जबकि पशुओं में ऐसा नहीं इस विशिष्टता का रहस्य यह है कि वह मन या मस्तिक द्वारा परिचालित होता है। मानसिक तत्व का प्रभाव अन्य कार्यो के समान मनुष्य के काम भावना पर भी पड़ता है। श्रृङ्गार के सन्दर्भ में रति काम तथा प्रेम प्रायः समानार्थक है सामान्य व्यवहार में प्रेम की तुलना में काम संकीर्ण तथा रति उससे भी सङ्कीर्ण अर्थ की द्योतक हैं। प्रेम अपने मूल रूप में काम है और काम परिष्कृत रूप में प्रेम है। ऐसे मानवीय श्रृङ्गार का वर्णन हाल–कृत गाथासप्तशती, अमरूक कृत अमरूक शतक,[1] गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती, जयदेव कृत गीतगोविन्द, भर्तृहरि कृत श्रृङ्गार शतक आदि से भरा पड़ा है।

---

1. निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो
   नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
   मिथ्यावादिनी दूति! बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे
   वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।

दिव्य श्रृङ्गार

सस्कृत वाड्मय मं मानवीय श्रृङ्गार से भिन्न भक्तिभावना से ओतप्रोत कविजन जिस श्रृङ्गार का वर्णन करते है वह दिव्य या अलौकिक की कोटि में आता है। जितने भी स्तोत्र श्रृङ्गार शतक एव गीति काव्य है उनमे दिव्य श्रृङ्गार का सांगोपाङ्ग वर्णन मिलता है। पूर्व अध्याय (ii) में परिगणित स्तोत्र श्रृङ्गार शतक में अलौकिक श्रृङ्गार वर्णित है। १२वीं शदीं के जयदेव गीतगोविन्द में श्रृङ्गार वर्णन में अलौकिकता की ओर प्रयास रत दिखायी पडते हैं। २०वीं शदी के बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी कवि प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती काव्य राधा–कृष्ण श्रृङ्गार जनित भक्ति–वर्णन में दिव्य श्रृङ्गार का अनोखा उदहारण है दिव्यता तो इस स्तर तक दिखायी देती है कि भक्ति रस की प्रधानता में श्रृङ्गार गौण रस प्रतीत होता है।[1]

पौराणिक धर्म के अनुसार लोक कल्याण तथा वैयक्तिक सुख समृद्वि का माध्यम अदृश्य ईश्वर शक्ति है जिसके अनेक रूप में उसी की कृपा से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। इसी सिद्वान्त के आधार पर स्तोत्र सहित्य की अवतारणा हुई। परमात्मा के विविध रूप स्वीकृत हुए। उसमें असीम सौन्दर्य, वैभव शक्ति की कल्पना की गयी। जिस प्रकार श्रृङ्गार गीति काव्यं में नखशिख वर्णन की प्रणाली चली आ रही थी उसी प्रकार स्तोत्र में भी उपास्य के अंग प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य, व्यापार, चितवन आदि का मनोरम वर्णन किया गया और जगन्नियन्त्री अदृश्य शक्ति को मानव शरीर ही नहीं मानव हृदय भी प्रदान किया गया।

यथा– कृष्णस्य विग्रहममुं प्रवदन्ति वेदा
उत्पन्ति मूलमिह दिव्यतिलस्य लोके।
श्रीराधिका कर तले विमले कपोले
तस्माद् विभाति सुभगं तिलमद्वितीयम्।।[2]

---

1. पायं पायं तव नवसुधां राधिके! स्तोत्ररूपा
गायं गांय रसभरवचः प्रेमसिन्धौ निगग्नाः
केचिद् धन्यां अमृतलहारी वाङ्मयी भावभङ्गी
व्यातन्वाना जगति सकलान् पुण्यभूमौ नयेयु.।।–श्रीराधाञ्चशती, श्लोक–२८१।
2. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक–१२१।

यहाँ राधा के करतल एव कपोल पर अद्वितीय सुन्दर तिल शोभायभान होता है। इसकी उत्पत्ति का मूल भगवान् श्रीकृष्ण का विग्रह है जो चारो वेदों द्वारा प्रमाणित होता है।

सस्कृत काव्य शास्त्रियों ने स्तोत्रों मे रस की अनुभूति गौण मानी हैं देव विषयक रति का परिपाक उन्होंने रस में न मानकर उसे भाव संज्ञा प्रदान की है।[1] श्रीराधापञ्चशती में प्रो० जोशी ने देव (राधा) विषयक रति को श्रृङ्गार रस माना है।

"राधा जी की आंखों में काजल लगा है, अधर ताम्बूल की लालिमा से रञ्जित हैं, नसिका जाति पुष्प की कली के समान है, गले में सुगन्धित कमलमाला है, मोहनी राधा के दुग्धधवल कुन्दपुष्प की कलियॉ हिल रही हैं हाथों में कमल के पुष्प हैं चरणों में अलक्तक की लालिमा है ऐसी राधा जी ध्यान मे मेरे विघ्नो को नष्ट करें"।[2]

राधाविषयक रति वर्णन में अलौकिक श्रृङ्गार का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया हैं।

राधे! ते नयनोपमानपदवीं गच्छन्ति नीलाम्बुजं
कस्तूरी नवखञ्जनञ्च शफरी चाञ्चल्य नीलादिभिः।
औचित्यं न हि तानि यन्ति रचनां तेषांविधते विधि
र्मालिन्येन धाराणुमिश्रिततया श्यामत्वमाध्यायकः।।[3]

राधा के अतीव सुन्दर नेत्र के प्रसिद्व चारों उपमान नील कमल, कस्तूरी, खञ्जन पक्षी एवं मछली का उपमानोपमेयभाव सम्बन्ध बनता है। परन्तु राधा के नेत्र सौन्दर्य की अलौकिकता को देखकर तो ऐसा लगता है कि ये चारों उपमान उचित नहीं हैं। क्योंकि ब्रह्मा ने उपमानो में श्यामगुण का आधान करने के लिए मलिनता तथा पार्थिव परमाणुओं का मिश्रण करके इनकी रचना की जबकि राधा के नेत्र में पार्थिव परमाणु का लेशमात्र भी नहीं। इस प्रकार राधा विषयक रति वर्णन दिव्य श्रृङ्गार का ज्वलन्त उदाहरण माना जा सकता है।

---

1. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारीतथाऽञ्जितः, भाव प्रोक्तः।
काव्यप्रकाश; कारिका–३५वीं; चतुर्थ उल्लास।
2. राधा, कज्जल लोचनाऽधरपुते ताम्बूलरागाऽञ्चिता
नासा जातिककुड्मला सुरभिताऽम्भोव्रजा मोहिनी
कर्णान्दोलित दुग्ध कुन्दकालिका हसतारविन्दद्वयी
पादालक्तकरागिणी भवतु में प्रत्यूह–विध्वांसिनी।।–राधापञ्चशती; श्लोक–२२।
3. प्रो० रसिक विहारी जोशी, श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–६६।

जिस प्रकार श्रृड्गार के क्षेत्र में रतिभाव के आलम्बन रूप नारी के अडग प्रत्यड्गो के सौन्दर्य का चित्रण कवि समुदाय करता चला आ रहा है उसी प्रकार उपास्य देवता के अंग प्रत्यड्गों तथा रूप–सौन्दर्य के वर्णन की परिपाटी स्तोत्रकारों ने भी अपनायी। श्रीराधापञ्चशती मे श्रीराधा जी के वदन एवं नेत्र का दिव्य श्रृड्गार कि वर्णन मोक्ष का साधक बताया गया है– "श्रीराधा जी का वदन तो शीतल चन्द्रमा है, उस चन्द्रमा से निरन्तर टपकते हुए अमृत से नेत्र रूपी पात्र लबालब भरा रहता है। मुरारी श्रीकृष्ण का चित्त एक भवॅरा सदृश है जो नेत्र रूपी प्याले में अमृत भरा देखकर निरन्तर पान करता है। ऐसा कोई विरला योगी हो समाधि में निपुण होकर राधाकृष्ण के नेत्रों का ध्यान करता है। और पूर्ण प्रणिधान होकर मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।"[1]

श्रीराधापञ्चशती में श्रीकृष्ण तो साक्षात् श्रृड्गार की मूर्ति हैं। "एक बार यमुना तट पर प्रिय सखी राधा का निकुन्ज में फूल तोडती देखकर गेंद के बहाने से राधा का रोककर अकलाती बाणी से पूछा– अरे राधा! हमारी गेद तुमने कहॉ चुरायी और तुरन्त बार–बार राधा के स्तनों को पकड़ लिया। तब राधा के नेत्र तरल हो उठे। ऐसे राधा नेत्र हमारी रक्षा करें।[2]

प्रेम के मानवीय पक्ष की जो परम्पराएं कविता क्षेत्र में अपनायी गयी थी उनका दिव्य पक्ष में प्रविष्ट हो जाता कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जैसे प्रसिद्ध दार्शनिक शं्कराचार्य का शिवपादादि केशान्त वर्णन, शिवकेशादिपादान्त वर्णन आदि। मूक कवि का कटाक्ष शतक, मन्दस्मित शतक, उल्लेखनीय है। देवी के चरण, कटाक्ष, मन्दस्मित के ऊपर मूक कवि अनेक छन्दों में पद्यों का पूरा शतक लिख डाला।

---

1. श्रीराधामुखशीतरोचिविगलत् पीयूषभृल्लोचनं
   पात्रं वीक्ष्य मुरारिचिन्त मधुपः पीयूषपानेरतः
   कश्चिद् येगीवर. समाधिनिपुण श्रीराधिकाकृष्णयो–
   ध्यात्वा नेत्रयुगीमिमां प्रणिहितो मोक्षाधिकारी भवेत्।। –श्रीराधापञ्चशती– ७०।
2. पुष्पं चेतुमिवागतां हरिसखीं राधा निकुञ्जे तटे
   कालिन्द्या अवलोक्य कन्दुकमिषाच्छृड्गारमूर्तिर्हरि।
   स्तब्ध्वा तां सहसा स्खलद्रसनया कुत्रास्ति में कन्दुक
   प्रोच्योरोजमपिस्पशत् तरलिते नेत्रे प्रियायास्तदा।।– श्रीराधापञ्चशती–७१।

इसी परम्परा की द्योतक, प्रो० रसिक विहारी जोशी की श्रीराधापञ्चशती मालूम पडती है क्योकि राधा जी के चरणकमल, कटाक्ष एव मन्दस्मित पर भक्तियुक्त श्रृङगारिक वर्णन विभिन्न छन्दो मे प्राप्त होता है–

राधाजी का नेत्र छटा वर्णन–अद्वितीय है।[1] यथा–

राधा ते नयन वदन्ति कवयो नीलोत्पलं शोभनं
यस्मिन् नैव पतेत् कदापि चपला धाराधराणां घटा।
तत्तादृक्नयनोत्पलस्य लहरी शक्रादिसम्पत्तये
कल्पासा मयि संपद वितनुतां मोक्षादिसंवधिनीम्[2]।।

राधा के चरणकमल का भक्तियुक्त श्रृङ्गारिक वर्णन मिलता है।[3] यथा–

राधे! त्वदीयचरणामृतपान लुब्धा।
भृङ्गास्त्यजन्ति सुरराजपदेषु भावम्।
किं ला प्रभात समये भ्रमणोत्सुकेभ्यो
रोचेत हेमरचितर्निगडैः सुबन्धः।।[4]

यहाँ राधा के चरणामृत के पान के लोभी भंवरे इन्द्र के पद की इच्छा का भी त्याग कर देते हैं। क्या प्रातः काल स्वच्छन्द भ्रमणशील शैलानी भंवरों को स्वर्णजजीर का बन्धन रूचिकर होता है?

बसन्ततिलका छन्द में राधा जी के मन्दस्मित भक्तिप्रवण श्रृङ्गारिक वर्णन श्रीराधापञ्चशती में प्राप्त होता है। यथा– "राधा के मनमोहक मन्दस्मित से मण्डित मुखारबिन्द को देखकर श्रीकृष्ण का ह्रदय चित्रलिखित सा रहा जाता है और ब्रजपति नन्द

---

1. श्रीराधापञ्चशती– ३६, ३७, ३८, ८५, १४७, २६२, २६८, ४६२, ४६५, ४८७, १६७, १६८, ३८३, ३६६, ४१४, ४८३, ५०२,
2. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक–२६।
3. वही; श्लोक १२६, १६०, २०४,
4. वही, श्लोक– ११५,।

वाबा को आनन्दित करने वाले कृष्ण मदमाती ब्रजाड्गनाओं के हाव–भाव को छोड़कर राधा मे ही वॅधे रह जाते हैं।"[1]

देव वर्णन मे श्रृड्गार की परिपाटी प्रारम्भ से ही रही हैं। कुमारसम्भवम् आदि महाकाव्यो के अतिरिक्त अन्यान्य गीतिकाव्यों में मड्गलाचरण के रूप मे देव दम्पत्ती की श्रृड्गारिक चेष्टाओं का वर्णन कविजन करते आ रहे हैं। भक्ति मे माधुर्य का समावेश होने के साथ–साथ स्तोत्र परम्परा पर इसका बहुत प्रभाव पडा। इस प्रवृत्ति के कारण संस्कृत स्तोत्र साहित्य का विकास एक नयी दिशा में हुआ जहॉ भक्ति और श्रृड्गार क्षितिज के समान परस्पर मिले से प्रतीत होते हैं यथा–१२वीं शती का जयदेव–गीतगोविन्द तथा २०वीं शती का प्रो० जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती।

भक्ति श्रृड्गार का समावेश की प्रबलता पहले तो शिव–पार्वती तथा देवी के अन्य स्वरूपो से सम्बद्ध स्तोत्रों में रही किन्तु भगवत्पुराण के अधिकाधिक प्रचार तथा कृष्ण के साथ राधा का योग हो जाने पर राधा कृष्ण की स्तुतियों में यह पूरे वेग के साथ प्रस्फुटित हुई। राधा–कृष्ण विषयक प्रायः एक भी स्तोत्र ऐसा नही मिलेगा जो उनकी प्रणय लीलाओं का चित्रण न करता हो। इसी प्रकार श्रीराधापञ्चशती में श्रीराधा–कृष्ण की प्रणयलीला प्रसंग वृन्दावन भ्रमण में प्राप्त होता है।[2]

दिव्य श्रृड्गार के विषय मे सर्वाधिक विचारणीय प्रश्न हैं– दिव्यत्व। श्रृड्गार वर्णन में कवि अपने आराध्यदेव को दिव्य कोटि का मानकर उसकी आराधना करता है। नाट्यशास्त्र मे पात्रों की तीन कोटियो पायी जाती है– दिव्य, अदिव्य, तथा दिव्यादिव्य। दिव्य प्रकृति के पात्र का वर्णन जब श्रृड्गार की भावभूमि मे किया जाता तब वह दिव्य

---

1. मुग्धास्मितेन परिमण्डितमाननाब्जं
   दृष्ट्वा मुरारिहृदयं लिखित हि चित्रे
   त्यक्त्वा मदालसवधूगण विभ्रमाणि
   राधे! ब्रजाधिपसुतस्त्वय्येव बद्ध.।। —श्रीराधापञ्शवती· श्लोक–८४।
2. गच्छन्ती वृषभानुजा प्रियसखीवृन्देन वृन्दावने
   व्याजेनापुरत कदाचन गता कृष्णेन सङ्केतिता।
   तस्यात् कुञ्चितभीतभीतनयनं लज्जान्वित सस्मित
   सानन्दं मयि सपतेदिति सदा सप्रार्थये राधिकाम्।।
   श्रीराधापञ्चशती– ५०।

श्रृड्गार की भावभूमि म किया जाना तब वह दिव्य श्रृड्गार की कोटि म आता है जस– श्रीराधापञ्चशती की दिव्यपात्र राधा जी। दिव्य श्रृड्गार के लिए दिव्य विभावानुभाव, सचारी तथा सात्विकों की आवश्यकता रहती है तथा इन्हीं दिव्य विभावानुभाव तथा सचारी एव सात्विकों के कारण दिव्य अवस्थाए उन्मीलित होती हैं और इस प्रकार दिव्य श्रृड्गार की परिपुष्टि होती है।

स्तोत्र श्रृङ्गार या मोक्ष श्रृङ्गार

श्रृङ्गार रस का पुरूषार्थानुसार चतुर्विध विभाजन करने पर चरम रूप मोक्ष श्रृङ्गार की प्राप्ति होती हैं। यह मोक्ष श्रृड्गार हमारे स्तोत्र साहित्य से सम्बन्धित है। श्रीराधापञ्चशती काव्य प्रो० जोशी ने राधा की स्तुति या भक्ति मोक्ष प्राप्ति हेतु किया है जिसे स्तोत्र श्रृङ्गार या मोक्ष श्रृङ्गार कह सकते है यथा–

राधाया नयन समस्त भुवनैः संपूजिता कामधुक्

यां दुग्ध्वा सकलं मनोरथपयः पापाति सर्वोजनाः

श्रीकृष्णो मधुरं रसं, सुरगुरूविद्यां, सुरेन्द्रः शर्चीं,

बह्मा सृष्टिविधिं, मति चरणयोः प्राप्नोम्यहं मोक्षदाम्।[1]

यहाँ राधा के नेत्र कामधेनु हैं जो समस्त भुवनों द्वारा पूजित है श्रीकृष्ण इस नेत्रकामधेनु से मधुर इस पान करते है। देवगुरू बृहस्पति को विद्या, इन्द्र को इन्द्राणी, ब्रह्मा को सृष्टि करने का सम्यक ज्ञान प्राप्त होता है। ये नेत्र ऐसी कृपा करें कि मुझे राधा चरणों में ऐसी मति प्राप्त हो जो मोक्ष देने वाली हो।

मोक्ष श्रृङ्गार को मोक्षकारक मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है तथा इन्हीं कारणों से आचार्यों ने श्रृड्गार का चरण विभाजन मोक्ष श्रृङ्गार किया है।[2]

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक–७८।
2. डॉ० दुर्गा प्रसाद अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि०, "सस्कृत में श्रृङ्गारी कवियो के उपलब्ध शतक काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ– ६६ से उदधृत।

(ख) भक्ति रस

भक्ति भाव कोटि में आती है अथवा रस कोटि में? भक्ति तो वीज रूप में वेद पुराण, रामायण, श्रीमद्भागवतपुराण एवं गीता आदि में प्राप्त होता हैं जो पल्लवित होकर विशाल वट वृक्ष सा उपलब्ध है। प्राचीन कालीन काव्य शास्त्रज्ञो ने भक्ति के रसत्व का प्रवल विरोध किया है। प्राचीन आचार्यो भरत, अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ आदि ने तो दाम्पत्येतर रति अर्थात् देवादिविषयक रति को रस रूप न मानकर भाव रूप माना है।[1] भक्ति रसाचार्यो में तो काव्यशास्त्र में वर्णित श्रृङ्गारादि अन्य रसो का अन्तर्भाव भक्ति मे करते हुए इसे भक्ति रस का मूलत्व विवेचित किया। इतना ही नहीं आचार्य भोजराज के मूलरस श्रृड्गार की भाँति गौड़ीय आचार्य रूपगोस्वामी ने मधुर रस या भक्ति रस को मूल या रसराज मानकर इसमें अन्य रसों का अन्तर्भाव किया है।

भक्ति को स्वतन्त्र रूप से रस की मान्यता प्रदान करने वाले भक्तप्रवर वैष्णवाचार्यो का प्रमुख स्थान है। उन्होने मनोवैज्ञानिक तथा शास्त्रीय दोनों दृष्टियो से भक्ति को न केवल परिगणित ६–१० रसों के अन्तर्गत अथवा इसके समकक्ष रखा अपितु सभी में भक्ति रस का श्रेष्ठत्व भी प्रतिपादित किया। भक्ति रस के संस्थापक आचार्यो में सर्वप्रथम १३वीं शताब्दी के आचार्य वोपदेव का नाम लिया जा सकता है। आचार्य वोपदेव ने 'मुक्ताफल' नामक स्वग्रन्थ में भक्ति का रसत्व विवेचित किया है यह भक्ति का आदिम प्रतिपादक ग्रन्थ है। मुक्ताफल भागवतपुराण के विष्णु भक्तिपरक श्लोकों का सग्रह है। मुक्ताफल के टीकाकार हेमाद्रि ने काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भक्ति का रसत्व सिद्व किया है।

इसके अतिरिक्त भक्ति रस के प्रमुख प्रतिपादक आचार्य श्री रूपगोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्री जीवगोस्वामी, श्री नारायण भट्ट, श्री कविकर्णपूर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, बलदेव विद्याभूषण तथा अन्य साम्प्रदायिक आचार्य मधुसूदन सरस्वती एवं नारायणतीर्थ आदि हैं। आचार्य रूपगोस्वामी ने हरिभक्तिरसामृतसिन्धुः, एवं उज्ज्वलनीलमणि इन दो ग्रन्थो में भक्तिरस का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है। इनका भक्तिरस स्वरूप,

लक्षण, भेद, प्रक्रिया सर्वाधिक प्रामाणिक है। अपने गुरूदेव चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित भक्ति सिद्वान्त को, "हरिभक्तिरसामृतसिन्धु" को चारलहरियो मे प्रणयन करके, काव्य शास्त्रीय रूप प्रदान किया है। उज्ज्वलनीलमणि में एकमात्र रस मधुर रस को भक्तिरस की संज्ञा देकर 'रसराज' माना है। इनके पश्चात् जीवगोस्वामी ने स्वग्रन्थ **"प्रीतिसन्दर्भ"** में प्रीति (भक्ति) की रसता प्रतिपादित की है। नारायण भट्ट ने स्वग्रन्थ "भक्तिरसतरङ्गिणी" मे भक्ति रसता को निरूपित किया है। कवि कर्णपूर ने स्वग्रन्थ 'अलङ्कार कौस्तुभ' मे प्रेम रस का निरूपण किया है जो रूपगोस्वामी का मधुर भक्तिरस ही है।

आचार्य रूपगोस्वामी सम्मत श्रीराधापञ्चशती में भक्ति रस स्वरूप, प्रक्रिया एवं भेद

आचार्य भरत के रस सम्बन्धी मत (विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति) का अनुसरण करते हुए भी कुछ साम्प्रदायिक वैशिष्ट्य एवं कुछ स्वव्यक्तित्व की छाप डालते हुए आचार्य रूपगोस्वामी का मत है कि– "जब भगवद्रति विभाव, अनुभाव सात्पिकभाव एवं व्यभिचारी भाव के साथ मिलकर चमत्कृति जनक आस्वादन के योग्य बनती है उस समय उसका नाम भक्ति रस होता है।[1] अर्थात् जब यह कृष्ण विषयक रति भगवद्गुणो के श्रवण मनन आदि के द्वारा भक्तो के हृदय में आस्वाद्यता को प्राप्त होती है तब यह कृष्णभक्ति ही परिपुष्ट अवस्था में भक्तिरस की संज्ञा से विभूषित होती है। साहित्यशास्त्र में मान्य रस सिद्वान्त से रूपगोस्वमी प्रतिपाद्य भक्ति रस सिद्वान्त में वैशिष्ट्य हैं।–

भक्ति रस का प्रधान बैशिष्ट्य तो यही है कि इसमें भक्त एवं सहृदयजन श्रीकृष्ण की लीलाओं का आनन्द लेते हैं। अतः यहाँ सामाजिक (भक्त या सहृदय) के हृदय की परिणति राधा–कृष्ण की रति या यशोदा के वात्सल्य के रूप में नहीं होती। इस प्रकार भक्ति क्षेत्र में हम साधारणीकरण द्वारा अभिश्रित भावना का आस्वादन नहीं करते बल्कि कृष्ण भाव से मिश्रित भक्ति भावना का आस्वादन ही करते हैं। यह मान्य रस सिद्वान्त से भक्ति रस के सिद्वान्त का वैशिष्ट्य है। भक्ति रस की परिभाषा देते हुए रूपगोस्वामी का

---

1. सामग्रीपरिपोषेण परमा रसरूपता
   विभावैरनुभावैश्च सात्तिकैव्यभिचारिभि ।।
   स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभि
   एषा कृष्णरति स्थायीभावो भक्ति रसो भवेत्।।– हरिभक्तिरसामृतसिन्धु:– २–१–५; ६।

मत है कि–पुनर्जन्म एव इस जन्म, दोनो की जिस व्यक्ति के हृदय मे सदभक्ति की वासना है वही भक्ति रस का आस्वादन करता है। "इस प्रकार भक्तो के हृदय मे प्राक्तन तथा आधुनिक दोनो प्रकार के सस्कारो से उज्ज्वल आन्नद रूपा रति ही आस्वाद्ययोग्यता को प्राप्त होकर कृष्णादि रूप विभावादि के द्वारा प्रौढ आनन्द के चमत्कार की पराकष्ठा को प्राप्त हो जाती है। उसी का नाम भक्तिरस है।[1]" यथा–

राधे! कदा मुररिपुं मणिमुद्वहन्तं
श्रीकौस्तुभं निखिलकान्तिचयस्य भूमिम्।
पश्यामि वेदलतिकाकलिकासुगन्ध
जिघ्रन्तमादिपुरूष त्वयि दन्तचित्तम्।।[2]

भक्त, राधा जी से प्रार्थना करता है कि मैं कब भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करूँगा। जिन्होंने अपने वक्षस्थल पर दिव्य कौस्तुभ मणि धारण कर रखी है। यह मणि समस्त कान्ति के समूह की निवास स्थली है, श्रीकृष्ण आदि पुरुष है। वेदवल्ली की कलियों के सुगन्ध को सूँघते रहते है किन्तु उनका चित्त तो तुम्हारे पास रहता है– तुम्हीं मे रमण करता है।

श्रीराधापञ्चशती में रूपगोस्वामी सम्मत भक्तिरस के द्वादशभेद

भक्त रस का सर्वसम्मत स्थायीभाव भगवद्विषया रति हैं जो मुख्य और गौण भेद से दो प्रकार की होने से भक्ति रस भी मुख्य एवं गौण दो प्रकार का हैं। उसमे **मुख्य भक्ति रस के पांच भेद**– (१) शान्तभक्ति रस, (२) प्रीतिभक्ति रस, (३) प्रेयोभक्ति रस, (४) वत्सलभक्ति रस तथा, (५) मधुर भक्ति रस।

गौण भक्ति के सात भेद (१) हास्य भक्ति रस, (२) अद्भुत भक्तिरस, (३) करूण भक्तिरस, (४) वीरभक्ति रस, (५) रौद्र भक्ति रस, (६) भयानक भक्तिरस, तथा (७) वीभत्सभक्तिरस।

---

1. प्राक्तण्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना
एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते।। –हरिभक्तिरसामृतसिन्धु. २–१–७।
2 प्रो० रसिक विहारी जोशी; श्रीराधापञ्चशती, श्लोक १०४.

इस प्रकार श्रीरूपगोस्वामी द्वारा प्रतिपादित द्वादश (१२) भेद अधिक होने से चैतन्य मतानुयायी प्रो० रसिक विहारी जोशी ने श्रीराधापञ्चशती काव्य मे भक्ति रस के इन सभी भेदो का निरूपण किया है।

(क) मुख्य भक्तिरस

(१) शान्तभक्ति रसः—

विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव तथा संचारी भाव के द्वारा परिपुष्ट भगवत्विषयी शान्त रति ही सहृदयों के द्रुतचित मे शान्त भक्ति रस के रूप में अभिव्यक्त होती है।[1]

यथा— श्रीराधिका चरणपंकजमेव नित्यं
जेजीयते त्रिभुवनेऽखिल पद्मवृन्दम।
स्थानं विमोचन विधौ शरणं गतानां
मूल समस्तनिगमागमवल्लरीणाम्।।[2]

यहाँ राधा विषयक शान्त रति, शान्तभक्ति रस के पोषक राधाचरणकमल तीनों भुवनों को कमलो को अपनी शोभा से जीत लेते हैं। ये चरणकमल शरणागत व्यक्तियों के मोक्ष के एकमात्र स्थान हैं तथा समस्त निगम तथा आगम रूपी लताओं के उत्पत्ति के मूल है। इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती मे समस्त मोक्षदायक भक्ति वर्णन शान्तभक्ति रस के रूप मे उल्लेखनीय है।

२. प्रीतिभक्ति रस—

भाव, विभाव, अनुभाव सात्त्विक एंव संचारीभाव सहृदयों द्वारा अस्वाद्यमान भगवत्विषायिणी प्रीति ही प्रीतिभक्ति रस कहलाता है।[3]

---

1. लक्ष्यमाणैर्विभावाद्यै शामिना स्वाद्यता गत.
   स्थायिशान्तिरतिर्धीरै शान्तभक्तिरस. स्मृत ।।—हरिभक्तिरसाभृत सिन्धु—३/१/४.।
2. प्रो० जोंशी; श्रीराधापञ्चशती श्लोक— ३४०।
3. आत्मोचितै: विभावाद्यै प्रीतिरसास्वादनीयताम्
   नीता चेतासि भक्ताना प्रीतिभक्तिरसीगत ।।—हरिभक्तिरसाभृत सिन्धुः—३.२.३.।

इस प्रकार श्रीरूपगोस्वामी द्वारा प्रतिपादित द्वादश (१२) भेद अधिक प्रमाणित होने से चैतन्य मतानुयायी प्रो० रसिक विहारी जोशी ने श्रीराधापञ्चशती काव्य मे भक्ति रस के इन सभी भेदों का निरूपण किया है।

(क) मुख्य भक्तिरस

(१) शान्तभक्ति रसः–

विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव तथा संचारी भाव के द्वारा परिपुष्ट भगवत्विषयी शान्त रति ही सहृदयों के द्रुतचित मे शान्त भक्ति रस के रूप मे अभिव्यक्त होती है।[1]

यथा–

श्रीराधिका चरणपंकजमेव नित्यं
जेजीयते त्रिभुवनेऽखिल पद्मवृन्दम।
स्थानं विमोचन विधौ शरणं गतानां
मूल समस्तनिगमागमवल्लरीणाम्।।[2]

यहाँ राधा विषयक शान्त रति, शान्तभक्ति रस के पोषक राधाचरणकमल तीनों भुवनों को कमलों को अपनी शोभा से जीत लेते हैं। ये चरणकमल शरणागत व्यक्तियो के मोक्ष के एकमात्र स्थान है तथा समस्त निगम तथा आगम रूपी लताओं के उत्पत्ति के मूल है। इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती में समस्त मोक्षदायक भक्ति वर्णन शान्तभक्ति रस के रूप में उल्लेखनीय है।

२. प्रीतिभक्ति रस–

भाव, विभाव, अनुभाव सात्त्विक एव संचारीभाव सहृदयों द्वारा अस्वाद्यमान भगवत्विषायिणी प्रीति ही प्रीतिभक्ति रस कहलाता है।[3]

---

1. लक्ष्यमाणैर्विभावाद्यै शामिना स्वाद्यता गतः
   स्थायिशान्तिरतिधीरै शान्तभक्तिरस स्मृत।।–हरिभक्तिरसाभृत सिन्धु–३/१/४।
2. प्रो० जोशी; श्रीराधापञ्चशतीः श्लोक– ३४०।
3 आत्मोचितै. विभावाद्यै प्रीतिरसास्वादनीयताम्
   नीता चेतासि भक्ताना प्रीतिभक्तिरसीगत।।–हरिभक्तिरसाभृत सिन्धु.–३.२.३।

यथा–

> राधे! ते गुणमाधुरी रससुधासिन्धोरनन्तान् गुणान्
> पायं पायमहर्निश दिवि सुरा· संभेजिरेऽमर्त्यताम्।
> द्वित्रास्ते गुणसागरस्य कणिका· पीत्वा कृतार्था वयं
> शुभांशोर्हिमशीतलास्त्रिचतुरानुस्राश्चकोरा यथा।।[1]

यहॉ राधा विषयक प्रीति होने से भक्त प्रीतिभक्ति रस का आस्वादन करता है, क्योकि–राधा की गुणमाधुरी रससुधा का एक महान् सिन्धु है। स्वप्न मे समस्त देवता राधा जी के अनन्त गुणों का रात दिन रसपान करते–करते ही अमर हुए हैं किन्तु भक्त राधाजी के गुणसागर के केवल· दो–तीन कण ही चखा और उसी से कृतार्थ हो गया है, जैसे चकोर चन्द्रमा की हिमशीतल·तीन चार किरण पीकर ही कृतार्थ हो जाते हैं।

३. प्रेयोभक्ति रस–

अपने अनुकूल विभावादि के द्वारा परिपुष्ट हुआ सख्यरति ही सहृदयो के विशुद्ध चित्त में प्रेयोभक्ति रस के रूप मे प्रकट होती है। दूसरे शब्दों मे दास्य भाव की उत्कृष्ट प्रीति ही प्रेयोभक्ति रस के नाम से जानी जाती है। इस रस में भक्त समस्त प्रतिबन्ध रहित तथा प्रगाढ़ विश्वास से युक्त होता है। यथा–

> कृष्णप्रिये! हरिसखि! श्रुतिमूलकन्द
> पादारविन्दमिह तेऽमरमौलिवन्द्यम्।
> यः सदधाति हृदयाम्वुरूहेऽद्वितीयम्
> गच्छेत पदं स परमं कमलासनानाम्।।[2]

भक्त का राधा एवं कृष्ण के प्रति दास्यभाव अथवा सख्य रति से प्रयोभक्ति का रसास्वादन करता है क्योंकि राधा श्रीकृष्ण की प्रियसखी हैं, राधा के चरणकमल श्रुतियों के

---

1 श्रीराधापञ्चशती· श्लोक– ४६६।
2. वही श्लोक–६६।

मूलकन्द है। समस्त देवता एवं भक्त अपने मस्तक से इन चरणकमलो की वन्दना करते है जो व्यक्ति इन अद्वितीय चरणकमलो को अपने हृदय मे धारण कर लेता है, वह विभिन्न ब्रह्माण्डो के ब्रह्माओं का परम पद प्राप्त कर लेता है।

४. वात्सल्य भक्ति रस–

भगवतविषयी वात्सल्य रति नामक स्थायीभाव, विभावानुभावव्यभिचारी एवं सात्त्विकभावों के द्वारा परिपुष्ट होकर वात्सल्य भक्ति रस के रूप में रसज्ञ एव सहृदयो द्वारा अनुभूत होता है।[1]

यथा– जडा अपि हरिप्रिये! मुखरयन्ति वशीध्वनि
न किञ्चिदपि कौतुकं मुरलिकाप्रिये श्रीहरौ।
द्रुतं प्रसृतिमागता नवनवा कवेः कल्पना
पतेद् यदि कृपालवस्तव, वयं प्रमाणं ध्रुवम्।।[2]

यहाँ राधा के प्रति वात्सल्य रति होने से केवल श्रीकृष्ण ही वशीवादन में पटुता को प्राप्त करते है। बल्कि वात्सल्य कृपा का लेशमात्र प्राप्त होने पर जड़ व्यक्ति कवि कल्पना में प्रखर हो जाता है इस विषय में कवि स्वयं प्रमाण है। भक्त कवि स्वयं वात्सल्य भक्ति रस की अनुभूति करता है।

५. मधुर भक्ति रस–

मधुरा रति नायक स्थायी भाव, विभाव अनुभाव, व्यभिचारी एवं सात्विक भावों के द्वारा परिपुष्ट होकर मधुर भक्ति रस कहलाता है।[3] इस मधुर भक्ति रस के आलम्बनविभाव है– भगवान् श्रीकृष्ण एवं सुन्दर गात्रों वाली उनकी प्रिया।[4] दोनों परस्पर आलम्बन रूप हैं। राधिका के अतिरिक्त भी भगवान् की प्रिया है। यद्यपि मधुर भक्ति रस का वर्णन श्रृङ्गार रस की भाँति होता है, परन्तु श्रृङ्गार रस मे सहृदय के अन्तःकरण मे सामान्यतया

---

1. विभावाद्यैस्तु वात्सल्य स्थायीपुष्टिमुपागतः
   एष वत्सलनामा प्रोक्तो भक्तिरसोबुधैः।। हरिभक्तिरसाभृत सिन्धु– २/४/१।
2. श्रीराधापञ्चशती श्लोक– १३४।
3. आत्मोचितैर्विभावाधैः पुष्टि नीता सतां ह्रदि।
   मधुराख्यो भवेत् भक्तिरसो सा मधुरा रतिः।। हरिभक्ति रसाब्रिरसामृतसिन्धु– २/५/१.।
4 असिन्नालम्बन. कृष्ण प्रियास्तस्य च सुभुव।। वही–२/५/३।

रागवासना की उपास्थिति होती है परन्तु इसके विपरीत मधुर रस मे काम वासना का लेशभात्र भी नही होता है। प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती काव्य तो भक्ति रस के प्रमुख भेद–मधुर भक्ति रस का उत्तम काव्य है। इस पूरे काव्य में मधुरभक्ति रस सर्वाधिक प्रयुक्त है–

यथा– राधा विलोकयितुमेव क्वचिन् मुरारि।
बम्भ्रम्यते प्रतिदिनं निलयं वृषस्य।
आली प्रवोधयति तां कुरू माधवं तं
रागानुविद्वहृदयं तव दृष्टिपात्रप।।[1]

यहाँ सहृदय भक्त मधुर भक्ति रस का आस्वादन करता है क्योकि मुरारि श्रीकृष्ण राधा से आसक्त होकर वृषभानुजी के घर के आस–पास प्रतिदिन चक्कर लगाते रहते हैं– राधाजी की एक झलक देखने के लिए। राधा जी की अतरंग सखी उनको (राधा जी को) समझाती है कि श्रीकृष्ण का हृदय राग से विंध गया। अत· हे राधा तुम श्रीकृष्ण को अपनी कृपा का पात्र बना लो।

इस रस में भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी प्रियाओ का पारस्परिक रति सच्चिदानन्दमयी होती है। भक्तिशास्त्र के अनुसार मधुर भक्ति रस का आस्वाद्य सहृदयों के चित्त को न केवल कामवासना अपितु सभी प्रकार की वासनाओं का विनाश हो जाता है।

यथा– "जब भगवान श्री कृष्ण घूमने के लिए निकलते है तब ब्रजाङ्गनाओं के झुण्ड के झुण्ड मार्ग में निरन्तर उनकी पूजा करते रहते हैं। कोई मधुर स्मित से तो कोई कानो तक बिखरे हुए नेत्रकमलों को चरणों में अर्पण करके पूजा करती है। मैं भी प्रसन्नता से उन्हीं माधव मुकुन्द का भजन करता रहता हूँ जो वेदो के मूलकन्द है और राधा के नयनारविन्द का रसपान करने के लिए मंडराते हुए भौंरे के समान टकटकी लगाये रहते हैं।[2]

---

1. श्रीराधापञ्चशती श्लोक– १२३।
2. समर्चयति य पयि ब्रजवधूगण. सन्तत
स्मितेन मधुरेण च श्रुतिविकीर्णनेत्राम्बुजैः।
भजामि वृषभानुजानयनपद्मयो· सञ्चरद्
द्विरेफमिव माधव निगममूलकन्द मुदा।।– श्रीराधापञ्चशती श्लोक– १५४।।

मधुरा रति ही श्रीकृष्ण के सयोग का कारण है। श्रीकृष्ण की कान्ताभाव से की गयी उपासना ही मधुरा भक्ति रस के रूप मे जानी जाती है। श्रीराधापञ्चशती काव्य मे ऐसी भक्ति के अनेक स्थल प्राप्त है।[1] ऐसा भाव भक्ति की अन्तिम तथा सर्वोत्तम अवस्था होती है क्योंकि इसमे भगवान के साथ मर्यादा निर्वाह या सकोच का कोई स्थान नहीं रहता है यहॉ भगवान् की उपासना लौकिक दाम्पत्य सदृश होते हुए भी उससे सर्वथा भिन्न रहती है क्योंकि लौकिक दाम्पत्य में वासना की प्रवृत्ति एव स्वार्थ की प्रधानता रहती, परन्तु मधुर भक्ति रस दिव्य वस्तु है इसमे राधा कृष्ण का वियोग क्षणभर के लिए नही होता है।[2]

इस प्रकार की मधुर भक्ति रस के दो भेद है— (१) विप्रलम्भ मधुर भक्ति रस एवं (२) सम्भोग मधुर भक्ति रस।

विप्रलम्भ मधुर भक्ति रस:-

युगल प्रेमियों के वियोग की दशा को विप्रलम्भ मधुर भक्ति रस कहते है।[3] श्रीरूपगोस्वामी के मत में संयोग की अशाश्वत गति ही विप्रलम्भ है क्योंकि उसके बिना संयोग पुष्पित नहीं होता। उस प्रकार विप्रलम्भ भी चार प्रकार का है— पूर्वराग, मान, प्रेम वैचित्य तथा प्रवास। श्रीराधापञ्चशती में पूर्वराग एव मान विप्रलम्भ का प्रसग आया है। जैसे राधा के मानविप्रलम्भ का उदाहरण—

यदा कोपं राधा वहति हृदये मानरचितं

मुखं कृत्वा नीचै परिलिखति भूमौ पदनखै.

तदा नेत्रे पूर्णे भवत इव बाष्पैः परिगतैः

विलोक्येमां मूर्ति द्रवति हृदयं श्रीमुररिपो ।।[4]

---

1. श्रीराधापञ्चशती श्लोक— १०७, ३५०, ४२५, ४५७।
2. श्रीराधापञ्चशतीः श्लोक— १२५।
3. "यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।" साहित्यदर्पण—३/१८७।
4. श्रीराधापञ्चशतीः श्लोक— १६५।

सम्भोग मधुर भक्ति रस—

दो आसक्त प्रेमियो का परस्पर दर्शन तथा स्पर्श जन्य आनन्द ही सम्भोग मधुर भक्ति रस है।[1] प्रो० जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती काव्य तो सम्भोग मधुर भक्ति रस से भरा पडा है।[2] यथा—

> कर्णाकर्णिकया यदा श्रुतवती राधा हरेरागतिं
>
> व्याजेनापि तदाऽभवत् पुलकिता क्लानापि नेत्रद्युतिः।
>
> विस्फूर्तिश्च समागता नयनयो· कृष्णे च दृष्टिं गते
>
> तां दृष्टि मयि पातयेद् यदि तदा मोक्षं लभेय ध्रुवम्।।[3]

यहाँ श्रीकृष्ण के लौटने की बात सुनकर राधा के मलिन नेत्र की कान्ति पुलकित हो गयी। जब उसने श्रीकृष्ण को देख लिया तो उनके नेत्रों में तत्काल अनोखी स्फूर्ति आ गयी। भगवती राधा की ऐसी दृष्टि मुझे प्रदान करें। इस प्रकार सम्भोग मधुर भक्ति रस व्यक्त हो रहा है।

गौणी भक्ति रस

(१) हास्य भक्ति रस—

हास रति नामक स्थायीभाव विभावानुभाव व्यभिचारी भावों द्वारा सहृदयों को आस्वाद्यमान हास्यभक्ति रस कहलाता है।[4] श्रीराधापञ्चशती मे राधा विषयक हास्य भक्ति रस का उदाहरण द्रष्टव्य है।[5]

---

1. दर्शनस्पर्शनादीनि विषेवेते विलासिनौ।
   यत्रानुरक्तावन्योन्यं सभोगोऽयमुदाहृत.।। साहित्यदर्पण—३/२१०।
2. प्रो० जोशीः श्रीराधापञ्चशती श्लोक— ५०, ५१, ५२, १४२, १४५, १४६, १४७, १५१, १५२, १६१, १६६, १७६, १७७, १८२, २०८, २३८, ३०१, ३०२, ३४३, ३५७, ३५८, ३६१, ३६६, एव ३७७।
3. श्रीराधापञ्चशती. श्लोक— ५२।
4. वक्ष्यमाणविभावाद्यैः पुष्टि हासरतिर्गता
   हास्यभक्तिरसो नाम बुधैरेष निगद्यते।।— हरिभक्तिरसामृतसिन्धु ४१५।
5. प्रो० जोशी, श्रीराधापञ्चशती श्लोक— ३६०, ३६६, ३६७,।

यथा–

कृष्णे प्रीतिमती मुदा प्रकुरूते मोदं कृपाम्भोनिधौ

राधाकृष्णकरैर्भृश पुलकिता स्पृष्टा प्रमोदं पुन ।

सूर्यप्रीतिमती यथा कमालिनी स्पृष्टा प्रभाते करै

रूत्फुल्ला गमयत्यशेषमभितो मोदं सुगन्धान्वितम्।।[1]

राधा की श्रीकृष्ण मे परमप्रीति थी वह कृपासागर श्रीकृष्ण को प्रसन्नता से प्रफुल्लित कर देती थी। जब श्रीकृष्ण अपने हाथों से राधा को छू लेते थे तो राधा रोमाञ्चित होकर श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर देती थी जैसे कमलिनी और सूर्य मे परम प्रीति तथा तज्जनित व्यवहार होता है। इस प्रकार यहॉ हास्य भक्ति रस का सर्वोत्तम निदर्शन हुआ है।

२. अद्भुत भक्ति रस–

देव विषयक विस्मय रति विभावादि की अनुकूलता की पाकर अद्भुत भक्ति रस का संचार कराता है।[2]

यथा– राधे! ते ते कटाक्षा विदधति विपिंन विव्यहर्म्यं पतन्तः
सामान्यामापमां वा परमरसमयीं दिव्यमन्दाकिनीञ्च।
वलीं वा पुष्पहीनां सकलकुसुमदा कल्पवल्लीस्वरूपां
तस्मान् कि कामयन्ते सुरमुनिनिवहा मुक्तिकामाः कटाक्षान्।।[3]

यहॉ राधा के कटाक्ष विलक्षण है। ये जहाँ भी गिर जाते है तो लोकोत्तर कार्य करते हैं। जैसे किसी वनस्थली में पड़ जाय तो दिव्य महल, सामान्य नदी में गिरे तो वह परम सरस्वती दिव्य मन्दाकिनी, तथा पुष्पहीन लता पर पडे तो वह समस्त फूल देने वाली

---

1 वही श्लोक–३६६।

2. आत्मोचितै विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तचेतासि।
सा विस्मयरतिर्नीताद्भुत भक्ति रसो भवेत्।।– हरिभक्तिरसामृरूसिन्धु

3. प्रो० जोशी; श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ४६४।

कल्पलता बन जाती है। इसलिए मुक्ति चाहने वाले देवता तथा मुनियो के समूह राधा जी के कमनीय कटाक्षो की कामना किया करते है। इस प्रकार यहॉ राधा का विस्मय रति ही अद्भुत भक्ति रस रूप में व्यक्त हो रहा है।

इस प्रकार श्रीऱाधापञ्चशती काव्य में अनोखी भक्ति अद्भुत जनक फल प्राप्ति का माध्यम रूप मे वर्णित है अतएवं अद्भुत भक्ति रस के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है।[1]

३. वीरभक्तिरस–

देव विषयक उत्साह रति, विभावादि द्वारा आस्वाद्यमान वीरभक्ति रस कहलाता है।[2] यह भक्ति रस युंद्ध वीर, दान वीर, दया वीर, एवं धर्म वीर नाम से चार प्रकार का होता है। इन सभी में उत्साह रति नामक स्थायी भाव पाया जाता है। इनके उदाहरण श्रीराधापञ्चशती काव्य मे अत्यल्प है। यथा–

परिहास विनाशकर सकल

सुत्दारसुह्रतपरिवारगणम्।

वृषभानुसुतापदपद्मरतिं

कलयाम्यधुना ननु धामगतिम्।।[3]

यह धर्म वीरभक्ति रस का उदाहरण है। भक्त विनाशकारका समस्त पुत्र, पत्नी, मित्र तथा परिवार जनों को छोड़कर वृषभानुनन्दिनी राधा के चरणारविन्द मे अनन्त प्रेम को ही प्रधान मान लिया तथा परम धाम की गति का क्या है जान गया।

---

1 प्रो० जोशी, श्रीराधापञ्चशती; श्लोक २१, ३४, ३६, ४७, १६७, २००, ३४१२, ३८३, ३६६, ४००, ४१४, ४२६, ४५२, ४८३।

2. सेवोत्साहरतिः स्थायीविभावाद्यैर्नियोजितै.
अनीयाना स्वाद्यत्वं वीरभक्तिरसो भवते्।।– हरिभक्तिरसामृत सिन्धु.– ४/३/१।

3. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक ४४१।

४. करूणभक्ति रस–

शोक रति नामक स्थायी भाव विभावानुभाव व्यभिचारी भावो के द्वारा करूणभक्ति रस के रूप मे परिणत होता है।[1] विशिष्ट प्रेम न होने से इस करूणभक्ति रस में भगवान् श्रीकृष्ण अथवा राधा जी की करूणा की अनूभूति की जाती है। श्रीराधापञ्चशती काव्य मे राधा जी की करूणाभक्ति का अनेकशः प्रकरण दृष्टिगोचर होता है। जैसे–

इन्द्रः सदैव रमते विभवोत्मेन
यक्षेश्वरोऽयमतुलेन धनेन युक्तः।
ब्रह्मभवत्यंनुपमों जगता विधाता
राधे! तवैव करूणापथामापतन्तः।।[2]

यहॉ इन्द्र यक्षराज कुबेर तथा प्रजापति ब्रह्मा का अतुलनीय शक्ति या प्रभाव से सम्पन्न होने का कारण राधा की करूणा ही हैं। ये तीनों ही राधा की करूणा के विषय बने है। अतएवं यह करूणभक्ति रस का उदाहरण है।

५. रौद्र भक्ति रस–

देवविषयक क्रोधरति नामक स्थायी भाव विभावादि की अनुकूलता प्राप्त करके रौद्र भक्ति रस के रूप में अभिव्यक्त होता है। क्रोध रति स्थायी भाव तीन प्रकार की होती हैं– (१) कृष्ण क्रोधरति में सखी जानों अथवा वृद्धा का क्रोध आश्रय होता है। (२) हित क्रोध रति एवं (३) अहित क्रोधरति मे तो सभीप्रकार के भक्तों का क्रोध आश्रय रूप में स्वीकार किये जाते हैं।[3] श्रीराधापञ्चशती काव्य में राधा–कृष्ण विषयक रौद्रभक्ति रस का प्रकरण अत्यल्प वर्णित है।

---

1. आत्मोचित्तैः विभावाद्यैर्नीता पुष्टि सता हृदि।
भवेच्छोकरतिभक्तिरसो य करूणामिथ.।।–हरिभक्तिसामृता सिन्धु–४/४/१.।
2 श्रीराधापञ्चशती; श्लोक ४३१,
3. नीताक्रोधरतिः पुष्टिं विभावाद्यैर्निजोचितै
हृदिभक्तिजनस्यासौ रौद्रभक्तिरसो भवेत्।।– हरिभक्तिरसाभृतसिन्धु. ४/५/१.।

यथा– शक्र केऽपिभजन्तु यागविधिना बालाय कोपङ्गार
यस्मिननास्ति गति सुरक्षणविधौ स्निग्धस्य सूनोरपि।
अस्माक तु मनो सदैव रमता श्रीराधिकायां मुदा
क्रोधाद् या रहिता दृशैव कुरूते संरक्षणं द्वेषिणाम्।।[1]

यहाँ इन्द्र तो बालक श्रीकृष्ण पर क्रोध करता है। उसमे तो स्वय अपने पुत्र की रक्षार्थ शक्ति नहीं है। भक्त तो हमेशा वृषभानुनन्दिनी राधा के चरण कमल मे रमण करता है जो क्रोध से सर्वथा रहित है। उनके प्रति द्वेषभाव रखने वाले की भी रक्षा करती है। इस प्रकार रौद्र भक्ति रस का उदाहरण है।

६. भयानक भक्ति रस–

भय रति नामक स्थायी भाव विभावादि की अनुकूलता से भयानकभक्ति रस के रूप अभिव्यक्त होता है।[2] श्रीराधापञ्चशती काव्य में सांसारिक मोह, माया, अविद्या, कुण्ठा के भय से राधा विषयक भयानक भक्ति रस कतिपय वर्णन प्राप्त होता है–यथा–

अवलोक्य यमस्य गति निकटा
परिहाय यश प्रभुता धनतां
वृषभानुसुताचरण विमलं
कलयामि सदा हृदये शरणम्।।[3]

यमराज के प्रति भय उत्पन्न होने से भक्त ने सब प्रकार के यश, पदों की प्रभुता की इच्छा, तथा धन की कामना का सर्वथा त्याग कर दिया है और अपने हृदय मे वृषभानुनन्दिनी राधा के निर्मल चरण कमल को परम रक्षक माना। इसलिए यह भयानक भक्ति रस का उदाहरण है इसके अतिरिक्त अन्य भी उदाहरण है।[4]

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ३४७,
2 वक्ष्यमाणैर्विभायाद्यै पुष्टि भयरतिर्गता
भयानक मिथो भक्तिरसो धीरैरूदीर्यते।।–हरिभक्तिरसामृतासिन्धू–४/६/१।
3. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ४४१,
4. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ४४३।

७. वीभत्स भक्ति रस–

जुगुप्सा रति नामक स्थायी भाव विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव एव सात्त्विक भावो द्वारा सहृदय को आस्वाद्यमान वीभत्स भक्ति रस कहलाता है।[1] आश्रित तथा शान्त आदि इस वीभत्स भक्ति रस के आलम्बन विभाव हैं।

यथा– जन्मान्धो विवरे पतेदहरहो दोषो नगण्यस्तदा

बाल सर्पफणा स्पृशन्नपि मुहुर्नैवास्ति निन्दास्पदम्।

प्रज्ञादीपकरोऽप्यनल्पधिषणः शास्त्रेष्वधीती स्वयं

जाग्रत्यां त्वयि राधिके पततिचेत् सोऽयं प्रमादी महान्।।[2]

यहाँ जन्मांन्ध का गड्ढे में गिरना, बच्चे द्वारा सर्पफण पकड़ना, जुगुप्सा (निन्दा) का विषय नहीं है, किन्तु ऐसा प्रमादी भक्त जिसके हाथ में पूजा का दीपक हो, बुद्दि भी बहुत हो, शास्त्रो में अध्ययन शीलता (रूचि) हो, राधा जी की बराबर प्रेरणा हो, फिर भी गिरे। उस प्रकार यह राधा के प्रति वीभत्स भक्तिरस का उदाहरण है।

इस प्रकार चैतन्य मतसम्मत भक्ति भाव को श्रीरूपगोस्वामी ने १२ प्रकार के भक्ति रसों में अभिव्यक्त किया है जिसे चैतन्य मत के प्रवल समर्थक प्रो० रसिक विहारी जोशी ने श्रीराधापञ्चशती काव्य में सम्यक् रूपेण प्रदर्शित किया है। जो बीसवीं शदी मे भक्तिरस के पूर्ण परिपाक का अमूल्य काव्य ग्रन्थ है।

---

1. पुष्टि निजविभावाद्यैर्जुगुप्सादतिरागता
   असौ भक्तिरसो धीरैर्वीभत्साख्य इतीर्यते।।– हरिभक्तिरसाभृतसिन्धु.– ४.७.१।
2. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक १६।

गुण विवेचन

काव्यगत गुणो. का रस के साथ अभिन्न सम्बन्ध होता है। "जो आत्मा के गुण शौर्य आदि की काव्य के अङ्गी रूप रस के उत्कर्ष के हेतु हैं, वे नित्य स्थिति वाले गुण कहे जाते हैं।"[1] जिस प्रकार शौर्य आदि सत्व अर्थात् अन्त:करण के ही धर्म हे, स्थूल शरीर के नही, उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण रस के ही धर्म है वर्णो के नहीं, केवल समुचित वर्णो के द्वारा ही वे वर्णित होते है। यद्यपि वामन ने दस गुणो की सत्ता स्वीकार की थी (दस शब्द गुण एवं दस अर्थ गुण) किन्तु ध्वनिवादी आचार्य मम्मट, (आनन्द वर्धन तथा आचार्य विश्वनाथ आदि) ने तीन गुणों माधुर्य, ओज, प्रसाद मे वामनोक्त दस गुणों का समाधान करने से तीन ही गुण स्वीकरणीय हैं।[2]

माधुर्य गुण

"मधुर में चिन्त द्रुति का कारणभूत आह्लादक ही माधुर्य है।[3] सम्भोग श्रृङ्गार में द्वेषादिजन्य कठिनता, क्रोधादिजन्य दीपत्व, विस्मय हासादिजन्य विक्षेपों से अस्पृष्ट चित्त का अनुभव करते हुए जो द्रुतिनाम की लक्षणावस्था है, उसके कारणभूत सम्भोग श्रृङ्गार, करूण, विप्रलम्भ श्रृङ्गार तथा शान्त में अनुगत जो विशिष्ट आह्लादकता है, वह माधुर्य है। उत्तरोत्तर माधुर्यगुणों की स्थिति करूण, विप्रलम्भ और शान्त में अधिक द्रुति होने के कारण अधिक हो जाती है।[4]

श्रीराधापञ्चशती काव्य में तो श्रृङ्गार एवं भक्ति दोनों रसों का सामञ्जस्य पूर्ण वर्णन मिलता है। किसी एक रस की अतिशयता नहीं है। मोक्षादि वर्णन में तो कहीं कही शान्त रस का पुट दिखायी पड़ता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस काव्य में श्रृङ्गारानुगत भक्ति रस की प्रधानता है। श्रीराधापञ्चशती में तो राधा के दिव्य श्रृङ्गार वर्णन की प्रचुरता में माधुर्य गुण भरा हुआ है।

1.(क) रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादय इवात्मन.
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलास्थितयो गुणाः।।—काव्यप्रकाश, ८/८७।
(ख) रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा, गुणा।
माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा।।—साहित्यदर्पण—८/१

2. माधुर्योजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते, न पुनर्दश।—काव्यप्रकाश—८/८६।

3.(क) "आहलादकत्वं माधुर्य श्रृङ्गार द्रुतिकारणम्।" काव्यप्रकाश—८/९०।
"चिन्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।"—साहित्यदर्पण—८/२

4.(क) "करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।" काव्यप्रकाश—८/९१।
(ख) "संभोगे करूणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिक क्रमात्।" साहित्यदर्पण—८/२।

यथा–

राधा, कज्जल लोचनाऽधरपुटे ताम्बूलरागाञ्चिता

नासा जातिकुड्मला सुरभिताऽम्भेजस्रजा मोहिनी

कर्णान्दोलित दुग्ध कुन्द कलिका हस्तारविन्दद्वयी

पादांलक्तकरागिणी भवतु में प्रव्यूह विध्वंसिनी।।[1]

यहॉ राधा के अलौकिक नेत्र वर्णन मे विश्व प्रसिद्ध उपमानों की अनौचित्यता के वर्णन में माधुर्य के सहज दर्शन होते है।

सम्भोग श्रृंड्गार के वर्णन में भी माधुर्य गुण का उत्कर्ष द्रष्टव्य है–

पुष्पं चेतुमिवागता हरिसखीं राधा निकुञ्जे तटे

कालिन्द्या अवलोक्य कन्दुकमिषाच्छृङ्गारमूर्तिहरिः।

स्तब्ध्वा तां सहसा स्खलद्रसनया कुत्रास्ति में कन्दुक

प्रोच्योरोजमपिस्पशत् तरलिते नेत्रे प्रियायास्तदा।।[2]

यहाँ यमुना तट पर फूल तोड़ती राधा के साथ निकुञ्ज में सम्भोग श्रृड्गार वर्णन में माधुर्य की छटा दर्शनीय है।

इस प्रकार राधापञ्चशती काव्य में वर्णित दिव्यश्रृड्गार के दोनो पक्षों सम्भोग एवं विप्रलम्भ[3], करूणभक्ति रस[4], शान्तभक्ति रस[5] के वर्णन प्रकरण में माधुर्य गुण का पूर्ण उत्कर्ष प्राप्त होता है। मुक्तक काव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य होने के कारण राधापञ्चशती में माधुर्य गुण की सर्वत्र स्थिति है।

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक २२।
2. वही; श्लोक–७१।
3. वही; श्लोक–१६५।
4. वही; श्लोक–४३१।
5. वही; श्लोक–३४०।

ओज गुण–

आत्म विस्तार के हेतु दीप्ति रूप ओज गुण की वीर रस मे स्थिति होती है, चित्त की यह दीप्ति क्रमश वीर, वीभत्स और रौद्र मे अधिकाधिक होती जाती है।[1] श्रीराधापञ्चशती काव्य मे ओज गुण के पोषक वीर, वीभत्स और रौद्र रसो का स्वतन्त्र रस के रूप में प्राप्त न होने से ओज गुण की स्थिति स्पष्ट नहीं होती है। भक्ति रस के गौण भेद के रूप वीरभक्ति एव रौद्रभक्ति रस का प्रकरण है जो ओज गुण की अनिवार्यता को नही बल्कि अत्यल्पता का सूचक है। काव्य के अन्त में समास बहुल श्लोको मे यत्र तत्र ओज गुण दिखायी देता है।[2]

प्रसाद गुण–

शुष्क ईन्धन में अग्नि के समान, स्वच्छ वस्त्र में जल के समान, जो सहसा ही चित्त को व्याप्त करता है ऐसे प्रसाद गुण की स्थिति सर्वत्र मानी जाती है।[3] यहाँ प्रयुक्त सर्वत्र शब्द से तात्पर्य है–सब रसों में, सब रचनाओं में प्रसाद गुण की स्थिति होती है।

प्रसाद गुण के लिए किन्हीं विशिष्ट वर्णो, वृत्ति अथवा रचना का विधान नही है। उसका व्यावर्त गुण है जहाँ श्रवणमात्र से अर्थ स्पष्ट हो जाय वही पर प्रसाद गुण की स्थिति होती है।[4] चाहे चित्त द्रुति का प्रसङ्ग हो अथवा दीप्ति का, अर्थ का प्रत्यय ही तो सर्वत्र अपेक्षित है, वही तो सबकी आधारभूमि है। अतः सत्काव्य में प्रसाद गुण की स्थिति सर्वथा; सर्वदा अभिलषणीय है चूँकि श्रीराधापञ्चशती सर्वजन संवेद्य भक्तिपरक गीति काव्य है, जहाँ भक्ति रस के समस्त भेदों के चित्रण मे प्रसाद गुण का स्वरूप द्रष्ट्व्य है।

---

1 दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः
वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्य क्रमेण च।।–काव्यप्रकाश ८/६२,६३।

2. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक–५०५ से ५११ तक।

3. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य.
व्योप्नोत्यन्यथप्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।। काव्यप्रकाश–८/६४।

4. श्रुतिमात्रेण शब्दान्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्रणां स प्रसादो गुणोमतः।।– काव्यप्रकाश–८/७०।

भक्त जनो द्वारा संवेद्य भक्तपरक गीतिकाव्य श्रीराधापञ्चशती मे भक्ति रस के भेदोपभेद वर्णन मे प्रसाद गुण की निर्झरणी प्रवाहित सी होती है। जो रस विवेचन प्रकरण मे द्रष्ट्व्य है यथा– प्रीति भक्तिरस के प्रसङ्ग मे, "राधा की गुणमाधुरी रस सुधा का एक महान सिन्धु है। स्वर्ग में समस्त देवता राधा जी के अनन्त गुणों का अहर्निश रसपान करके ही अमर हुए है किन्तु भक्त तो राधाजी के गुणसागर से केवल दो तीन कण ही चखा और उसी से कृत्कृत्य हो गया। जैसे चकोर चन्द्रमा की हिमशीतल तीन चरण किरण पीकर ही कृतार्थ हो जाते हैं।"[1]

इसी प्रकार प्रेयोभक्ति रस[2], वात्सल्यभक्ति रस[3] तथा मधुर भक्ति रस[4] आदि प्रसङ्गों में प्रसाद गुण द्रष्ट्व्य है। जगत् के क्षणभङ्गुरता का त्रोटक छन्द में वर्णित प्रसंग में प्रसाद गुण की स्वाभाविकता प्रदर्शित होती है[5]–

मलमूत्रयुतं वपुराकलितं
कलितं सकलं क्षणभङ्गयुतम्
प्रियसङ्गतिरत्र मुधाकलिता
वृषभानुसुता हृद्वये कलिता।।[6]

यह मानव शरीर मलमूत्र का डिब्बा है, जगत् में सब कुछ क्षणभङ्गुर है। प्रिय समागम भी दिखावटी तथा मिथ्या है। वृषभानुनन्दिनी राधा ही एकमात्र गति हैं। ऐसा मैने हृदय से जान लिया। राधा नाममन्त्र के माहात्म्य वर्णित प्रसङ्ग में प्रसादगुण सहज रूप से दिखायी देता है[7]

---

1. राधे! ते गुणमाधुरी रससुधासिन्धोरनन्तान् गुणान्
   पायं पायमहर्निश दिवि सुराः संभोजिरेऽमर्त्यताम्
   द्वित्रास्ते गुणसागरस्य कणिका पीत्वा कृतार्थ वयम्
   शुभांशोर्हिमशीतला स्त्रिचतुरानुस्राश्चकोरा यथा।।–श्रीराधापञ्चशती श्लोक–४६६।
2. वही; श्लोक–६६।
3. वही; श्लोक–१३४।
4. वही; श्लोक–१२३।
5. वही; श्लोक–४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४।।
6. वही; श्लोक–४४३।
7. वही; श्लोक–३८८, ३८६, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४।।

यथा–

महारत्नपीठे स्फुरन्नीलदमे
लसन्नीलवस्त्रा तडिच्छुभ्रदेहाम्
महारत्नहीराञ्वित श्रोतरम्या
सुवर्णप्रमां राधिकां भावयेऽहम्।।[1]

इस प्रकार श्रीराधापञ्चशती काव्य मे दिव्य श्रृङ्गार एव भक्ति रस के प्रसङ्गानुकूल वर्णन तथा अन्यान्य विषयेतर प्रसङ्ग मे माधुर्य, प्रसाद गुणो की अधिकता तथा ओज गुण की न्यूनता दिखायी पड़ती है।

रीति विवेचन

आचार्य वामन के अनुसार रीति काव्य की आत्मा है। विशिष्ट पद संघटना को अर्थात् गुणयुक्त पद संघटना को रीति कहते हैं।[2] उन्होने अपने दश शब्द एवं अर्थ गुणों के आधार पर वैदर्भी पांचाली और गौड़ी इन तीन रीतियो की व्यवस्था की है। कालान्तर में काव्यात्मा के सम्बन्ध में अधिक सूक्ष्म विचार होने पर रस और ध्वनि को आत्मपद पर प्रतिष्ठित किया गया, तथापि रीति की महत्ता रस सापेक्ष अथवा गुणसापेक्ष ही रही। ध्वनिवादियों के विचार में गुण शब्दार्थ के नहीं अपितु रस के धर्म हैं। रीतियों का सम्बन्ध वामनोक्त दस गुणों तथा ध्वनिसम्मत तीन गुणो के साथ अन्योन्याश्रित है। अतः रीतियों का स्थान रसाभिव्यञ्जक पद–संघटना के रूप में निर्धारित है तथा काव्यपुरूष के रूपक में उन्हें अवयव संस्थान की संज्ञा प्राप्त हुई।[3]

काव्य के अङ्गी रस के उपकारक गुण तथा रीतियों का अविनाभाव सम्बन्ध होने के कारण सम्पूर्ण श्रीराधापञ्चशती काव्य में श्रृङ्गानुगत भक्ति रस के अंग रूप माधुर्य एवं प्रसाद गुणों के संवाहक वैदर्भी रीति सम्यक्रूपेण दृष्टिगोचर होती है।

---

1. वही; श्लोक–३६५।
2. रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्ट पदरचना रीति ।।–आचार्य वामन।
3 पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनाम्।।–साहित्यदर्पण–६/१

वैदर्भीरीति

माधुर्य गुण के व्यञ्जक वर्णो से युक्त ललित पदावली जिसमें समासो का प्रयोग न हो, अथवा अल्प समास हो, वैदर्भी रीति कही जाती हैं। यह श्रृङ्गार, करूण आदि कोमल रसों का उपकार करती है। आचार्य मम्मट ने इसे उपनागरिका वृत्ति भी कहा है। वैदर्भी का स्वरूप जैसा भी रहा हों लेकिन यह वैदर्भी समस्त रीतियों सर्वोत्कृष्ट, श्रवण सुखद एवं अर्थाभिव्यक्ति मे समर्थ है।

श्रीराधापञ्चशती काव्य दिव्य श्रृङ्गार के दोनों पक्षों के वर्णन का प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं तथा भक्ति रस के अल्पसमांस प्रयुक्त प्रसङ्गानुकूल वर्णन में वैदर्भी रीति द्रष्टव्य हैं यथा

राधा विलोकयतुिमेव क्वचिन्मुरारि
बम्भ्रम्येत प्रतिदिनं निलय वृषस्य।
आली प्रबोधयति तां कुरू माधव तं
रागानुविद्व ह्रदयं तव दृष्टिपात्रम्।।[1]

यहॉ राधा श्रीकृष्ण के दिव्यश्रृङ्गार के सम्भोग वर्णन के प्रसग में माधुर्यगुण वाहक वैदर्भीरीति की छटा दर्शनीय है। इसी प्रकार पूरे राधापञ्चशती में दिव्यश्रृङ्गार के माधुर्यगुण वर्णन प्रसङ्ग में वैदर्भी रीति का स्वाभविक प्रयोग हुआ है।[2]

श्रीराधापञ्चशती काव्य में भक्ति रस के मुख्य एवं गौण कुल १२ भेदों का सम्यक् विवेचन के प्रसङ्ग के अल्पसमास प्रयुक्त श्लोको में वैदर्भी रीति का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।[3]

यथा– जडा अपि हरिप्रिये! मुखरयन्ति वंशीध्वनिं
न किञ्चिदपि कौतुकं मुरलिकाप्रिये श्रीहरौ
द्रुतं प्रसूतिमागता नवनवाकवेः कल्पना
पतेद् यदि कृपालस्तव, वयं प्रमाणं ध्रुवम्।।[4]

---

1. श्रीराधापञ्यशती; श्लोक–१२३.
2. वही: श्लोक–२२, २६, ६७, ७०, ७१, ८४, ११५, १२१, २८१।।
3. वही: श्लोक–३४०, ४४६, ६६, १५४, १०७, ३५०, ४२४, ४५७, १२५, १६५, ४४१।।
4. वही: श्लोक– १३४.

जगत् की क्षणभङ्गुरता वर्णित प्रसङ्गो मे प्रसाद गुण का वाहक वैदर्भी रीति दृष्टिगोचर होती है।[1] यथा–

मलमूत्रयुत वपुराकलित
कलित सकल क्षणभङ्गयुतम्
प्रियसङ्गत्रिरत्र मुधा कलिता
वृषभानुसुता हृदये कलिता।।[2]

पाञ्चाली रीति–

शब्द और अर्थ का पारस्परिक सौन्दर्ययुक्त सन्तुलित गुम्फन पाञ्चाली रीति कहा जाता है।[3] इस रीति में प्राय. उन वर्णो का प्रयोग किया जाता है जो माधुर्य और ओज गुणों के अभिव्यञ्जक विशिष्ट वर्णो से युक्त होते है। इसमें मध्यम समास रचना होती है। मम्मटाचार्य ने इसे कोमला वृत्ति नाम दिया है।

श्रीराधापञ्चशती काव्य में शब्दार्थ की प्रधानता से युक्त शार्दूलाविक्रीड़ित एवं स्रग्धरा छन्द वाले माध्यम समास युक्त श्लोक वर्णन में पाञ्चाली रीति देखी जा सकती हैं।[4] जबकि प्रस्तुत काव्य में इसका क्षेत्र सीमित है।

यथा– राधापञ्चशतीप्रणीतिपटुताप्रीता मुदा राधिका
वंशेऽस्मद्धनधान्यवैभवयुतां तन्तन्तु लक्ष्मी शुभाम्
किञ्चान्दोलित सर्वशास्तसुभगं पाण्ड़ित्यरूपं धनम्
भक्तिं चाव्यभिचारिणी शुभकरीं सम्पत्सुधावर्षिणीम्।।[5]

गौड़ी रीति–

ओज गुण के व्यञ्जक वर्गो से युक्त रचना गौडी रीति कही जाती है। यह रौद्र, वीर, भयानक, आदि कठोर रसों का उपकारक है। मम्मटाचार्य ने इसे परूषावृत्ति कहा है।

श्रीराधापञ्चशती में वीर, रौद्र, भयानक रसों की स्वतन्त्र सत्ता न होने से ओजगुण प्रधान गौडी रीति का स्थान नहीं के बराबर है। इस प्रकार प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती काव्य को वैदर्भी रीति प्रधान काव्य कहना अतिशयोक्ति न होगी।

---

1. वही: श्लोक–४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४।।
2. वही. श्लोक– ४४३.
3. शब्दार्थयो: समोगुम्फो पाञ्चाली रीतिरिष्यते।।–आचार्य वामन।
4. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक– ५०५, ५०७, ५१०, ५११
5. वही: श्लोक– ५५१.

भाषा शैली

श्रीराधापञ्चशती काव्य प्रो० रसिक विहारी जोशी के भक्त हृदय का सरस निष्यन्द है। यह मुक्तक शैली मे गीति काव्य का मुकुटमणि हैं भक्ति रस के विवेचन में बीसवी शती का नवीन ग्रन्थ अपनी अलङ्कृत छन्दानुगामिनी एवं रसौचित्य की भाषा शैली के लिए स्मरणीय है। इसमें भक्ति भावों की गरिमा, विचारो की महिमा, अनुभूतियों की सवेदन शीलता, भाषा की मधुरिमा, दिव्यश्रृङ्गार की सात्विकता एवं सघनता, अलङ्कारों की इन्द्रधनुषी छटा विविध छन्दो की मन्थर गति तथा नवपरिधाना नववधू का सा लावण्य प्रस्तुत करती है। सहृदयहृदय संवेद्यता के कारण राधापञ्चशती निरपवाद रूप से लोकप्रियता की योग्यता रखती है। समीक्ष्य काव्य की शैली माधुर्य एवं प्रसाद गुणो से युक्त वैदर्भी है।[1]

यथा— मलमूत्रयुतं वपुराकलितं

कलित सकलं क्षणभङ्गयुतम्

प्रियसङ्गविरत्र मुधा कलिता

वृषभानुसुताहृदये— कलिता।।[2]

इसमें ललित पदविन्यास, कोमल भाव, सरस पदावली एवं प्रसाद गुण का समन्वय है।

प्रो० जोशी के काव्य श्रीराधापञ्चशती की भाषा में प्रसाद माधुर्य के साथ संगीतात्मकता द्रष्टव्य है। यथा—

परिहाय विनाशकरं सकल

सुतदार सुहृत्परिवारगणम्

वृषभानुसुतापदपद्‌भरित

कलयाम्यधुना ननु धामगतिम्।।

---

1. श्रीराधापञ्चशती; श्लोक—२२, ७१, १६५, ४३१, ३४०, ३६५, १२३।।
2. वही: श्लोक— ४४३.

यहाँ अनुप्रास की छटा युक्त माधुर्य प्रधान सगीतात्मकता सहृदय पाठक को मोह लेती है।

भावाभिव्यक्ति हेतु कवि मे भावपक्ष के साथ–साथ कलापक्ष का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। प्रो० जोशी जी अभिधा वृत्ति के कवि होने से इनकी वर्णन शैली मे और भी स्वाभाविकता आ गयी है।

वसन्ततिलका छन्द मे वर्णित राधा श्रीकृष्ण के अभेद होने से देवताओ का राधा के चरणो मे शरणागति भावपक्ष की प्रखरता को सूचित करती है। यथा–

राधामुकुन्दहृदय वशमानयन्ती

वृन्दावने विहरति स्वयमच्युतेन।

गन्धर्व देवमुनिभिर्नतपद पद्मा।

स्तब्धं करोति सुराजगुरू प्रशस्तम्।।[1]

श्रीराधापञ्चशती की भाषा भावनुगामिनी छन्दानुकूल, रसाभिव्यक्ति शालिनी है यथा–

राधां विलोकयितुमेव क्वचिन् मुरारि

र्बम्भ्रम्यते प्रतिदिनं निलयं वृषस्य।

आली प्रबोधयति तां कुरू माधवं त

रागानुविद्ध हृदयं तव दृष्टिपात्रम्।।[2]

यहाँ मधुर भक्ति रस की अभिव्यक्ति में समर्थ राधा के प्रति कृष्णसक्त भावों को बसन्ततिलका छन्द में संगीतात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य में राधा की भक्ति की सर्वोच्चता एवं उसका माहात्त्य दिव्य श्रृङ्गार एवं भक्तिरस के माध्यम से शार्दूलाविक्रीड़ित, बसन्ततिलका, मालिनी आदि हृदयावर्जक छन्दों के प्रयोग से उदात्त, दृष्टान्त आदि अलङ्कारों से, प्रसाद–माधुर्य गुणों द्वारा वैदर्भी शैली में प्रदर्शित किया गया हैं जिसकी महत्ता को शब्दों द्वारा वर्णन करना कठिन है। इस प्रकार इसकी भाषा शैली आधुनिक काव्य की सर्वोच्चता की निकषा पर खरी उतरेगी, ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगा।

---

1. श्रीराधापञ्चशती, श्लोक ३३८
2. वही श्लोक– १२३

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण राधा–कृष्ण है। वस्तुत राधा के बिना कृष्ण आधे ही है। कृष्ण शब्द का अर्थ हैं–

कृषिर्भूवाचक. शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचक·।
तयौरैक्य परं–ब्रह्म कृष्ण इत्याभिधीयते।।

–ब्रह्मवैवर्त्त पुराण–ब्रह्मखण्ड–२८.

अर्थात् कृष् का अर्थ है भू और 'ण' का अर्थ है– निर्वृत्ति। भू का अर्थ है सत्ता और निर्वृत्ति का अर्थ हैं आनन्द। इस प्रकार अनन्त सत्ता और अनन्त आनन्द दोनों मिलकर श्रीकृष्ण हैं। राधा नाम की व्युत्पत्ति सिद्वयर्थक राध् धातु से मानी गयी है–राधनोति सिद्वध्यति सकलान् कामान तस्माद् राधेति कीर्तिता। जैसे अनन्त सत्ता एवं अनन्त आनन्द श्रीकृष्ण का बोधक हैं, उसी प्रकार सकल कामनाओ की सिद्विधात्री राधा है। राधा शब्द की व्युत्पत्ति के द्वारा राधा को कृष्ण की परमान्तरगभूता ह्लादिनी शक्ति बताया गया है– कृष्णेन आराध्यते इति राधा, 'कृष्णं समाराधयति सदा' इति राधिका। अर्थात् कृष्ण के द्वारा जो आराधित है वही राधा तथा कृष्ण की सदा आराधना करने वाली राधिका है।

भगवान् श्रीकृष्ण परात्पर परब्रह्म हैं। वे ही अन्नतकोटि ब्रह्मणड़नायक हैं। कोटि–कोटि कन्दर्पो के समान उनका लावण्य है। वे ही सच्चिदानन्द स्वरूप हैं वे ही अनन्त सजातीय विजातीय एवं स्वगतभेद से रहित हैं। श्रीकृष्ण से ही समस्त भूत उत्पन्न, जीवित, एवं लीन होते है। श्रीमद भागवत पुराण में श्रीकृष्ण को स्वयं ही भगवान्, सोलह कलाओं से सम्पन्न साक्षात् परंब्रह्म, अन्यान्य अवतार अंशावतार बताया गया है। श्रीकृष्ण को भक्त भगवान् कह कर पुकारते हैं–

"वदन्ति तत् तत्त्वविदों यत्तज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।"

वैष्णव शास्त्र मे ऐसे भगवान् की तीन शक्तियों मानी गयी हैं

सन्धिनी संवित् एवं ह्लादिनी।

राधिका भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। भगवान् अचिन्त्य अनन्त शक्तियो से सम्पन्न हैं। परन्तु इनमे तीन ही शक्तियो मुख्य मानी गयी हैं।

१. अन्तरग शक्ति–चित्त शक्ति अथवा स्वरूपा शक्ति।

२. तटस्था शक्ति– अर्थात् जीव शक्ति।

३. वहिरंगा शक्ति– अर्थात् मायाशक्ति।

राधा कृष्ण काव्य के साथ गीति काव्य का एक प्रकार से अविच्छेद सम्बन्ध है। गीति काव्य का कवि विषय के चुनाव के लिए अपने से बाहर नहीं जाता है, वह अपने अन्तस्थल में प्रवेश करके अपनी अनुभूतियो का ही कोमल चित्रण प्रस्तुत करता है। सस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य नामक किसी काव्य प्रकार की स्वीकृति नहीं है परन्तु उसके मूल तत्व की स्थापना खण्ड़ काव्य या मुक्तक काव्य से ही होती है। सन्दर्भ से मुक्त एवं स्वतन्त्र होने के कारण मुक्तक नामकरण किया गया होगा। यह विषय की तथा रस की दृष्टि से स्वत पूर्ण होता है। इस गीतिकाव्यो मे पद्यो की गेयता, अर्थो का मधुर विन्यास, अन्तरस्थल अंग्रेजी के लिरिक पोइट्री की भॉति अनेकशः उपलब्ध होते है।

गीतिकाव्य कृष्णकाव्य की यथार्थ अभिव्यक्ति के निमित्त सर्वाधिक सुन्दर तथा सर्वापेक्षया उपयुक्त काव्य रूप है। दोनों के बीच एक अविभाज्य सम्बन्ध विषय की तथा इतिहास की दृष्टि से भी दृष्टिगोचर होता है। प्रबन्ध काव्य के रूप में उसका चित्रण विशेष सफल नहीं होता है। इस विषय में हिन्दी के अनेक कवियों की विफलता इसका साक्षी है कि गीतिकाव्य का कलेवर लीलापुरूपोत्तम के लीला गुम्फन के निमित्त सर्वोत्तम साधन है। यही कारण है कि कृष्णचरित के कीर्तन के अवसर पर सस्कृत कवियों ने स्थान–स्थान पर गीतों का स्थान दिया है। श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में श्रीमद्भावगत पुराण अन्य पुराणों की अपेक्षा नितान्त समर्थ तथा सरस माना जाता है।

राधा कृष्ण काव्य परम्परा के स्वरूप निर्धारण क्रम को ध्यान में रख कर बीसवीं शदी में प्रो० रसिक विहारी जोशी ने श्री राधापञ्चशती काव्य का प्रणयन किया जो

गीतिकाव्य की समस्त विशेषताओ से परिपूर्ण है। पॉच सौ ग्यारह श्लोको मे प्रत्येक एक से बढकर है। यथा–

सहृदये सदये रमते रमा

सकलदोषयुते पतितेऽपि सा

तवकृपापथमापतितों जन·

स लभते भुविं क न मनोरथम्।।– श्रीराधापञ्चशती· श्लोक–२२६.

समीक्ष्य काव्य के प्रणेता प्रो० रसिक विहारी जोशी जन्मजात काव्य प्रतिभा के धनी है। इनमे भावयित्री एवं कारयित्री दोनों प्रतिभाओ का सामञ्जस्य है। अध्ययन काल से ही संस्कृत श्लोक रचना, समस्यापूर्ति एवं संस्कृत वादविवादों में प्रथम स्थान का पदक प्राप्त करते रहे। धाराप्रवाह संस्कृत सम्भाषण क्षमता के कारण महामहोपाध्याय पं० नारायण शास्त्री खिस्ते द्वारा अप्रतिहत संस्कृत भाषी एवं अभिनव बाणभट्ट की उपाधि प्रदान की गयी। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, संस्कृत भाषा के अथक सेवी इन्होंने अपनी विद्वता, यशार्जन में कभी भी आत्मतोष का अनुभव नहीं किया अपितु संस्कृत भारती की सेवा में समग्रजीवन देश विदेश मे समर्पित किया है। **सम्प्रति "एल कोलोहियों द मैक्सिकों" में संस्कृत पालि, तथा भारतीय दर्शन के भारतीय विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में सेवारत हैं।**

रामप्रताशास्त्री ग्रन्थमाला के शुभारम्भकर्त्ता आपकी अनेकशः मौलिक कृतियाँ हैं। इनमें अनेक पर आप पुरस्कृत एव सम्मानित हुए है तथा अनेक शोध विषय वन चुके हैं। यथा–करूणाकटाक्षलहरी, मोहभंगम, श्रीराधापञ्चशती। करूणाकटक्ष– लहरी पर–१९७९ में उ० प्र० संस्कृत अकादमी द्वारा ३००० रू० का, म० प्र० साहित्य अकादमी द्वारा २००० रू० का अखिल भारतीय कालिदास सम्मान, मोहभंगम पर उ० प्र० साहित्य अकादमी द्वारा १९८१ में ५००० रू० का कालिदास पुरस्कार तथा **श्रीराधापञ्चशती पर मार्च २००० में के० के० बिड़ला फाउन्डेशन द्वारा ७५००० रू० का आठवां वाचस्पति पुरस्कार एवं प्रशस्तिपत्र प्राप्त हुआ है।** इस प्रकार सस्कृत जगत् में आपके अतिरिक्त आज कोई विद्वान् ही ऐसा होगा जो संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रेन्च, स्पेनिश, हिन्दी आदि भाषाओ में धाराप्रवाह बोलने और

लिखने का समानाधिकार रखता है। ऐसे विश्व विश्रुत कवि का परिचय समीक्ष्य काव्य मे भी समीक्ष्य था।

शोध प्रबन्ध मे श्रीराधापञ्चशती की राधा स्वरूप की समीक्षा भारतीय वाङ्मय मे गोपीभाव एवं श्री राधा के स्वरूप के प्रस्तुतीकरण के अनन्तर किया गया है। प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रेम की देवी राधा के अतिरिक्त एक और नाम—गोपी का उल्लेख मिलता है। जैसे राधा कृष्ण की प्रियतमा थी उसी प्रकार गोपियॉ भी कृष्ण को प्रिय थी। अन्तर स्पष्ट है कि राधा केवल प्रियतमा जबकि गोपी प्रेमिका के साथ—साथ भक्त भी थी। गोपी भाव रस साधना की उत्कृष्ट कोटि है; आनन्द युक्त भाव है। इस भाव में पहुंच कर व्यक्ति अपने आपकों भूल जाता है। श्रीराधापञ्चशती में राधा—कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना, उपस्थिति वर्णित हैं। राधा कृष्ण का परस्पर वियोग स्वीकार्य नहीं हैं।—

कृष्णस्यास्ति गतौमतिः परदिने श्रुत्वैव सख्या क्वचित्।

स्रांस्तं नेत्रयुगं बहत्यविरत श्रीराधिका सर्वदा।।

— श्रीराधापञ्चशती श्लोक—४६.

भारतीय वाङ्मय में राधा का स्वरूप ऐतिहासिक, धार्मिक एवं साहित्यिक इन तीनों दृष्टियों से अध्ययन का विषय बनाया गया। ऐतिहासिक दृष्टि के अन्तर्गत तीन स्तर स्वीकार्य हैं।— **प्रथम स्तर** पर नाम रहित राधा प्रेमपात्री, अपूर्व सुन्दरी गोपी सखी रूप का उल्लेख वैदिक साहित्य एवं पुराणों में वर्णित विषय द्वितीय एवं तृतीय शती ई० पू० का प्रतिनिधित्व करता है। **द्वितीय स्तर** पर राधा का उल्लेख प्रथम शती ई० पू० हाल की गाथा सप्तशती से प्रारम्भ होकर जयदेव की गीतगोविन्द की राधा १३वीं—१४वीं शदी तक का प्रतिनिधित्व करता है। तृतीय स्तर की राधा तो १६वी—१७वीं शती से २०वीं शती की है। चैतन्य प्रभु, रूपगोस्वामी, जीवोगोस्वामी एव प्रो० रसिक विहारी जोशी आदि ने भगवान् श्रीकृष्ण की महाभावरूपिणी, आह्लादिनी शक्ति के रूप में राधा को चित्रित किया है।

धार्मिक दृष्टि से वर्णित तथा का स्वरूप समस्त धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बद्ध ग्रन्थों, से अध्ययन किया गया है। ज्योतिष तत्त्व, योग तत्व शिवरूप एवं शक्ति तत्व में राधा

का यत्र तत्र प्रस्फुटन दिखायी पडता है। राधा का प्रथम धार्मिक आविर्भाव निम्बार्क सम्प्रदाय मे वेदान्तकामधेनु–दशश्लोकी, आदुम्बराचार्य कृत औदुम्बर सहिता, श्रीभट्ट देव कृत युगल शतक, हरव्यिासदेवाचार्य कृत महावाणी में युगल मूर्ति की उपासना रूप मे हुआ है। बल्लभसम्प्रदाय में राधा कृष्ण की आत्मा और आह्लादिनी शक्ति से पूर्ण हैं। राधा बल्लभ सम्प्रदाय तो प्रेम तत्व का उपासक रसमार्गी सम्प्रदाय है इसमें स्वकीया परकीया दोनों भाव अपूर्ण है। इसमे राधा प्रेम विरह की प्रधानता है अर्थात् मिलन में भी विरह की सत्ता का भान है। हितहरिवंश जी रचित हित–चौरासी राधा प्रेम विरह को द्योतित करता है।

चैतन्यमत मे राधा तो भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। इसका प्रतिनिधित्व कृष्णदास कविराज का चैतन्यचरितामृत एवं प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत श्रीराधापञ्चशती प्राप्त होता है। इसमें राधा स्वकीया रूप में वर्णित है। इसीप्रकार सहजिया सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय, एवं ललित सम्प्रदाय में राधा प्रेमस्वरूपिणी एवं आह्लादिनी शक्ति के रूप में वर्णित है।

साहित्यिक राधा वर्णन, सन्दर्भ में सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य में जयदेव की गीतगोविन्द की राधा उल्लेखनीय है। गीतगोविन्द की राधा पार्थिव प्रेम की प्रतिमा न होकर दिव्यशक्ति की सञ्चारिणी कल्पलता है। दिव्य प्रेमिका के रूप में चित्रित है। जयदेव की राधा में नायिका के आठों भेदों का व्यक्त एवं अवयक्त रूप में वर्णन है। मैथिली काव्य में विद्यापति की राधा को प्रेमगाथा भी सौन्दर्य से ही आरम्भ होती है। राधा कृष्ण के प्रेम से द्रवित हो जाती हैं। सूरदास के काव्य में राधा का जो रूप हम देखते हैं वह एक साहसी एवं निःसंकोची महिला का चित्र है। वह अपने प्रेम को गुप्त नहीं रखती है। सूर की राधा विरह के दिनों में और अधिक गम्भीर हो जाती है। राधा विरह में स्वाभाविकता है कृत्रिमता की गन्ध भी नहीं हैं। सूरदास की राधा एक समग्रनारी है उसकी तुलना अन्यत दुर्लभ है। इस प्रकार सूर की राधा लौकिकता तथा अलौकिकता की, प्रेम तथा संन्यास की, स्नेह के वैमल्य की, तथा प्रीति के उच्छवास की एक निर्मल लीला स्थली है। इसमें सन्देह की गुन्जाइस नहीं है। विहारी एवं घनानन्द की राधा तो श्रृङ्गारिक रूप में वर्णित है। अष्टछापी कवियों में सूरदास के अतिरिक्त नन्ददास की राधा आध्यात्मिक है, परमानन्ददास की राधा

निर्मल प्रेम माधुरी से युक्त वैभव सम्पन्न है। इसी प्रकार बंगलासाहित्य, पूर्वाञ्चलीय उत्कल एवं असमिया साहित्य, पश्चिमाञ्चलीय मराठी एव गुजराती साहित्य, दक्षिणाञ्चलीय--तमिल, कन्नड, तेलगू एव मलयालम साहित्य में राधा का स्वरूप उल्लेखनीय है।

श्रीराधापञ्चशती मुक्तक काव्य कोटि के अन्तर्गत पञ्चशती संज्ञक काव्य परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। शतक काव्य परम्परा में शतक, त्रिशतक, पञ्चशती एव सप्तशती संज्ञक अनेकशः काव्य प्राप्त हुए है। पञ्चशती सञ्ज्ञक के प्रथम कवि मूक उल्लेखनीय है। इन्होंने काञ्चीपुरम् अधिष्ठित कामाक्षी देवी की स्तुति में पांच सौं श्लोकों का पांच भागों मे चौथी शती ई० के उत्तरार्द्ध मे प्रणयन किया है। इसी परम्परा के वाहक प्रो० रसिक विहारी जोशी की श्रीराधापञ्चशती का मुक्तक काव्य के अन्तर्गत शतक काव्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्वापरप्रसंग रहित परस्पर निरपेक्ष पद्य समूह वाले मुक्तक श्रेणी में ही शतक काव्य परम्परा का अधिकाधिक औचित्य सिद्व होता है। ऐसे **शतक काव्य को स्तोत्र शतक साहित्य, काव्य शास्त्रीय शतक साहित्य एवं श्रृङ्गारी शतक साहित्य के अन्तर्गत रखना अभीष्ट हैं।**

भक्ति भाव है या रस? इस प्रश्न के समाधानार्थ भक्ति का उद्गम स्वरूप स्वयं विकास तथा मूल रसत्व अपेक्षित है। भक्ति के बीज वेदों प्रमुखत ऋग्वेद मे, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यक ग्रन्थों उपनिषदों, प्रमुखतः श्वेताश्वतरोपनिषद, छान्दोग्योपनिषद, पुराणो में--श्रीमदभागवत, देवीभागवत, शिवपुराण आदि में मिलते है। भक्ति का व्यापक उल्लेख नवधा भक्ति पौराणिक है जिसका विस्तार श्रीमद्भगवतगीता, रामानुज का श्रीभष्य्, पाञ्चरात्र, शङ्काराचार्य कृत भाष्य, आदि मे मिलता है। शब्द शास्त्र की दृष्टि से भज् सेवायाम् धातु **से भक्तिन् प्रत्यय करके भक्ति बनता है। भजनं रसनं भक्तिः, भज्यतेऽनया भक्तिः, भजन्तयनयेति भक्तिः** इत्यादि व्युत्पत्ति प्राप्त होती है। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन सर्वप्रथम शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, नारदीय भक्तिसूत्र एवं शाण्डिल्य संहिता से प्राप्त होता है। प्राचीन काव्य शास्त्रियों मे अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, मम्मट आचार्य विश्वनाथ आदि ने देवादिविषयक रति प्रधान भक्ति को भाव रूप ही माना है। जबकि परवर्ती आचार्य बोपदेव, रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी, चैतन्यप्रभु, मधुसूदन सरस्वती आदि ने देवादिषियक रति को

भक्ति रस ही नही बल्कि रसराज की सञ्ज्ञा से विभूषित करके भक्ति रस के १२ भेदो का उल्लेख किया है। इस प्रकार भक्ति केवल भाव ही नहीं बल्कि रस है। इस तथ्य का प्रतिपादन हरिभक्तिरसामृत सिन्धु, एवं श्रीराधापञ्चशती से होता है।

काव्यगत सौन्दर्य की दृष्टि से भी राधापञ्चशती का मूल्याकन अभीष्ट था। समीक्ष्या काव्य मे विविध अलङ्कारो से अलङ्कृत भाषा का प्रयोग यथा–उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा,, उदात्त, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति आदि,। गेय छन्दों की बहुलता मे समवृत्त, के तेरह छन्दो का–शार्दूलविक्रीडित, बसन्ततिलका, द्रुताविलामबित, शिखरिणी, पृथ्वी, भुजङ्गप्रयात, स्रग्धरा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, तोटक, शालिनी, हरिणी का श्लोको के अवरोही क्रम में प्रयोग, दिव्य श्रृङ्गार एव भक्ति रस के प्रयोग से सरल भाषा, रस के अगी धर्म मार्धुय एवं प्रसाद गुणों से गुम्फित, वैदर्भी रीति का पोषक, भाषा में आकर्षक संगीतात्मकता, भावात्मक अनुनाद एवं शास्त्रीय शैली प्रतिम्बिम्बित है। ऐसी श्रीराधापञ्चशती सस्कृत साहित्य के भक्ति काव्य धारा मे स्तुत्य उत्कृष्ट स्थान रखती है।

निष्कर्षतः कवि की मौलिक कृतियों में श्रीराधापञ्चशती का महनीय स्थान है। इसके अतिरिक्त अन्य तीन गीतकाव्यो एव मोहभङ्गम नामक महाकव्य से कवि का महाकवित्व प्रदर्शित होता है। अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में समीक्ष्या काव्य की विशिष्टता प्रत्यक्षत प्रमाणित होती है। इसमें भावों की गहनता, पदशय्या, कल्पना की कमनीयता, मधुरनादसौन्दर्य, तरलता, गीताात्मवता और काव्यसौन्दर्य सभीकुछ अन्तर्भूत है। इसी विशिष्टा के कारण समीक्ष्यकाव्य राष्ट्रीय वाचस्पति पुरस्कार से मार्च २००० मे पुरस्कृत किया गया है। निःसन्देह यह एक परिनिष्ठित काव्य है और इसके रचयिता प्रो० जोशी एक समर्थ महाकवि हैं।

परिशिष्ट
अधीत ग्रन्थ–सूची

अथर्ववेद — विश्वेश्वरानन्द भारत–भारती गन्थमाला–१९६०.

अग्निपुराण — श्रीवेदव्यास–मनसुखरायमोर, कलकत्ता–१९५४

अमरकोष — अमरसिह–चो० सं० सी आफिस, वाराणसी

औदुम्बर सहिता — औदुम्बराचार्य

अलंकार–कौस्तुंभम् — कविकर्णपूर

अष्टाध्यायी — पाणिनी

अमरूकशतकम् — अमरूक–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

अभिनवभारती — अभिनवगुप्त

अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास — साहित्य संस्थान, ४–मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद–१९८०

ऋतुसंहार– कालिदास — साहित्य सस्थान, ४–मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद–१९८०

ईशावास्योपनिषद् — गीताप्रेस, गोरखपुर

उद्वव–सन्देश — रूपगोस्वामी, कुसुम सरोवर प्रकाशन, मथुरा–सवत्–२०१४.

उज्ज्वलनीलमणि — रूपगोस्वामी–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई–१९३२.

उत्तररामचरितम्– भवभूति — श्री शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद–१९६५

ऋग्वेद — गायत्री प्रकाशन, मथुरा–१९६०.

कठोपनिषद — गीताप्रेस, गोरखपुर

कबीरग्रन्थावली — नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

कादम्बरी — बाण मोतीलाल बनारसीदास–१९२४.

काव्यालंकार — रूद्रट–चो० वि० भ० वाराणसी–१९६६.

काव्यप्रदीप — पाण्डुरङ्ग बाबाजी, नि० सा० प्रेस–१९३३.

काव्यप्रकाश — मम्मट–ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी–१९६०

काव्यानुशासन — हेमचन्द्र–काव्यमाला निर्णयसागर प्रेस–१९३४

काव्यमीमांसा — राजशेखर–चौ० सं० सी०–वाराणसी–१९२५.

काव्यालकार — भामह—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना—१९६२
काव्यादर्श — दण्डी—चो० वि० भ० वाराणसी—१९५८
कुमारसम्भवम् — कालिदास—मो० व०—१९६७.
कैवल्पदीपिका — हेमाद्रि—भागवत की टीका
गीतगोविन्दम् — जयदेव—किताब महल प्रेस—१९५५
गोपालम्पू — जीवगोस्वामी—श्रीधाम्, वृन्दावन, मथुरा, उ० प्र०—१९७६.
गौडीय वैष्णव साहित्यम् — हरिदास
गोविन्दभाष्यम् — बलदेव विद्याभूषण
चैतन्य चरितामृतम् — श्रीकृष्णदास—हरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन
चैतन्य चरितावली — प्रभुदत्त ब्रह्मचारी—गीताप्रेस, गोरखपुर
चैतन्यभागवत् — वृन्दावन ठाकुर—मथुरा—२०१५—संवत्
छन्दोग्योपनिषद् — गीताप्रेस, गोरखपुर
दशरूपक — धनञ्जय—चो० सं० सी० आफिस, वाराणसी—१९६७.
दशश्लोकी — निम्वार्काचार्य
दानकेलिकौमुदी — रूपगोस्वामी
दुर्गासप्तशती — भागर्व बुक डिपो, वाराणसी
देवीभागवत्पुराणम् — मनसुखरायमौर, कलकत्ता
ध्वन्यालोक — आनन्दवर्द्धन—चो० सं० सी० वा०, वाराणसी
ध्वन्यालोक लोचन — अभिनवगुप्त
न्यायविद्वाञ्जनम् — वेदान्तदेशिक कृत—सं० सं० वि० वि०, वाराणसी
नाटकचन्द्रिका — रूपगोस्वामी—चो० सं० सी० वा०—१९६४.
नारदभक्ति सूत्र — गीताप्रेस, गोरखपुर
नाट्यशास्त्र — आचार्यभरत—चौ० सं० सी०, वाराणसी—१९७८.
नारदपाञ्चरात्रम् —
निरुक्तम् — यास्क ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी—१९६६.
पद्मपुराण — श्री वेदव्यास—मनसुखराय मोर, कलकत्ता—१९५७.
पदावली — रूपगोस्वामी

पंचतन्त्र	—	चौ० वि० भ०, वाराणसी—२०१५ सवत्
प्रेमभक्तिचन्द्रिका	—	श्रीधाम, वृन्दावन, मथुरा, उ० प्र०—१६७६
नीतिशतक, श्रृङ्गार शतक, वैराग्य शतक	—	भर्तृहरि, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली
प्रसन्नराघवम्	—	जयदेव
प्रीतिसन्दर्भ	—	जीवगोस्वामी
प्रमेयरत्नावली	—	बलदेव विद्याभूषण
प्रेमरसायनम्	—	विश्वनाथ पण्डित
पुराण—विमर्श	—	चौ० सं० सी०, वाराणसी—१६६५.
बृहद्भागवतामृतम्	—	
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य	—	चौ० सं० सी०, वाराणसी—१६६५
ब्रह्मसंहिता	—	
ब्रह्मवैवर्तपुराणम्	—	चौ० सं० सी०, वाराणसी—१६६५
ब्रह्मपुराणम्	—	चौ० सं० सी०, वाराणसी—१६६५.
भक्तिरसामृतसिन्धु विन्दु	—	श्रीधाम्, वृन्दावन, मथुरा—१६७६.
भक्तिचन्द्रिका	—	नारायणीतीर्थ—सरस्वती भवनपुस्तक—१६३४.
भगन्नाममाहात्म्यसंग्रह	—	गवर्नमेन्ट संस्कृत लाइब्रेरी, वाराणसी
भक्त्यधिकरणमाला	—	नारायणतीर्थ—सरस्वती भवन पुस्तक
भक्तिसूत्रवैजयन्ती	—	शाण्डिल्यऋषि—मल्लिकचन्द्र एण्ड कम्पनी, बनारस—१८८३.
भक्ति सन्दर्भ	—	जीवगोस्वामी
भक्तिरसार्णव	—	करपात्रस्वामी — भक्तिसुधा साहित्यपरिषद कलकत्ता— २०२६.
भक्तिसुधा	—	करपात्रस्वामी — भक्तिसुधा साहित्यपरिषद कलकत्ता— २०२६.
भक्तिरसविमर्श	—	डा० कपिलदेव ब्रह्मचारी—आचार्य महन्त श्रीविधानन्ददास साहब, आचार्य गद्दी, फतुहा, पटना, बिहार।
भगवतसन्दर्भ	—	जीवगोस्वामी
भक्तिमीमांससूत्रम्	—	

भगवत्भक्तिरसायनम्	–	आचार्य मधुसूदन सरस्वती–पर्वतीय मुद्रणालय, पचगंगा, वाराणसी–२०३३
भक्तिप्रकाश	–	वीरमित्रोदय (याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका)
भक्तिरत्नावली	–	श्रीनारायण गोस्वामी
भक्तिपुष्पाञ्जलि	–	हरिशरण गोस्वामी
भक्तिमार्तण्ड	–	
भक्ति का विकास	–	डा० मुंशीराम शर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
भक्तितरंगिणी	–	डा० मुशीराम शर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा	–	पं० बलदेव उपाध्यायः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना–१९६३. प्रथम प्रकाशन।
भागवत् सम्प्रदाय	–	पं० बलदेव उपाध्याय, नागरी प्राचारिणी सभा, काशी
भागवतमुक्ताफल	–	बोपदेव
महाभारत	–	व्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर–संवत्–२०१०.
मधुररस स्वरूप और विकास	–	
मत्स्यपुराणम्	–	मनसुखराय मौर, कलकत्ता–१९५४
महावीरचरितम्	–	भवभूति
मानसोलास	–	श्री सुरेश्वराचार्य
मेघदूतम्	–	कालिदास–देववाणी मुद्रणालय, दारागज, इलाहाबाद
मुण्डकोपनिषद	–	गीताप्रेस, गोरखपुर– संवत्–१९९७.
यजुर्वेद	–	आर्य साहित्य मण्डल लि०–अजमेर–सवत्–२०२१
याज्ञवल्क्यस्मृति	–	श्रीभीमसेन शर्मा – इटावा–१९५०.
रसमञ्जरी	–	भानुदत्त–भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौड़ी गली, वाराणसी–१९८१.
रसतरंगिणी	–	भानुदत्त–मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लि०, दिल्ली–१९७४.
रससिद्वान्त	–	डा० नगेन्द्र–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली–१९६४.
रघुवंशम्	–	कालिदास
रसार्णव–सुधाकर	–	सिङ्गभूपाल

रस सिद्वान्त और स्वरूप विश्लेषण – आनन्दप्रकाश दीक्षित

रस मीमांसा – रामचन्द्र शुक्ल

रामचरितमानस – गोस्वामी तुलसीदास–गीताप्रेस, गोरखपुर।

वक्रोक्तिजोवितम् – कुन्तक

विदग्ध माधव – रूपगोस्वामी–निर्णय सागर प्रेस–१६३७.

विष्णुपुराण – श्रीरामशर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान, बरेली

बैष्णवधर्म – आचार्य परशुराम चतुर्वेदी–चौखम्भा ओरियण्टालिया वा०–१६७७.

वैष्णवसिद्वान्तरत्नसंग्रह – श्रीधाम, वृन्दावन, मथुरा, उ० प्र०

वाल्मीकीय रामायण – गीतप्रेस गोरखपुर सं०–२११७.

वाचस्पत्यम् – चौ० सं० सी० वाराणसी–१६६२.

शण्डिल्यभक्तिसूत्र – महर्षिशाण्डिल्य, गीताप्रेस, गोरखपुर–सं० २००६.

शाण्डिल्य संहिता – सरस्वतीभवन पुस्तक–१६६०

शब्दकल्पद्रुम कोष – आचार्य केशव

श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् – प्रबोधानन्द सरस्वती–संवत् २०१८.

श्रीभागवत् संदर्भ – श्रीधाम वृन्दावन, मथुरा

श्रीकृष्णस्तवराज –

श्रीमद्भगवत्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीमद्भागवत् पुराण – वेदव्यास–गीताप्रेस, गोरखपुर

सर्वदर्शनसंग्रह – माधवाचार्य–अनुवाद उदयनारायण सिंह

सर्वदर्शनसिद्वान्तसंग्रह – शंकराचार्य, अनुवाद–गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्रयाग कला प्रेस, १६४०.

सरस्वती कण्ठाभरण – चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी

सूर्यशतक – मयूरभट्ट–सरस्वती प्रकाश यन्त्रस्वय, बनारस

स्तवमाला – श्रीरूपगोस्वामी–नि० सा० प्रेस–१६०३.

स्तुतिकुसुमांजलि – जगधर त्रिपाठी–प्रकाशित १६५४.

स्तोत्रसंग्रह – केशवराम शर्मा

स्तोत्ररत्नावली – गीताप्रेस गोरखपुर–१६६२ संवत्

साहित्यदर्पण — विश्वनाथ—चौ० वि०, वाराणसी—१९५७

सगीतरत्नाकर — शार्ङ्गदेव—आनन्दत्रम

सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास — पी० वी० काणे—मोतीलाल बनारसीदास—१९६६

संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास — वानस्पति गैरोला चौ० विद्या० वाराणसी—१९६०

संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास — मैक्डोनेल— चौ० विद्या० वाराणसी।

सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास — बलदेव उपाध्याय—शारदा मंदिर काशी—१९४८

संस्कृत शास्त्रो का इतिहास — बलदेव उपाध्याय —शारदा मंदिर काशी—१९४८

हरिभक्तिरसामृतसिन्धुः — रूपगोस्वामी, अच्युतग्रन्थमाला, विद्याविलास प्रेस—१९८८ सवत्

हिन्दी अभिनव भारती — अभिनवगुप्त हिन्दी विभाग—दिल्ली वि० वि०—१९६०

युगल शतक — श्रीभट्ट जी

महावानी — श्री हरिव्यास देवाचार्य

श्रीराधा गुणगान ग्रन्थ — श्रीकण्ठमणि शास्त्री, प्रकाशन गोरखपुर, सम्वत्—२०१७

श्री स्वामिन्यष्टक स्तोत्र — गोस्वामी विट्ठलनाथ जी

हिन्दी साहित्य में राधा — श्री द्वारिका प्रसाद मित्तल

चैतन्य चरितामृत — श्री कृष्ण दास कविराज

ब्रजबेली साहित्य — डा० शैलेष मोहन झा

सूरसागर प्रथमभाग — डा० नन्ददुलारे बाजपेयी

परमानन्द सागर — गोवर्धन शुक्ल

श्रीराधासुधा — पूज्यवाद श्री हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्री जी) महासज प्रवचनमाला—श्रीराधाकृष्ण धानुका प्रकाशन कलकत्ता—१९८६

गोपालोत्तर तापिनी उपनिषद् राधिकातापनीय उपनिषद्

काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति — वामन

पाणिनीयशिक्षा —

वृत्तरत्नाकर — भट्टकेदार

छन्दोमञ्जरी — गंगादास

सुवृत्ततिलक — क्षेमेन्द्र

काव्यमाला —

संस्कृत साहित्यका संक्षिप्त इतिहास — वाचस्पति गैरोला, प्रकाशन–१९७८.

काव्य सग्रह भाग–२, ३ — जीवानन्द विद्या सागर, प्रकाशित कलकत्ता

संस्कृत चन्द्रिका — सस्कृत जार्नल कोल्हापुर–भाग–६

हिस्ट्री आफ द क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर — एम० कृष्णमाचारियर

अष्टाध्यायी — पाणिनी

कृष्णकाव्य मे भ्रमरगीत — श्यामसुन्दर लाल

नन्ददास जीवन और काव्य — डा० सावित्री अवस्थी

हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना — डा० प्रेम स्वरूप

गाथासप्तशती — हाल कृत, माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन, ग्रन्थमाला बम्बई–१९४१

सस्कृत कवि दर्शन — डा० भोलाशंकर व्यास जी

पद्यावली — विद्यापति

पद सग्रह — चण्डीदास

पदावली — ज्ञानदास

जगन्नाथ चरितामृत — दिवाकरदास

प्रेमभक्ति ब्रह्मगीता — यशोवन्त दास

नाम घोषा — माधवदेव

मीरा स्मृति ग्रन्थ — मीराबाई, प्रकाशन कलकत्ता वंगीय हिन्दी परिषद संम्बत–२००६.

काव्य संग्रह — नरसी मेहता

हिन्दी को मराठी सन्तों की देन — आचार्य मोहन शर्मा प्रकाशन–बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना–१९५७.

आन्ध्रभागवतम् — महाकवि पोताना

कृष्णगाथा काव्य (मलयालम) — चेरूश्शेरी

उज्ज्वल रस उपासना और निम्बार्क सम्प्रदाय – (लेख) बल्लभशरणजी भारतीय साहित्य प्रकाशन–१९६१

पदावली – कवि घनानन्द

हितचौरासी – श्री हितहरिवंश

राधा सुधानिधि – श्री हितहरिवंश

सिद्वान्त पञ्चाध्यायी – नन्ददास

राधा का क्रम विकास – डा० शशिभूषण गुप्त

भारतीय साधना और सूर साहित्य – डा० मुंशीराम शर्मा

वेदान्त कामधेनु – आचार्य निम्वार्क

शोध–प्रबन्ध

१. आचार्य रामानुज का भक्ति सिद्वान्त; डा० राम किशोर शास्त्री; अप्रकाशित इ० वि० वि०, इलाहाबाद–१९८०

२. "भक्ति रस एक शास्त्रीय अध्ययन; डा० शशिधर द्विवेदी, अप्रकाशित; इ० वि० वि० इलाहाबाद।

३. संस्कृत में श्रृङ्गारी कवियों के उपलब्ध शतक काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० दुर्गा प्रसाद; अप्रकाशित, इ० वि० वि०, इलाहाबाद।

४. प्रो० रसिक विहारी जोशी की रचनाएं एवं व्यक्तित्व; अप्रकाशित शोध प्रबन्ध; आगरा वि० वि० आगरा।

५. प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत मोहभङ्गम महाकाब्य एक परिशीलन; कु० बेला हाण्डा; प्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध; राजस्थान वि० वि० जयपुर, प्र० प्रथम संस्करण–१९८७ श्री पब्लिशिंग, १०१४६ कटरा छज्जू पंडित माडल वस्ती, नई दिल्ली–११०००५.

६. प्रो० रसिक विहारी जोशी कृत करूणाकटाक्ष लहरी का साहित्यिक परिशीलन; अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध दिल्ली वि० वि०, दिल्ली।

७. श्री राधा का चारित्रिक विकास; अप्रकाशित काशी हिन्दू वि० वि०, वाराणसी।

८. गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती का आलोचनात्मक अध्ययन; डा० रामचन्द्र शुक्ल, अप्रकाशित इ० वि० वि०, इलाहाबाद–१९९२

९. संस्कृत साहित्यशास्त्र मे भक्तिरस के परिप्रेक्ष्य मे आचार्य श्रीरूपगोस्वामी का योगदान–डा० दीपारानी अग्रवाल– १९७४.

१० श्रीमद्भागवत मे प्रेमतत्व– डा० रामचन्द्र तिवारी।

११ शृङ्गाररस का विकास–भामह से पण्डितराजजगन्नाथ तक–डा० चण्डिक्का प्रसाद शुक्ल (डी० लिट्० हेतु) १९९६.

१२. संस्कृत काव्यशास्त्र में भक्तिरसविवेचनम्–डा० कृष्णबिहारी मिश्र– श्री हरिनाम प्रेस, बागबुन्वेला, वृन्दावन।

पत्र–पत्रिकाएं

गंगानाथ झा केन्द्रीय शोध – संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका।

हिन्दी साहित्य – सम्मेलन से प्रकाशित पत्रिका।

उमर उजाला – समाचार दैनिक पत्र में प्रकाशित निबन्ध, कैरियर विशेषाक

हिन्दुस्तानी एकेंडेमी – प्रयाग से प्रकाशित पत्रिका।